

ओ३म्

वैदिक वाङ्मय में प्रतिबिंबित राष्ट्र की अवधारणा



पीएच.डी. (वैदिक अध्ययन) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक

डॉ. देवेन्द्र सिंह

विभागाध्यक्ष

संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग

शोधार्थी

विकास आर्य

पीएच.डी.- (वैदिक अध्ययन)

भाषा, साहित्य एवं कला प्राध्ययन केन्द्र
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
साँची, रायसेन (म.प्र.)

2022

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

i-vi

प्रथम अध्याय— वेदों में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द

1—54

- 1.1 वेदों में राष्ट्र शब्द
- 1.2 ऋग्वेद में प्रयुक्त शब्द
- 1.3 यजुर्वेद में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द
- 1.4 अथर्ववेद में राष्ट्र शब्द
- 1.5 ब्राह्मण ग्रंथों में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द
- 1.6 आरण्यक ग्रंथों में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द
- 1.7 उपनिषद् ग्रंथों में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द

द्वितीय अध्याय— वैदिक याज्ञिक कर्मकाण्ड में राष्ट्रीयता की भावना

55—87

- 2.1 याज्ञिक विधियों के विधान में राष्ट्रीयता की भावना
- 2.2 राजसूयगत रत्नहवींषि संज्ञक आहुतियों में राष्ट्रीयता की भावना
- 2.3 वाजपेयगत विधियों में राष्ट्रीयता की भावना
- 2.4 अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन में राष्ट्रीयता की भावना
- 2.5 अग्निचयनगत राष्ट्रभृत् संज्ञक इष्टकाओं के चयन में राष्ट्रीयता की भावना
- 2.6 वैदिक सामगान में राष्ट्रीयता की भावना

तृतीय अध्याय— वैदिक राष्ट्र का स्वरूप

88—117

- 3.1 वेद में राष्ट्र का स्वरूप
- 3.2 राष्ट्र शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग
- 3.3 राष्ट्र का स्वरूप
- 3.4 वैदिक राष्ट्र का भौगोलिक स्वरूप
- 3.5 वेदों में राष्ट्र का भौगोलिक स्वरूप
- 3.6 राष्ट्र के निवासी

चतुर्थ अध्याय— वैदिक राष्ट्र के धारक गुण

118—147

- 4.1 वेदों में राष्ट्र की परिकल्पना और उसके धारक तत्त्व
- 4.2 वेदों में राष्ट्र के धारक गुण
- 4.3 वेदों में राष्ट्र की परिकल्पना
- 4.4 राष्ट्र के धारक तत्त्व

पञ्चम अध्याय — राष्ट्रीयता की भावना एवं उसका स्वरूप

148—181

- 5.1 राष्ट्रीयता का स्वरूप
- 5.2 राष्ट्रीयता का अर्थ
- 5.3 राष्ट्रीयता उत्तम निज की भावना
- 5.4 वेदों में स्वराज्य की परिकल्पना
- 5.5 राष्ट्रीयता की भावना

डपसंहार

182—186

सन्दर्भ—ग्रन्थ—सूची

187—193

प्रकाशित शोध आलेख

Plagiarism Report

प्रस्तावना

आज भारत में यत्र-तत्र सर्वत्र प्रत्येक व्यक्ति के मन में अधिकार बोध की भावना विकसित होती जा रही है। मैं पुरुष हूँ, इसलिये मेरा यह अधिकार है, मैं नारी हूँ, इसलिये मेरा यह अधिकार है, मैं अध्यापक हूँ, मैं प्रशासक हूँ, मैं व्यापारी हूँ, मैं मजदूर हूँ, मेरा यह अधिकार है। पारिवारिक स्तर पर भी यह अधिकार-बोध बढ़ता जा रहा है। मैं पिता हूँ, बच्चों पर मेरा अधिकार है, मैं माता हूँ, मेरा बच्चों पर अधिकार है, मैं पुत्र हूँ, मेरा माता-पिता की सम्पत्ति पर अधिकार है। आज की शिक्षा भी इसी अधिकार-बोध से ग्रसित होती जा रही है। किन्तु यह स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है। इससे न तो व्यक्ति का, न ही समाज का और न ही राष्ट्र का उत्थान हो सकता है। क्योंकि अधिकार किसी अन्य को अपने अधीन करने की भावना पर आधारित होता है। इसके विपरीत आत्म-बोध और कर्तव्य-बोध दो श्रेष्ठ गुण हैं, जो किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र को श्रेष्ठ पथ पर अग्रसर करने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं। आत्मबोध और कर्तव्यबोध का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आत्मबोध का मतलब है मैं कौन हूँ, इसका ज्ञान। परिवार के स्तर पर जब हम आत्मबोध की चर्चा करते हैं तो हमारा अभिप्राय होता है मैं पिता हूँ, मैं माता हूँ, मैं पुत्र हूँ, मैं पुत्री हूँ, मैं भाई हूँ, मैं बहन हूँ, मैं पति हूँ, मैं पत्नी हूँ। विद्यालय स्तर पर जब हम आत्मबोध की चर्चा करते हैं तब आत्मबोध से हमारा अभिप्राय होता है—मैं प्राचार्य हूँ, मैं अध्यापक हूँ, मैं विद्यालय का प्रबन्धक हूँ, कर्मचारी हूँ, मैं विद्यालय का छात्र-छात्रा हूँ। इस आत्मबोध के साथ श्रेयरूप में कर्तव्य बोध का भाव स्वाभाविक रूप से जुड़ा हुआ है। मैं माता, पिता, भाई, पुत्र, पत्नी, बहन हूँ, अध्यापक, प्रशासक, व्यापारी, मजदूर जो कुछ हूँ, उसके साथ आत्मबोध कर्तव्य के रूप में जुड़ा हुआ है। प्रत्येक अपने कर्तव्य का पालन करे, कहीं संघर्ष नहीं। ऐसे ही कर्तव्यों का विधान धर्मशास्त्र करता है। इसी आत्मबोध तथा तदनुकूल कर्तव्यबोध के लिये शिक्षा होती है। किन्तु इसके विपरीत आत्मबोध और कर्तव्यबोध का परित्याग कर व्यक्ति जब केवल अपने अधिकार की चर्चा करता है, वह संघर्ष को जन्म देता है। इसका परित्याग ही व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के लिये हितकर होता है। इसी आत्मबोध तथा कर्तव्यबोध के साथ राष्ट्रबोध भी जुड़ा हुआ है। जिस राष्ट्र में मैं पैदा हुआ हूँ, जिस भूमि के

अन्न—जल से मेरा भरण—पोषण होता है तथा जिसकी सांस्कृतिक परम्परा सुदूर प्राचीन काल से चली आ रही है, उसको कायम रखना अपना कर्तव्यबोध के अन्तर्गत आता है।

राष्ट्र के प्रत्येक घटक के सुखी रहने से ही मैं सुखी रहूँ और मेरे द्वारा राष्ट्र की सांस्कृतिक परम्परा को कायम रखने में कोई बाधा नहीं आयेगी, यही भावना राष्ट्रिय चेतना है। यही राष्ट्रिय चेतना विश्व के प्राचीनतम वाङ्मय ऋग्वेद से लेकर सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में मेरी यही भावना रही है कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के सर्वाङ्गीण विकास में तत्पर हो और प्राचीन पूर्वज ऋषियों के एतद्विषयक चिन्तन को सदा याद रखे। वेदों में निर्दिष्ट राष्ट्रविषयक चिन्तन सम्पूर्ण मानव के कल्याण के लिये है। जो भी राष्ट्र उसका अनुसरण करेगा, वह कभी संकट में नहीं पड़ सकता।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ पांच अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में वैदिक साहित्य में 'राष्ट्र' शब्द कहाँ कहाँ और किस किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। इससे राष्ट्र शब्द के विभिन्न अर्थों की जानकारी होती है।

राष्ट्र हमारे लिये कोई नया नाम नहीं है, वेदों में राष्ट्र की कल्पना करते हुए अनेक ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में अनेक देवता और छन्द भेदों द्वारा पंचभूत विद्याओं का वर्णन किया है। ऋग्वेद में आङ्गिरसः कुत्सः ऋषि चिह्नांकित विद्युत विज्ञान में स्वराट पंक्ति छन्द भेद द्वारा सूर्य को राष्ट्राध्यक्ष मानते हुए कुलिशी नामक सूर्य के पास सूखने से बची रहने वाली किरण द्वारा मेघ विज्ञान में राष्ट्र रूपी व्यवस्था द्वारा कार्य करने के सिद्धांत दर्शाये हैं ऋग्वेद में ऋदस्युः पौरुकुत्स्य ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में आत्मा विज्ञान निवृत्तिष्ठप छन्द भाग द्वारा क्षत्रिय वर्ण और स्थान की विद्याओं में अमृता नामक नाश रहित पदार्थों के साथ राष्ट्र रूप में कार्य आने वाले विद्युत और वमण सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद यहां पर भी सूर्य को राष्ट्राध्यक्ष मानकर प्रकाश विज्ञान में कार्य करने वाली श्रज्झैरुष तथा 'चित्रः' नामक किरणों को प्रयोग में लाकर शवसा बल द्वारा राधसा नामक धन को प्राप्त करने का मनुष्यों को

निर्देश दिया गया है। इस प्रसङ्ग के ऋषि भरद्वाजो बार्हस्पत्य तथा देवता अग्नि विज्ञान है। यथा ऋग्वेद में भी प्रकाश विज्ञान भाष नामक प्रकाश का ज्ञान राष्ट्र रूप में दिया है।

द्वितीय अध्याय में वैदिक याज्ञिक कर्मकाण्ड में तत्कालीन ऋषियों की राष्ट्रियता की भावना को दर्शाया गया है। याज्ञिक कर्मकाण्ड केवल धर्म एवं अनुष्ठान के लिये ही नहीं, बल्कि उनके सम्पादन में अपने राष्ट्र को सुसंगठित एवं सुरक्षित रखने की भावना निहित थी। राजा और प्रजा का स्वस्थ सम्बन्ध किस प्रकार होगा, यही इन यज्ञों के सम्पादन का प्रयोजन था। राष्ट्र की रक्षा के लिये देवताओं की प्रसन्नता आवश्यक थी। यज्ञ-यागादिक अनुष्ठान राजा और प्रजा दोनों को सुखी तथा एक दूसरे का सहायक बनाने की दृष्टि से था। जनता पर ही राजा आश्रित है और जनता अपनी सुरक्षा तथा सुख के लिये राजा पर आश्रित है। दोनों में परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। राजसूय यज्ञ में 'रत्नहवींषि' नामक इष्टियाँ इसी प्रयोजन से की जाती थी, जिससे राजा के प्रशासन के अन्दर किसी से मतभेद न होवे।

यज्ञ आर्य संस्कृति का केन्द्र बिन्दु है। वैदिक काल में सभी प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक गतिविधियों के नियन्त्रण में यज्ञ की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह बात भली भाँति ज्ञात होती है कि वैदिक समाज का हर कार्य यज्ञ के ही इर्द-गिर्द घूमता था। चाहे व्यक्ति का अपना जीवन हो, समाज की गतिविधि हो, सम्पूर्ण राष्ट्र की गतिविधि हो सभी यज्ञ से सम्पृक्त था। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का जीवन, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यज्ञ के साथ जुड़ा हुआ था। किसी भी व्यक्ति की अच्छाई-बुराई का मापक यज्ञ ही था। जो यज्ञ करता था वह आर्य, यज्यु, यजमान, सूरि आदि नामों से अभिहित होता था। किन्तु जो व्यक्ति यज्ञ का सम्पादन नहीं करता था, अथवा विरोध करता था वह अनार्य, अयज्यु, अरि, अराति आदि अभिधानों से जाना जाता था और उसको समाज का शत्रु समझा जाता था। कोई भी मान्यता अथवा युक्ति जो यज्ञ के विपरीत होती थी, त्याज्य थी। उसी का जीवन समादृत था जो यज्ञ का सम्पादन करता था। इस प्रकार यज्ञ वैदिक संस्कृति

का शरीर था। पारिवारिक व्यवस्था में परिवार का प्रत्येक सदस्य, सामाजिक व्यवस्था में समाज का प्रत्येक वर्ग, राजनैतिक व्यवस्था में राजा से लेकर प्रजा तक सभी यज्ञ के साथ जुड़े थे। याज्ञिक कर्मकाण्ड विषयक विधियों के अध्ययन से मालूम होता है कि तत्कालीन ऋषियों ने याज्ञिक कर्मकाण्ड में केवल विधि के सम्पादन में ही यज्ञ की इयत्ता नहीं मानी थी, बल्कि उन विधियों के माध्यम से एक स्वस्थ राष्ट्रिय चिन्तन भी प्रदान किया था, जिसमें राष्ट्र की अभिवृद्धि सर्वोपरि थी। ऐसा क्यों न होता ? व्यष्टि से समष्टि तथा समष्टि से राष्ट्र अधिक गुरुतर होता है। राष्ट्र में सुरक्षित रह कर ही संस्कृति का विकास सम्भव है। राष्ट्र की प्राप्ति भी तो तप एवं दीक्षा से होती है। अथर्ववेद इस बात का रूप से उल्लेख करता है कि ब्रह्मतत्त्ववेत्ता ऋषियों ने कल्याण की कामना से तप और दीक्षा का पालन किया जिसके प्रभाव से राष्ट्र, बल तथा ओज पैदा हुआ। इस प्रकार राष्ट्र ऋषियों के तप तथा दीक्षा रूप यज्ञ का ही परिणाम है।

तृतीय अध्याय में वैदिक राष्ट्र के स्वरूप का विवेचन है। यहाँ इस तथ्य को विशेष स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्र का अर्थ केवल कोई भूखण्ड ही नहीं है, बल्कि उस भूखण्ड पर विकसित संस्कृति तथा उस संस्कृति की वाहक भाषा भी अभिप्रेत है। कोई भूखण्ड अपनी परम्परागत संस्कृति तथा अपनी परम्परागत भाषा को छोड़कर अपने को राष्ट्र नहीं कह सकता। अपनी संस्कृति तथा भाषा को छोड़कर कोई भूखण्ड विशेष अपने को राष्ट्र कहता है तो वह वस्तुतः भूखण्ड के स्वतन्त्र होने पर भी सांस्कृतिक तथा भाषिक दृष्टि से परतन्त्र है। ऐसे राष्ट्रों की आयु बहुत दिनों की नहीं होती।

राष्ट्र की उत्पत्ति के बारे में ऐसा कहा गया है कि यह जो राष्ट्र की उत्पत्ति हुई है वह परमात्मा के द्वारा ही हुई है उस परमात्मा ने ही सर्वप्रथम राष्ट्रीय भावना दी और जैसे ही राष्ट्रीय भावना आई तुरंत शत्रु को नष्ट कर दिया गया और शत्रु को नष्ट करने के बाद राष्ट्र में निर्भयता का भाव जागा और पृथ्वी और द्युलोक दोनों को परमात्मा ने अपनी शक्ति से उपयोगी बना कर धन धान्य से परिपूर्ण कर दिया गया।

अथर्ववेद में अपने राष्ट्र को सर्वोत्तम बनाने का उल्लेख भी है जिसके लिए आवश्यक है राष्ट्र में तेज और बल की सत्ता सर्वोत्तम राज्य तब ही बन सकता है जब वहां की जनता तेजस्वी और बलवान होगी। और अगर किसी राष्ट्र को उत्तम बनाना है तो उस राष्ट्र में सुख और समृद्धि का होना बहुत जरूरी है।

चतुर्थ अध्याय में 'वैदिक राष्ट्र के धारक गुण' में उन गुणों का विवेचन किया गया है, जो एक राष्ट्र को धारण करने वाले होते हैं। इन गुणों में प्रमुख हैं— बृहत् सत्य का पालन, श्रुत आचरण से अमृत का विवेक, राष्ट्र की रक्षा के लिये उग्रता की भावना, राष्ट्रहित की दीक्षा, तपोमय जीवन, ब्रह्मबल तथा यज्ञमय जीवन। ये ही गुण हैं, जो किसी राष्ट्र को धारण करते हैं। यदि लोगों के अन्दर ये गुण नहीं, वे अपने राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकते। इन्हीं गुणों के कारण सांस्कृतिक परम्परा तथा राष्ट्रभाषा के साथ राष्ट्रभूमि की रक्षा हो सकती है।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त में जहाँ वैदिक ऋषियों की राष्ट्र विषयक धारणा का बोध होता है, वहीं पर हमें राष्ट्र विषयक अनेक तत्त्वों का भी ज्ञान होता है। भूमि सूक्त के प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही मातृभूमि को धारण करने वाले अनेक तत्त्व हैं उनका यहां हमें स्पष्ट उल्लेख है। सभी लोग अपने राष्ट्र को धारण नहीं कर सकते, और न ही इतने बड़े राष्ट्र का पोषण कर सकते हैं। जो लोग विशेष एवं अनेक गुणों से युक्त हैं, वे ही लोग राष्ट्र की उन्नति कर सकते हैं। दूसरे लोग तो सिर्फ संख्या बढ़ाने के लिए कारण मात्र हैं। राष्ट्र को धारण करने के लिए मनुष्य में अनेक गुण होने चाहिए इसका उल्लेख हमें भूमि सूक्त के प्रथम मंत्र में देखने को मिलता है।

पंचम अध्याय में राष्ट्रियता का क्या अर्थ है तथा उसका स्वरूप क्या है, इस बात का विवेचन करते हुये स्पष्ट रूप से अपने राष्ट्र के प्रति उत्तम निज होने की भावना को रेखांकित किया गया है। 'मैं राष्ट्र का सबसे उत्तम निज बनूँ' यह भावना राष्ट्रियता का सबसे बड़ा गुण है। यदि व्यक्ति अपने को उस राष्ट्र का उत्तम निज नहीं मानता तो उसकी भावना में कमी है। जब व्यक्ति के अन्दर अपने राष्ट्र का

उत्तम निज होने की भावना होगी, तभी वह अपनी सांस्कृतिक परम्परा पर गर्व की भावना विकसित करेगा, जो राष्ट्रिय भावना का एक प्रमुख अंग है।

राष्ट्रियता का स्वरूप अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवनदर्शन आदि के प्रति लोगों के मन में जो एक नैसर्गिक स्वाभिमान हुआ करता है, उसे ही हम राष्ट्रिय भावना की संज्ञा देते हैं। यही वह भावना है जिसके वशीभूत हो कर लोग अपने राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व भी न्यौछावर कर देते हैं। यदि राष्ट्र परतन्त्र हुआ तो उसे स्वतन्त्र कराने के लिये लोग सीने पर गोली या फांसी के फंदे की जरा भी परवाह नहीं करते और जब तक राष्ट्र को विदेशी शासकों के चंगुल से आजाद नहीं करा लेते तब तक चैन की नींद नहीं सोते। इस बलिदान के पीछे जो एक प्रबल भावना काम करती है, वह राष्ट्रीय भावना ही होती है

प्रथम अध्याय

वेदों में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द

राष्ट्र हमारे लिये कोई नई अवधारणा नहीं है, अपितु राष्ट्र संकल्पना की अवधारणा ऋग्वैदिक काल से प्राप्त होती है। वेदों में राष्ट्र की कल्पना करते हुए अनेक ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में अनेक देवता और छन्द भेदों द्वारा पंचभूत विद्याओं का वर्णन किया है। ऋग्वेद में आङ्गिरसः कुत्सः ऋषि चिह्नांकित विद्युत विज्ञान में स्वराट पंक्ति छन्द भेद द्वारा सूर्य को राष्ट्राध्यक्ष मानते हुए कुलिशी नामक सूर्य के पास सूखने से बची रहने वाली किरण द्वारा मेघ विज्ञान में राष्ट्र रूपी व्यवस्था द्वारा कार्य करने के सिद्धांत दर्शाये हैं।¹ ऋग्वेद में ऋदस्युः पौरुकुत्स्य ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में आत्मा विज्ञान निवृत्तिष्टप छन्द भाग द्वारा क्षत्रिय वर्ण और स्थान की विद्याओं में अमृता नामक नाश रहित पदार्थों के साथ राष्ट्र रूप में कार्य आने वाले विद्युत और वमण सिद्धांतों का वर्णन किया गया है।² ऋग्वेद, यहां पर भी सूर्य को राष्ट्राध्यक्ष मानकर प्रकाश विज्ञान में कार्य करने वाली 'अज्ञैः' तथा 'चित्रः' नामक किरणों को प्रयोग में लाकर शवसा बल द्वारा राधसा नामक धन को प्राप्त करने का मनुष्यों को निर्देश दिया गया है।³ इस प्रसङ्ग के ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य तथा देवता अग्नि विज्ञान है। यथा ऋग्वेद में भी प्रकाश विज्ञान भाष नामक प्रकाश का ज्ञान राष्ट्र रूप में दिया है।⁴

1.1 वेदों में राष्ट्र शब्द —

ऋग्वेद में वशिष्ठ ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में विश्वेदेवा (ज्ञान विभाजक विद्वान् विज्ञान में) गायत्री छन्द माध्यम द्वारा सूर्य को राष्ट्राध्यक्ष मानते हुए ऐसे विद्वानों की उपासना या याचना की है जो समस्त पदार्थों को नदियों तरह प्रयोग करने वाले सिद्धांतों को जानते हों।⁵ ऋग्वेद में भी इन्द्रवरुण देवता के निवृत्तिष्टप् छन्द भाग

¹ ऋग्वेद १.१०४.४

² ऋग्वेद ४.४२.१

³ ऋग्वेद ६.४.५

⁴ ऋग्वेद ६.१२.५

⁵ ऋग्वेद ७.३४.११

द्वारा इसी ज्ञान को आगे बढ़ाया गया है।⁶ ऋग्वेद में नृमेधः ऋषि चिह्नांकित मंत्र में विद्युत विज्ञान में वेद विद्याओं को प्राप्त करने वालों कुछ विद्याओं को अस्य नामक विद्युदादि अग्नि द्वारा प्राप्त करने का निर्देश देते दिख रहे हैं।⁷ ऋग्वेद में **ऋषिमुंह ब्रह्म जायोर्श्वनामा वा ब्राह्मः**⁸ चिह्नांकित मंत्र में विश्वेदेवा विज्ञान के विष्टुप छंद भाग द्वारा सोम नामक ऊष्मा पदार्थों को होता अग्निः दूताय अग्नि को अस्य नामक विद्युदाग्नि द्वारा राष्ट्र रूप में प्रयोग करने का सिद्धांत दिया गया है।

ऋग्वेद में अग्नि, वरुण सोमाना निहवः ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में अग्नि और यथा निपातम विज्ञान में निचूत और विराट् त्रिष्टुप छन्द माध्यम द्वारा राष्ट्र का वर्णन किया गया है।⁹ ऋग्वेद में ऋषिर्वाण आम्भृणी विज्ञान में विराट् त्रिष्टुप छन्द भाग द्वारा मित्रा वरुण और विद्युत प्रयोग द्वारा वसु नामक पदार्थों से धन प्राप्त करने वाले सिद्धांत दिया गया है।¹⁰ ऋग्वेद में ध्रुव ऋषि के राज्ञा स्तुति के अनुष्टुप छन्द द्वारा, अनुष्टुप छन्द माध्यम द्वारा शूद्र वर्ण विद्या प्रणालियों और कर्म, कर्ता, क्रियाओं के द्वारा राष्ट्र रूप में प्रयोग करने वाले सिद्धांत मनुष्यों को उपलब्ध कराये गये हैं।¹¹ इस प्रकरण के लिये अथर्ववेद,¹² तैत्तिरीय संहिता,¹³ तैत्तिरीय ब्राह्मण,¹⁴ नारदीय संहिता,¹⁵ यजुर्वेद¹⁶, में भी दिशा निर्देश दिये गये हैं। इन प्रसङ्गों पर ध्यान देने से यही लगता है कि राष्ट्र वेदों में सूर्य से आवृत मित्रा-वरुण विद्युत और किरण आदि का एक पूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान भी दे रहे हैं।

⁶ ऋग्वेद ७.८४.२

⁷ ऋग्वेद.८.१००.१०

⁸ ऋग्वेद ३.१०.१०९

⁹ ऋग्वेद १०.१२४.४५

¹⁰ ऋग्वेद १०.१२५.३

¹¹ ऋग्वेद १०.१७३१.२.५

¹² अथर्ववेद ६.८१.८८

¹³ तैत्तिरीय संहिता ४.२.१.४

¹⁴ तैत्तिरीय ब्राह्मण १.४.२८.९

¹⁵ नारदीय संहिता १५.१८६

¹⁶ यजुर्वेद १२.११७

यजुर्वेद में वसिष्ठः ऋषि चिह्नांकित प्रजापति देवता के स्वयत् त्रिष्टुप् छन्द माध्यम द्वारा राष्ट्र रूप में जलों के बीच में रहने वाला परमाणु रूप अप्सु नामक पदार्थों में राष्ट्र रूप की विद्या द्वारा मधुरगुण प्राप्त करने के सिद्धांत दिये गये हैं।¹⁷ यह प्रकरण शतपथ ब्राह्मण¹⁸ द्वारा भी निर्देशित है।

यजुर्वेद में वरुण ऋषि चिह्नांकित वृषा विज्ञान में स्वयत् पणिछन्द द्वारा सूर्य की वृषा क्षति को राष्ट्र रूप की व्याख्या की गई है।¹⁹ यजुर्वेद, १०.३ में अपा नामक परमाणु पदार्थ में राष्ट्र रूप रचना के सिद्धांत लिये गये हैं क्योंकि यहां पर छन्द जगती है, इसलिये यहां पर वैश्य वर्ण की विद्या है। वैश्य का लेने देने वाला सिद्धांत दिया गया है। यजुर्वेद में राष्ट्र व्यवस्था सूर्य के समान ही दर्शाया गया है²⁰ तथा छन्द भेद द्वारा इसके भिन्न-भिन्न अर्थ भी इसके द्वारा प्रकट हो रहे हैं। शतपथ ब्राह्मण ५.३.४.४ से २८ तक में भी किसी दृष्टिकोण से इसका सम्बन्ध है। यजुर्वेद में ध्रुव ऋषि के अग्नि विज्ञान के अनुष्टुप् छन्द माध्यम द्वारा भी राष्ट्र रूप अग्नि विद्याओं का ज्ञान दिया गया है।²¹ यजुर्वेद २०.८ तथा १० में भी प्रजापति ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में राष्ट्र के सभापति और राष्ट्र के प्रत्येक अङ्ग की व्याख्या की गई है। यह व्याख्या बीसवें अध्याय के ११ वें मंत्र तक प्रथम अनुवाक के द्वारा गठित की गई है। यजुर्वेद²² में बिगोता विज्ञान में स्वराट् कृतिश छन्द द्वारा राष्ट्र के तीनों चरण और चारों वर्गों का समाधान किया गया है। अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि के इन्द्रविज्ञान में त्रिष्टुप्छन्द द्वारा राष्ट्र रूप को दिशा ज्ञान के साथ समाधान दे रहा है। यहां पर यह सब ज्ञान छन्द भेद द्वारा और अकार, उकार, मकार अक्षरों के प्राण-अपान रूप से भी विस्तृत किया जा सकता है।²³ अथर्ववेद में भी अभीवर्ण की

¹⁷ यजुर्वेद ९.२३

¹⁸ शतपथ ब्राह्मण ५.२.२.५

¹⁹ यजुर्वेद १०.२

²⁰ यजुर्वेद १०.४४

²¹ यजुर्वेद १२.११

²² यजुर्वेद २२.२२

²³ अथर्ववेद ३.४.२

कल्पना करते हुए 'पर्णमणे' के सोममयी उष्म ज्ञान दिया गया है। अथर्ववेद में वसिष्ठ ऋषि के ब्रह्मणस्पतिः अभीवर्तमपि के अनुष्टुप छन्द द्वारा शूद्रवर्ण रूपी विद्या का राष्ट्र व्याख्या के साथ समावेश किया गया है।²⁴ यह प्रकरण ऋग्वेद²⁵ से भी सम्बन्ध रखता है।

अथर्ववेद में राष्ट्र की व्याख्या स्पष्ट रूप में सूर्य को राष्ट्राध्यक्ष के रूप में निर्देश दे रहा है। अथर्ववेद वाला प्रकरण भी वसिष्ठ ऋषि चिह्नांकित विश्वेदेवा विज्ञान के लिये राष्ट्र की व्याख्या कर रहा है।²⁶ अथर्ववेद में मयोभूः ऋषि चिह्नांकित मंत्रों ब्रह्मजाया विज्ञान में अनुष्टुप (शूद्रवर्ण) त्रिष्टुप (क्षत्रिय) वर्ण विद्या भाग में राष्ट्र मय सृष्टि विद्या का वर्णन किया गया है। इस प्रकरण और ऋग्वेद वाले प्रकरण को मिला कर भिन्न-भिन्न भाष्यकारों के भाष्यों को मिला कर तरह-तरह की वैदिक प्राणियों द्वारा कसौटियों पर कस कर सृष्टि विद्या की ऋतस्य प्रणाली द्वारा मयोभू और मातरिश्वा नामक वायु विशेष और अस्य नामक विद्युदादि अग्नि आदि का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन किया गया है।²⁷ सृष्टि विद्या में कार्य आने वाले सभी उपकरण और परमाणुओं राष्ट्र रूप प्रणालियों द्वारा कार्य में लाने वाले सिद्धांत बड़ी खूबी से दर्शाये गये हैं। यह प्रकरण अथर्ववेद ५.१७ से १६ तक विस्तृत किया गया है। इसमें नक्षत्र ज्ञान का भी पूर्ण विवरण दिया गया है। अथर्ववेद अथर्वा, ऋषि (वर्चस्कागः) विषिः (प्रकाश विज्ञान) और बृहस्पति (वायु विशेष) विज्ञान द्वारा जगती (वैश्य वर्ण) त्रिष्टुप (क्षत्रिय वर्ण) अनुष्टुप (शूद्रवर्ण) की विद्या और प्रणालियों द्वारा राष्ट्रमय व्यवस्था द्वारा कार्य में लाने के सिद्धांत दिये गये हैं।²⁸ इस प्रकरण का ज्ञान अथर्ववेद के इसी काण्ड के ५८ वें सूत्र से भी सम्बन्ध रखता है।

अथर्ववेद ६.५४ में ब्रह्म ऋषि के अग्नि सोमों (शुष्क और ऊष्म) अनुष्टुप छन्द भाग (शूद्र वर्ण) की विद्याओं द्वारा ज्ञान सिद्धांत दिये गये हैं। यहां भी राष्ट्रमय व्यवस्था का वर्णन किया गया है, जिसमें सूर्य और चन्द्रमा का ज्ञान उल्लेखित है।

²⁴ अथर्ववेद १.२९.१

²⁵ ऋग्वेद १०.११४

²⁶ अथर्ववेद ३.१९.२-५

²⁷ ऋग्वेद १०.१०९

²⁸ अथर्ववेद ६.३९.१.२

अनुष्टुप छन्द भाग द्वारा शूद्र वर्ण की विद्या अथवा ऋषि के सिद्धांतों द्वारा अथर्ववेद ६.७८ में भी पति-पत्नीमय कल्पना द्वारा त्वष्टा ज्ञान को बढ़ाया गया है। यहां पर त्वष्टा को विश्वकर्मा बतलाकर सभी सृष्टि विद्या को राष्ट्रमय ज्ञान दिया गया है।

अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि ने ध्रुवरूप अटल राष्ट्ररूप में अनुष्टुप छन्द भाग द्वारा विद्युत और अयम नामक परमाणु पदार्थ को प्रयोग में लाने के सिद्धांत दिये हुए हैं। इस प्रकरण के लिये यजुर्वेद²⁹, ऋग्वेद,³⁰ तैत्तिरीय संहिता,³¹ तैत्तिरीय ब्राह्मण,³² में दिशा-निर्देश दिये गये हैं। अथर्ववेद में इस विद्या को अनुष्टुप और त्रिष्टुप छन्द भेद द्वारा दिशा ज्ञान से भी जोड़ा गया है। अथर्ववेद में अर्थाअङ्गिराः ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में सोमः और शकधूम विज्ञान में अनुष्टुप छन्द भाग द्वारा नक्षत्र और सूर्य को राष्ट्र रूपी व्याख्या सिद्धांत दिये गये हैं। अथर्ववेद³³ में कौशिक ऋषि चिह्नांकित अग्नि विज्ञान में त्रिष्टुप छन्द भाग द्वारा राष्ट्र भूत रूप में सूर्य और पृथ्वी के साथ चलने वाले भिन्न-भिन्न पदार्थों का ज्ञान दिया गया है। अथर्ववेद में शुक्र ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में वज्र रूप विज्ञान में छन्द भेदों द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र कर्म, विद्या और प्रणालियों द्वारा शरीर विज्ञान में राष्ट्र रूप व्यवस्था द्वारा ही बहुत ही विस्तृत किया गया है³⁴ जो विद्वानों द्वारा गवेषणा योग्य है। अथर्ववेद ८.६.१३ में अथर्वाः कश्यप और सर्वे ऋषयः चिह्नांकित मंत्रों में विराट छन्द द्वारा राष्ट्र रूप में कार्य करने वाली ३ विद्या (इडा, सरस्वती, भारती) द्वारा अनेकों तरह के समाधान और ज्ञान सिद्धांत दिये हैं। यह प्रकरण गोपथ ब्राह्मण उत्तराचिक ११ द्वारा भी निर्देशित किया गया है।

अथर्ववेद १०.१०.८ में कश्यप ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में अनुष्टुप छन्द भेद द्वारा विराड (मित्रावरुण) का सम्बन्ध वशा विज्ञान में राष्ट्ररूप में अन्न, जल का प्रयोग सिद्धांत दिया गया है। इस प्रकरण में राष्ट्राध्यक्ष सूर्य की विद्याओं को २१वें मंत्र में सूर्य के दक्षिण और उत्तरी भाग का भी वर्णन किया गया है।

²⁹ यजुर्वेद १२.११

³⁰ ऋग्वेद १०.७३

³¹ तैत्तिरीय संहिता ४.२.१.४

³² तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.२. ८-९

³³ अथर्ववेद ६.११८

³⁴ अथर्ववेद १.१३४

अथर्ववेद १०.३.१६ में अथर्वा ऋषि चिह्नांकित वरणमीण वनस्पति: चन्द्रमा विज्ञान में अनुष्टुप और भूरिक विष्टुप छन्द भेद द्वारा औषधि द्वारा राष्ट्र रूप शरीर से हानिकारक पदार्थों को समाप्त करने के सिद्धांत दिये गये हैं। अथर्ववेद में अथवा ऋषि के अध्यात्म उच्छिष्ट: विज्ञान में अनुष्टुप छन्द भाग द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय से बचे रहने वाले पदार्थ विशेषों में राष्ट्र रूप विद्या का वर्णन किया गया है जो पूरे प्रकरण को देखने से ज्ञात हो जाता है।³⁵

अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि चिह्नांकित मंत्र में भूमि विज्ञान के विष्टुप छन्द भाग द्वारा सृष्टि विज्ञान में अर्णवे रुय परमाणु रूप में उसके अगले चरण 'सलिलम' रूप त्विषि नामक प्रकाश विज्ञान की राष्ट्र रूप व्याख्या की गई है।³⁶ आप नामक जलों को प्रजा रुय की कल्पना करते हुए ज्ञान दिया गया है। अथर्ववेद में यमः ऋषि चिह्नांकित स्वर्गः ओदनः अग्निः विज्ञान में त्रिष्टुप छन्द भाग द्वारा दिशा विज्ञान को राष्ट्र रूप में व्याख्या की गई है।³⁷ अथर्ववेद में 'ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्र च विश्वश्च त्विश्च च विपिश्च यशश्चु वर्चश्च द्रविण च' में भी वेद विद्याओं के क्रम को प्राप्त करने अथवा समझने का मनुष्यों को निर्देश दिया गया है। अथर्ववेद में ब्रह्मा ऋषि चिह्नांकित अध्यात्म रोहित आदित्या देवता विज्ञान में राष्ट्र रूप रोहित तथा अप्सुः अन्तः नामक प्रजाओं की कल्पना करते हुए ज्ञान-विज्ञान का ज्ञान दिया गया है।³⁸

इस सूत्र के दूसरे में अप्सु अन्तः को प्रजाओं के रूप में (विशः) के रूप में वैश्यवर्ण की विद्याओं का ज्ञान लगाने का संकेत भी दिया गया है। इस सूत्र के तीसरे मंत्र में तीन कर्मों और सात क्रियाओं द्वारा तरह-तरह की वायु और विद्युतों को प्रयोग में लाने का निर्देश दिया गया है। मंत्र संख्या ४ में रुहः मरोह नामक क्षत्रियों के द्वारा रोहित नामक सूर्य क्षति द्वारा राष्ट्र रूप में उत्पन्न करने वाली शक्तियों का वर्णन किया गया है, जो दिशाओं के सिद्धान्तों को भी दर्शा रही है। मंत्र संख्या ५ में राष्ट्र रूप में मधु विद्या द्वारा द्यावा पृथ्वी को धन देने वाले सिद्धांत का

³⁵ अथर्ववेद ११.७.१७

³⁶ अथर्ववेद १२.१.८

³⁷ अथर्ववेद १२.३.१०

³⁸ अथर्ववेद १३.१.१

वर्णन किया गया है। मंत्र संख्या ६ में परमेष्ठी रूप में तन्तु रूप सूत्रात्मा वायु तथा क्षजः नामक अग्नि प्रयोग द्वारा पृथ्वी को दृढ़ करने वाला सिद्धान्त दिया गया है। मंत्र संख्या ७ में अंतरिक्ष और अंधकार वाले लोकों को नापने वाले सिद्धान्तों का ज्ञान दिया गया है। मंत्र संख्या ८ में रुह (सृष्टि की मानिग्री) अभवः (सृष्टि की वस्तुओं) को राष्ट्र रूप में पयसा रूप अन्न और धृतेन रूप जलों को प्रयोग करने के सिद्धान्त दिये गये हैं। इस तरह से इस काण्ड और सूक्त के मंत्रों को क्रम से देखते हैं तो यह पूर्ण रूपेण ज्ञान हो जाता है कि वेदों में राष्ट्र रूप में सृष्टि क्रम को किसी क्रम विशेष से मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त करने का स्पष्ट निर्देश दे रहे हैं। अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में फिर अध्यात्म व्रात्यः विज्ञान में आची पत्तिं छन्द द्वारा अतिथि विद्या के साथ इसे संयुक्त किया गया है।³⁹

अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि चिह्नांकित ब्रह्मणस्पति नाना देवता विज्ञान में अनुष्टुप छन्द माध्यम द्वारा शूद्र वर्ण, विद्या प्रणालियों द्वारा राष्ट्र रूप में देवम् अग्नि के साथ सिद्धान्त दिये गये हैं।⁴⁰ अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि के अग्नि विज्ञान में राष्ट्र रूप के पोषण और बल के लिये अग्नि आवश्यक है।⁴¹

अथर्ववेद में ब्रह्मा ऋषि चिह्नांकित मंत्रों में दर्भमीपा को अनुष्टुप छन्द भाग द्वारा राष्ट्र रूप में विद्युत और आहू नामक परमाणु पदार्थ सिद्धान्त दिये गये हैं।⁴² अथर्ववेद में राष्ट्र रूप के बल के लिये त्रिष्टुप छन्द भेद द्वारा ऋषि तप (ऋषिरुय वैज्ञानिक अनुसन्धान करने वाले कर्म) को पहले करने का निर्देश दिया गया है।⁴³ अथर्ववेद में भी राष्ट्र रूप सूर्य की राज्ञ नामक किरणों द्वारा करने वाले कर्मों को दधि मन्थाम, श्रुतम, रूपों में पदार्थों को प्रयोग करने के सिद्धान्त दिये गये हैं।⁴⁴

³⁹ अथर्ववेद १५.१०.२

⁴⁰ अथर्ववेद १९.२४.१

⁴¹ अथर्ववेद १९.३७.३

⁴² अथर्ववेद १९.३०.३

⁴³ अथर्ववेद १९.४१.१

⁴⁴ अथर्ववेद २०.१२७.९१०

अथर्ववेद का यह सूत्र कुन्ताप सूत्र भी कहा जाता है। इसके सभी प्रकरण सूर्य विद्याओं को ही राष्ट्ररूप की व्याख्या दे रहे हैं।

इस तरह से लगता यही है कि जिस समय वेदों का निर्माण हुआ उसी समय विज्ञान पूर्ण पराकाष्ठा पर या वेद मंत्रों में जितनी बारीकियां सूक्ष्मता से एक-एक अक्षर को अनेकों विद्या प्रणालियों द्वारा बार-बार अनेकों तरह से प्रयोग करके विद्याओं का विस्तार करने का जो दुष्कर कार्य है, उससे महर्षि दयानन्द द्वारा तथा समस्त भारतीयों द्वारा इस मान्यता को कि 'वेद ईश्वर कृत हैं' को मानने में किंचित मात्र शंका नहीं की जा सकती है। आशा है समस्त भारतीय विद्वान और पंथ जो वेदों में श्रद्धा रखते हैं, अपने-अपने मतभेदों को भुलाकर अपने-अपने वेद ज्ञान को आपसी विचार विनिमय और गोष्ठियों द्वारा सत्य की कसौटी पर कसें तथा उसे आधुनिक विज्ञान से जो प्रयोग पर आधारित है के साथ समन्वय करके विश्व और मानव जाति पर उपकार करने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही विश्व के अन्य विदेशी विद्वानों के जो वेद विषयक ज्ञान का आदर करते हुए, जो उन्होंने अपने जीवन को होम करके हम भारतीयों से ही प्राप्त किया है, उनके निष्कर्षों को भी आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर कसें।

1.2 ऋग्वेद में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द —

ऋग्वेद के अनुसार राष्ट्र कई छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था प्रत्येक राज्य का एक नायक राजा होता था और उन पर एक शासक सम्राट होता था जो राष्ट्र का मुखिया होता था जैसा कि निम्नलिखित मंत्र से ज्ञात होता है।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः।।⁴⁵

उक्त मंत्र ईश्वर व राजा के पक्ष में उभयार्थी है। राजा के पक्ष में इसका अर्थ है— हे राजन्! अभिषिक्त राजगण भी तुझे चाहते हैं, किरणों के समान तेजस्विनी शक्तियों या प्रजाओं से पवित्र आचारवान अभिषिक्त हैं, तुम उनको प्राप्त हों। इस प्रकार छोटे-छोटे राजा भी अपने मण्डलों की प्रजाओं द्वारा अभिषिक्त हों और वे अपने बीच

⁴⁵ ऋग्वेद १.१३.४

में सूर्य के समान अधीन रहें, इससे वह संकेत मिलता है कि वैदिककाल में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। प्रत्येक राज्य के अलग-अलग राजा होते थे। उन सभी राजाओं पर एक चक्रवर्ती सम्राट होता था। जिस प्रकार सूर्य समस्त संसार का सञ्चालन करता है, तथैव चक्रवर्ती सम्राट सभी राजाओं पर सर्वोपरि होता था। शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये तीन प्रकार की सभाएं होती थीं। जैसा कि इस मंत्र में उक्त है

त्रीणि राजाना विदथे पुरुणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।⁴⁶

महर्षि दयानन्द जी के अनुसार जो कि संसार में धर्म के साथ राज्य पालनादि किया जाता है। इस व्यवहार को सभा और संग्राम तथा सेना सब प्रकार संचित करे। अर्थात् जो राजा और प्रजा के भद्रपुरुषों के दोनों समुदाय हैं, वे उत्तम ज्ञान और लाभदायक इस जगत अथवा संग्रामादि कार्यों में राजसभा, धर्मसभा, विधानसभा अर्थात् विद्यादि व्यवहारों की वृद्धि के लिये ये तीन प्रकार की सभा नियत करें। इन्हीं से संसार की सब प्रकार उन्नति करें। इससे ज्ञात होता है कि राज्य में तीन प्रकार की सभाएं थीं।

(१) राजार्य सभा

(२) धर्मार्य सभा

(३) विद्यार्य सभा

ये सभाएं यथा समय कार्य करने हेतु राजा का निर्देशन करती थीं। शासन-व्यवस्था प्रजातांत्रिक ढंग से होती थी। जैसा कि निम्नलिखित मंत्र में संकेत मिलता है।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन्मन्दयत्सखम्।⁴⁷

हे विद्वान् ! शीघ्रता से कार्य करने के लिये जिस प्रकार वेगवान् अश्व को नियुक्त किया जाता है, उसी प्रकार आशु शीघ्रकारी, प्रजापति या सुव्यवस्थित राष्ट्र के

⁴⁶ ऋग्वेद ३.३८.६

⁴⁷ ऋग्वेद १.४.६

आश्रय उसके शोभाजनक समस्त प्रजाओं और नेता पुरुषों को सुप्रसन्न करने वाले और समस्त मित्रों को प्रसन्न रखने वाले स्वामी होने योग्य पुरुष को शीघ्र कार्य सम्पादन के लिये इस पृथ्वी पर नियुक्त करें। इससे संकेत मिलता है कि पूरे राष्ट्र में विद्वानों की सभा द्वारा ही राजा का चयन किया जाता था। वे विद्वान् राष्ट्र की सुव्यवस्था, सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए सुयोग्य, व्यावहारिक, जो प्रजा, नेताओं एवं समस्त मित्रों को संतुष्ट रख सके, ऐसे विद्वान् शक्तिशाली पुरुष को राजा के रूप में चयन करते थे। इसके बाद भी राजा स्वतंत्र नहीं होता था। किसी भी राज, धर्म व विद्या संबंधी कार्य सम्पादन हेतु उसे उससे सम्बन्धित सभा की सलाह लेनी आवश्यक होती थी। इस राज्य व्यवस्था से भी प्रजातंत्र की खुशबू आती है। राजा की विशेष सामर्थ्य होती थी जैसा कि निम्नलिखित मंत्र से पता चलता है

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ।⁴⁸

भाष्यार्थ— हे सैकड़ों पदार्थों के ज्ञान, बुद्धि और सामर्थ्य वाले राजन्! संग्रामों में विजय प्राप्त कराने वाले ऐश्वर्यवान्! तुझको हे इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक! धनों राज्यादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति हेतु हम आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं, तुझे हम ऐश्वर्य पद से विभूषित करते हैं। इससे स्पष्ट है वह चयनित राजा जिसकी विद्वज्जन नियुक्ति करते थे, सभी प्रकार के पदार्थों का ज्ञाता, विविध प्रकार की बुद्धियुक्त, सभी प्रकार से सामर्थ्यवान् होता था। युद्ध में विजय प्राप्त कर ऐश्वर्यवान् होने के कारण उसे इन्द्र भी कहा जाता था, वह शत्रुओं का नाश करने वाला होता था तथा सभी प्रकार के धन व धान्य से परिपूर्ण होता था।

राष्ट्र में राजा का सर्वोच्च व पूजनीय स्थान होता था। वह प्रजाजनों व धर्मात्माओं द्वारा अभिषिक्त होता था। राजा की चयन प्रक्रिया का कितना सौहार्द्रपूर्ण वातावरण होता था कि विद्वज्जन योग्यतानुसार उसका चयन करते थे फिर प्रजा धर्मात्मा व विद्वज्जन मिलकर उसका अभिषेक करते थे। अग्रलिखित मंत्रों में इस संबंध में कहा गया है।

यो रायो३ वनिर्महान्सुपारः सुन्वतः सरव्रा । तस्मा इन्द्राय गायत ।⁴⁹

⁴⁸ ऋग्वेद १. १४.९

भाष्यार्थ— जो परमेश्वर या राजा ऐश्वर्य का बड़ा भारी रक्षक है, व दाता है। जो उत्तम प्रकार से पालन—पोषण करने वाला, सब कार्यों की पूर्ति करने वाला है वह उपासना करने वाले धर्मात्मा पुरुषों और अभिषेक करने वाले प्रजा जनो का मित्र है। उस परम ऐश्वर्यवान राजा की स्तुति करो।

उक्त ऋचानुसार राजा ऐश्वर्य का रक्षक व दाता है, तन, मन, धन से प्रजा का पालन पोषण करने वाला है। वह उपासना करने वाले अर्थात् समीप रहने वाले धर्मात्मा पुरुषों और आम जनता के साथ मित्रवत् व्यवहार करता है। अर्थात् वह अहंकारादि भावना से मुक्त होता है, जिससे कि धर्मात्मा पुरुष उससे निर्भय होकर निःसंकोच मिल सकें और हित की बात यदि राजा को अप्रिय लगने वाली हो तो भी मित्रवत् राजा से कह सकें, जिससे राजा को अधर्माचरण से रोका जा सके। राजा प्रजा के सुख समृद्धि को बढ़ाने वाला तथा धर्म का रक्षक होता यह कार्य वह अपने विशेष तेज के प्रभाव से करता था जैसा कि अधोलिखित मंत्र में कहा गया है।

अपां नपातमवसे सविता रभुपस्तुहि। तस्या व्रतान्युश्मसि।⁵⁰

भाष्यार्थ— प्रजाओं को धर्म से न गिरने देने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी तथा सूर्य के समान प्रजा से जल के समान कर ग्रहण करके प्रजा के हितों में ही उसको व्यय करने वाले राजा का मैं गुणगान करता हूँ। हम सदा उसके ही मैं बनाये धर्म नियमों को मानें और चाहें। तदनुसार राजा सूर्य के समान तेजस्वी होता था। अर्थात्— वह विशेष प्रभावशाली होता था। जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से जल ग्रहण करके बादलों में परिवर्तित करके सर्वलोक कल्याणार्थ वृष्टि के रूप में वापस कर देता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजा से कर ग्रहण करके प्रजा की सुख समृद्धि के लिये ही व्यय करता था। इस धन के द्वारा वह सेना राज्यादि के कार्य संचालित करता था। यथा समय राष्ट्र रक्षा हेतु, धार्मिक उत्सव व न्याय प्राप्ति हेतु खर्च करता था। सज्जनों की सुरक्षा, दुष्टों को दण्ड देने के व्रत को वह धारण करता था। इस प्रकार जो व्यक्ति अन्याय व अधर्म पर चलने का प्रयास करता था उसको वह दण्ड देता था

⁴⁹ ऋग्वेद १.१४.८

⁵⁰ ऋग्वेद १.५२२.६

जिससे धर्म की रक्षा होती थी। इस प्रकार राष्ट्र धर्म की रक्षा का पूरा दायित्व राजा का ही होता था।

सेना का गठन — सुचारु रूप से शासन व्यवस्था के संचालन हेतु एवं राष्ट्र की रक्षा के लिये राजा का दायित्व होता था कि वह शक्तिशाली सेना का गठन करे। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल पञ्चम अनुवाक बाइसवें सूक्त के दशम मंत्र में कुछ ऐसा ही कहा गया है।

आग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्। वरुत्री धिषणां वह॥⁵¹

भाष्यार्थ— हे अग्रणी राजन्! तू इस राष्ट्र में रक्षण कार्य हेतु गमन करने योग्य पृथ्वी, भूमियों और तीव्र गति से गमन करने वाली सेनाओं को अपने वश में कर अर्थात् सम्भाल! हे न्यायकारी! विवेकी! अग्ने! राष्ट्र के नेता! शत्रुनाशक! तू सबको पालन-पोषण करने वाले, के समान तेजस्वी पुरुषों को वरण करने योग्य, सबको सुख देने वाली, आहुति के समान सर्ववशकारी, उत्तमवाणी प्रजा के धर्मों का उपदेश करने वाली वेद वाणी को भी प्रजा के पालन के निमित्त धारण कर। अर्थात् स्पष्ट है कि राष्ट्र की रक्षा का पूरा भार राजा पर होता था, वेदाज्ञानुसार वह सुयोग्य सैनिकों, सेनापति आदि के द्वारा सेना का गठन करता था। क्योंकि राष्ट्र की रक्षा हेतु तीव्रगामी सेनाओं की जरूरत तो पड़ती ही थी। ऊबड़-खाबड़ भूमि में सेना तीव्र गति से नहीं चल सकती इसके लिये योग्य भूमियों को भी अपने वश में करने की आज्ञा वेद में दी गयी है। तदनुसार इस बात का संकेत मिलता है कि सेनाओं के आवागमन हेतु राजा लोग राजमार्गों का भी निर्माण कराते थे। राजा को न्यायकारी, विवेकी, अग्नि आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। अग्नि से तात्पर्य है 'अग्रणी भवति इति' यज्ञकार्य में जो अग्रणी हो उसे अग्नि कहते हैं। राजा भी राष्ट्र-रक्षा रूपी यज्ञ में अग्रणी होता है। विवेकी का अर्थ है— पक्षपातरहित सत्यासत्य का निर्णय करने वाला। राजा के ये गुण उसका वेदानुयायी होना सिद्ध करते हैं। राजा, प्रजा, धर्मात्मा पुरुष, विद्वतजन आदि सबका एक उद्देश्य होता था

⁵¹ ऋग्वेद १.५२२.१०

कि राष्ट्र एवं धर्म की रक्षा हो। राज्याधिकारी सैनिक आदि इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु युद्ध करते थे। जैसा कि अग्रलिखित मंत्र में कहा गया है।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः।⁵²

भावार्थ— सामर्थ्यवान् राजा पृथिवी से लेकर सात धारण करने योग्य पदार्थों से युक्त होकर जिस कारण से पराक्रम करें उसी निमित्त विद्वान्, धर्मात्मा, राज्याधिकारी और सैनिकजन हमारी रक्षा करें। अर्थात् राजा की विजय प्रजा की रक्षा सबका एक ही उद्देश्य है।

इससे पता चलता है कि विद्वानों से परामर्श—प्राप्त कर राजा जिस कारण पराक्रम किया करता था, विद्वज्जन भी उसी प्रकार का प्रचार कर प्रजा में सद्भावना का विकास करते थे ताकि युद्ध में नरसंहार के परिणाम स्वरूप प्रजाजनों में राजा के प्रति दुर्भावना जागृत न हो जाये। अतः वे उपदेश करते थे कि राष्ट्र व धर्म की रक्षा हेतु राजा का दुष्टों को दण्ड देना अत्यावश्यक है। इसके बिना राष्ट्र धर्म की रक्षा असम्भव है। राज्य के अधिकारीगण मंत्री, सेनापति आदि भी राजा के आदेश को ही शिरोधार्य करते थे तथैव सैनिक भी। राजा के आदेश में कोई भी किसी प्रकार की लापरवाही नहीं होती थी। राजा की सर्वोच्च शक्ति के रूप में जाना जाता था। इस मंत्र में राजा को सात पदार्थों से युक्त होकर पराक्रम करने को कहा गया है। वे सात पदार्थ इस प्रकार हैं।

(१) स्वामी (२) अमात्य (३) सुहृत् (४) दुर्ग (५) राष्ट्र (६) बल (७) कोष।

इन सात पदार्थों से युक्त होकर राजा पराक्रम करता था।

सेनापति की नियुक्ति— सेना का उचित प्रकार से गठन व सम्बर्द्धन हो इसके लिये एक सेनापति की नियुक्ति की जाती थी जैसा कि अग्रमंत्र में उक्त है।

उच्छिष्टं चम्बोर्भर, सोमं पवित्र आसृज।

निधेहि गोरधि त्वचि।⁵³

⁵² ऋग्वेद १.५.२२.१६

हे राजन्! पदाति और यान (अश्वारोही, रथारोही आदि) दोनों प्रकार की सेनाओं के ऊपर सुशिक्षित पुरुष को उत्तम पद पर स्थापित कर। पवित्र करने वाले अथवा कष्टकों के शोधक पद पर सर्वज्ञापक पुरुष को नियुक्त कर।

अर्थात्— सेना का दो भागों में विभाजन किया गया था। (१) पदाति (पैदल) तथा (२) यान जिसमें कि अश्वारोही, रथी आदि होते थे। दोनों प्रकार की सेनाओं के ऊपर एक सेनापति की नियुक्ति होती थी, जो कि सुशिक्षित, सुयोग्य, शक्तिशाली, धर्मात्मा, विघ्न—बाधाओं से संघर्ष करने वाला, सर्वज्ञापक आदि गुणों से युक्त होता था। इस प्रकार के सेनापति की नियुक्ति अमात्य वर्ग, धर्मात्मा, विद्वज्जनों के परामर्श के बाद राजा स्वयं करता था। वह सेनापति दोनों प्रकार की सेनाओं के निरीक्षण, संचालन व सम्वर्द्धन में अपना तन—मन व जीवन ही लगा देता था। वह राजा की आज्ञानुसार इन सेनाओं द्वारा राष्ट्र व धर्म की रक्षा करता था।

राष्ट्र रक्षा हेतु वीरों को उपदेश— राष्ट्र के वीर पुरुषों को भी योग्य राजा सेनापति, सेनानायक का आश्रय लेने के लिये वेद में उपदेश किया गया है, जिसका विद्वज्जनों, धर्मात्माओं द्वारा प्रचार होता था, जिससे जन—जन में राष्ट्रभक्ति की भावना जागृत होती थी। जैसा कि निम्नलिखित मंत्र में कहा भी गया है।

आ व इन्द्र क्रिवि यथा वाजयन्तः शतक्रतम।

महिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः।।⁵⁴

अन्न की कामना करने वाले किसान लोग जिस प्रकार कूप का आश्रय लेते हैं और जल से क्षेत्रों का सिञ्चन करते हैं, उसी प्रकार हे वीर पुरुषो! आप लोगों में से संग्राम में विजय और ऐश्वर्य की कामना करने वाले जन सैकड़ों प्रजाओं और कर्मों में कुशल, शत्रु के नाशक, कार्यदक्ष, ऐश्वर्यवान शत्रुघातक, दानशील पुरुष का आश्रय ग्रहण करो। हे वीर पुरुषो तब जलों के समान सदा बहने वाले ऐश्वर्यों से प्रजा जनों का (राज वर्ग और प्रजा वर्ग दोनों का) सेवन कर अर्थात् उन्हें बढ़ाए। देश के वीर पुरुषों को प्रेरित करने के लिये प्रथम मण्डल छठे अनुवाक के तीसवें

⁵³ ऋग्वेद १.६२८.९

⁵⁴ ऋग्वेद १.६३०.१

सूक्त में इसी बात की चर्चा की गई है कि वीर पुरुषों अर्थात् क्षत्रियों को चाहिए कि उत्तम व योग्य शासक का आश्रय लें तथा राजा और प्रजा दोनों की सेवा करें। उनकी समृद्धि के लिये अपना तन—मन बलिदान कर दें। वीर सैनिक राजा और प्रजा दोनों के लिये सम्माननीय होते थे।

सेनापति का दायित्व—सेनापति के कर्तव्य को अगले मंत्र में दर्शाया गया है।

पताति कुण्डूणाच्या दूरं वातो वनादधि।

आ तू न इन्द्र शंसय गोठवश्वेषु शुभिषु सहस्रेषु तुवीमध॥

वायु जिस प्रकार वन से निकल कर भी बहुत दूर तक अति कुटिल गति से चला जाता है अथवा वह दाहकारी अग्नि की ज्वाला के साथ दूर तक फैल जाता है उसी प्रकार वायु के समान बलवान सेनापति भी समूह से निकलकर राजनीति की कुटिल गति या शत्रुदाह प्रताप और पराक्रम वाली शक्ति से दूर तक आक्रमण करे और तू हमें गौ, अश्वादि पशु व उत्तम ऐश्वर्यों से सम्पन्न कर। आशय यह है कि सेनापति को इतनी सामर्थ्य व शक्ति होनी चाहिए कि जिस प्रकार वायु दूर तक अग्नि प्रज्वलन में समर्थ होती है उसी प्रकार सेनापति भी यदि सेना से अलग भी पड़ जाये तो भी दुष्टों का संहार करे। गौ आदि पशुओं की रक्षा एवं ऐश्वर्य प्रदान करने की उसमें विशेष सामर्थ्य होती है। वह प्रजा के लिये दुःख दायी, निन्दक दुष्ट पुरुषों का विनाश करता है। हिंसा फैलाने वाले, आघात करने वाले डाकू पुरुषों को विनष्ट करता है या राष्ट्र से परे कर देता है।

राजा—प्रजा संबंध— राजा प्रजा के संबंध मधुर, सौहार्द पूर्ण एवं सहानुभूति युक्त तो होते ही थे इसके अतिरिक्त उनके संबंध पिता—पुत्र जैसे होते थे। प्रजा, राजा को अपने पिता के तुल्य मानती थी, राजा भी प्रजा को अपनी सन्तानों के समान ही देखता था। दोनों के परस्पर प्रगाढ़ संबंध थे व एक दूसरे के लिये बलिदान होने का भाव रखते थे। जैसा कि निम्नलिखित मंत्र से स्पष्ट होता है।

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्य जत्वापये।

सखा सख्ये वरेण्यः ।⁵⁵

जिस प्रकार पालन करने वाला पिता, पुत्र को अपना सर्वस्व दे देता है तथा आप्त विद्वान् योग्य शिष्य को अपना ज्ञान प्रदान करता है, बंधु-बंधु को अपना धन, मित्र, मित्र को अपना धन व सहयोग प्रदान करता है। उसी प्रकार हे राजन् तुम भी हमारे पिता बन्धु व मित्र होकर मुझ पुत्र, बंधु मित्र के लिये वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ होकर सब कुछ प्रदान करता है। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन राजा प्रजा के लिए पिता, भ्राता, मित्र आदि के रूप में हर प्रकार से प्रजा का पालन करने के लिये तत्पर रहता था। प्रजा भी राजा को अपना स्वामी, इष्टदेव व सर्वस्व मानती थी, जैसा कि अनुवाक १२ सूक्त ७१ म.१ में वर्णन प्राप्त होता है। कामनीशील स्त्रियां जिस प्रकार अपने कमनायुक्त पति को प्राप्त होकर उसे प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार एक ही देश में रहने वाली प्रजाएं प्रेमपूर्वक चाहती हुई अपने प्रति प्रेम करने, बाले पालक राजा को प्राप्त होकर उसे अच्छी प्रकार समृद्ध करें।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ऋग्वैदिक काल में राजनीति का स्वरूप पूर्ण विकसित, सभी प्रकार के उत्तरदायित्वों से परिपूर्ण था। राष्ट्र के सभी वर्गों का उसमें पूर्ण सहयोग होता था। राजा, मंत्री, सेनापति, वीर, विद्वान् एवं प्रजा आदि सभी का एक लक्ष्य होता था कि राष्ट्र की उन्नति किस प्रकार हो। राष्ट्र किस प्रकार खुशहाल व समृद्ध हो, प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न हो, राष्ट्र में धन धान्य व ज्ञान की कमी न हो आदि। राजा व प्रजा दोनों ही मिलकर सुख समृद्धि की प्राप्ति करते थे जैसा कि निम्नलिखित मंत्र से प्रतीत होता है।

तयोरिद् घृतवत् पयोविप्रा रिहन्ति धीतिभिः गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे।⁵⁶

उक्त राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के तेज से युक्त पुष्टि कर अन्न के समान परिपोषक सार भाग को विद्वान् लोग नाना ज्ञान मयी रीतियों से स्थिर पृथ्वी के धारण या शासनकारी राजपद का आश्रय लेकर ऐसे उपभोग करते हैं, जैसे स्वादिष्ट रस के पदार्थ को बालक अंगुलियों से चाटा करते हैं। भावार्थ यह है कि सुख

⁵⁵ ऋग्वेद १.६२६.३

⁵⁶ ऋग्वेद १.२२.१४

समृद्धि युक्त राजा के राज्य में अनेक प्रकार से उपभोग करने योग्य पदार्थों का विद्वान पुरुष वैज्ञानिक आदि आविष्कार करते थे जिस आनन्द राज्य के सभी वर्ग लेते थे।

1.3 यजुर्वेद में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द —

आचार्य डॉ. सत्यव्रत राजेश कतिपय विदेशी विद्वानों तथा पाश्चात्यों का अन्धानुकरण करने वाले तथा वेदों से अनभिज्ञ भारतीय विद्वानों की मान्यता है कि पूर्व में भारतवर्ष कभी एक राष्ट्र नहीं रहा। भारतीय लोगों को न राष्ट्र का ज्ञान था तथा न यहाँ कभी राधेय चिन्तन किया गया। सामान्य व्यक्ति जब उनके विचारों को पढ़ता है तो उसके नी मन में भारत का ऐसा ही चित्र उभरता है। अपरिमन मस्तिष्क वाले छात्र तो उन विचारों को पढ़ कर पाश्चात्य जगत् से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। क्योंकि उनके विचार में पाश्चात्यों ने हमें राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता सिखाई जिससे हम सदा से अनभिज्ञ थे।

वे लोग पाश्चात्यों के इन विचारों से प्रभावित होते होंगे जबकि हमें उनके इन विचारों को पढ़ कर उनकी बुद्धि पर तरस आता है तथा उनके अधूरे ज्ञान तथा पण्डित मान्यता पर हंसी आती है। वे यह तो कहते हैं कि विश्व का पुराना साहित्य वेद है? किन्तु उन्होंने कभी यह देखने का कष्ट नहीं किया कि वेद में क्या है। यदि उन्होंने ऋग्वेद तथा सामवेद के इन्द्र सूक्तों को देखा होता या अथर्ववेद के भूमि सूक्त को देखा होता तो उनकी आंखें फटी रह जाती तथा उन्हें अपनी मान्यता पर पुनः विचार करना होता। उन विषयों का विवेचन तो उन वेदों के लिखे निबन्धों में ही पाठक देखेंगे मेरा विषय तो यजुर्वेद से सम्बद्ध है अतः मैं उसी पर विचार प्रस्तुत करूंगा। वेद के भावगाम्भीर्य को ऋषि महर्षि ही समझ सकते हैं। वर्तमान काल में वेद के भावों को समझने के लिये महर्षि दयानन्द की दृष्टि अत्यन्त उपयोगी है। अतः उनके वेद भाष्य से उद्धरण मेरे लिये आवश्यक हो जाते हैं।

जो लोग आर्यावर्त के निवासियों को राष्ट्र भावना से भारत को अनभिज्ञ मानते हैं क्या उन्हें यह ज्ञान नहीं है कि जब वेदों में राष्ट्र शब्द है तो उनके ज्ञाता, राष्ट्र भावना से शून्य कैसे माने जा सकते हैं, वेदों में अनेक स्थलों पर राष्ट्र शब्द

का प्रयोग हुआ है। वेद मेरे शोध का विषय होने से मैं प्रथम उन स्थलों का उल्लेख करूंगा जिनमें राष्ट्र शब्द आया है तथा पश्चात् उनमें से ही मंत्र के आधार पर यह बताऊंगा कि वेद में कैसे सर्वांगपूर्ण राष्ट्र का विधान है। राष्ट्र सम्बन्धी कुछ मंत्र, जिनमें राष्ट्र पद आया है ये हैं।

वयं राष्ट्र जाग्रयाम पुरोहिताः।⁵⁷

हम राष्ट्र को आगे ले जाने वाले विद्वान राजा नेता आदि सदा जागरूक रहे ।

मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्।⁵⁸

हे राजन्! आपकी चेष्टाओं से कभी आपसे आपके कार्य व्यवहार से यह राष्ट्र नष्टभ्रष्ट न हो । अर्थात् राजा राष्ट्र को एकत्रित के लिये होता है न कि उसे नष्ट भ्रष्ट करने के लिये ।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे।⁵⁹

इस मंत्र का अर्थ आगे किया जाएगा किन्तु देखना यह है कि इसमें भी राष्ट्र शब्द आया है। आगे कुछ ऐसे मंत्र प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिनमें अनेक बार राष्ट्रदा तथा राष्ट्र पद आए हैं।

**वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्र में देहि स्वाहा वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्र ममुष्मै
दे हि वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्र मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै
देहि।⁶⁰**

ज्ञातव्य है कि इस एक ही मंत्र में आठ बार राष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है।

**अर्थेत् स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहार्थेत् स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती
स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः
परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र ने दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रममुष्मै**

⁵⁷ यजुर्वेद २३.९

⁵⁸ यजुर्वेद ११.१२

⁵⁹ यजुर्वेद २२.२२

⁶⁰ यजुर्वेद १०.२

दत्तापां पतिरसि पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्र मे देहि स्वाहापां पतिरसि राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दोपोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां गर्भोऽसि राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै देहि ।⁶¹

इस एक ही मंत्र में २० बार राष्ट्र पद आया है।

सूर्यत्वच स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै
दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रमनुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्त शवरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहा शक्करी स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रद राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत्त स्वाहा विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।⁶²

इस मंत्र में ३८ बार राष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है। यह लम्बी चौड़ी वेदमंत्र सूची प्रस्तुत करने का अभिप्रायः यह है कि उनकी समझ में यह स्पष्ट आ जाए कि वेद के ज्ञाता प्रामाण पूर्वक उनकी मान्यताओं को असत्य सिद्ध करते हैं। भारतीयों को राष्ट्रीयता से शून्य बताने वाले देखे कि हमने केवल यजुर्वेद से ही ६६ प्रमाण प्रस्तुत किए हैं जिनमें राष्ट्र शब्द आया है। जिनके एक ही ग्रन्थ में इतनी बार राष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है। उसे अपना धर्मग्रन्थ मान कर प्रतिदिन पढ़ने वालों को राष्ट्रीयता शून्य बताना अपनी अज्ञानता का प्रदर्शन मात्र नहीं तो और क्या है? एक

मंत्र में हमारा राष्ट्र कैसा हो यह तथ्य सामने आने पर भारतीयों को राष्ट्रीय चेतना शून्य बताने वालों को शायद आश्चर्य मिश्रित नूतन ज्ञान की अनुभूति होगी। यह मंत्र यजुर्वेद के रखे अध्याय का २२वें अध्याय का २२वां है। जिसमें कहा है कि

⁶¹ यजुर्वेद १०.३

⁶² यजुर्वेद ४.१०

हे सर्वोपरि परमेश्वर हमारे राष्ट्र में वेद विद्या से प्राप्त किया हुआ तथा वेद और ईश्वर को जानने वाला ब्राह्मण वर्ग सर्वत्र उत्पन्न हो। बाण चलाने में निपुण उत्तम गुणवान्, शत्रुओं को अत्यन्त ताड़ना देने के स्वभाव वाला, महारथी या विशाल रथ एवं अत्यन्त बलवान् वीरों वाला, शूर निर्भय क्षत्रिय उत्पन्न हो। कामना पूरक वाणी एवं दुधारू गायें हो। भार वहन करने में समर्थ बलवान् बैल हो। तीव्र गति से चलने वाला अश्व, नगर एवं बहुत व्यवहारों की धारिका स्त्री, रथ पर स्थिर होने तथा शत्रुओं को जीतने वाला, सभा के योग्य सभ्य युवा उत्पन्न हो। इस विद्वानों का सत्कार करने वाले सुखों की संगति करने वाले या प्रजा को सुख देने वाले राजा के राज्य में विशेष ज्ञानवान् शत्रुओं के छक्के छुड़ाने वाला वीर पुरुष उत्पन्न हो। हम लोगों के कामना पूर्वक प्रयत्न करने पर मेघ वर्षा करें। हमारे लिये बहुत उत्तम फल वाली ओषधियां पकें तथा हमारा योग अप्राप्त की प्राप्ति तथा क्षेम प्राप्त का रक्षण अर्थात् जीवन निर्वाह की प्राप्ति समर्थ हो, सिद्ध हो।⁶³

आ ब्रान ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामराष्ट्र राजन्यः शूर इपयोऽतिव्याधी
महारथो जायतां दोग्धी धेनुर्वोढानऽवानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः
सभेयो युवाय राजमानस्य पीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो न कल्पताम्। आ त्वाहार्षमन्त
ध्वस्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्व सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिनशत्।

उपर्युक्त मंत्र में न केवल राष्ट्र का नाम ही आया है अपितु वह राष्ट्र किन-किन संसाधनों से भरपूर हों यह भी बतलाया गया है। जैसे कि ब्रह्मतेज युक्त ब्राह्मण, बलवान् बैल, तेजवान् अश्व, सम्पन्न प्रकृति आदि। इतना जान लेने पर भी क्या कोई यह कहने का साहस करेगा कि प्राचीन आर्यों को राष्ट्र का या राष्ट्रीय चेतना का ज्ञान न था? राजा का चुनाव वेद में न राष्ट्र का ही नाम आया है, अपितु वहाँ यह भी बताया गया है कि राजा जोर जबरदस्ती या प्रजा को भयभीत करके स्वयं नहीं बनता अपितु उसका चुनाव किया जाता है। यजुर्वेद वेद में कहा है कि विद्वान् इस शत्रु रहित को महती रक्षा के लिए, महान् श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए महान्

⁶³ यजुर्वेद. २२.२२

मांडलिक राजाओं के ऊपर श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए, उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए राजा बनाते हैं।

इम देवा असप सुवध्वं महते मन्त्राय महते ज्येध्याय नहते सागरज्या पेन्द्रिय स्येन्द्रियाय।⁶⁴

एक मंत्र में कहा है कि मैं तुझे सभा के बीच लाया हूँ तू न्याय राज्य पालन में निश्चित बुद्धि तथा सर्वथा निश्चल हो कर रह। सब प्रजाएं तुझे चाहें। आपसे राष्ट्र नष्ट भ्रष्ट न हो वे। सभा के बीच लाने का तात्पर्य स्पष्ट ही चुनाव से लाना है।

आ त्वाहार्षमन्त ध्वस्तिष्ठाविचाचलिः।

विशस्त्व सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिनशत्।⁶⁵

चुनाव के अधिकारी— पूर्व यजुर्वेद मन्त्र में ४०.६. 'इस राजा को देव कोटि के विद्वान् लाए' यह स्पष्ट संकेत है कि राजा का चुनाव बुद्धिजीवी ही करें तथा वे बुद्धिजीवी भी अधम कोटि के न होकर देव कोटि के हों। एक अन्य मंत्र में कहा है कि हे उत्तम बुद्धि वाले, अशि के तुल्य तेजस्वी विद्वान् राजन् हम अध्यापक तथा उपदेशक लोग प्रशंसित वाणी की व्यवस्था तथा विस्तृत भूमि के ऊपर केन्द्र में आपको देने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने कराने के लिये निरन्तर स्थापित करते हैं।

इडायास्पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।

जातवेदो निधीमहाग्ने हव्याय वोढवे।⁶⁶

इससे यह स्पष्ट है कि वेद राजा को चुनाव द्वारा नियत करने का आदेश देता है। किन्तु अनधिकारी व्यक्ति को वह चुनाव का अधिकार नहीं देता। राजा का चुनाव वे ही कर सकते हैं, जो अध्यापक उपदेशक कोटि के हों तथा देवत्व कोटि के बुद्धिजीवी हो। अर्थ काम आदि में आसक्त तथा अज्ञानता में भरे लोग चुनाव के

⁶⁴ यजुर्वेद ४०.९

⁶⁵ ऋग्वेद.१.२२.५

⁶⁶ यजुर्वेद १५.३४

अधिकारी नहीं है। आजकल एक बोटल में जिनका ईमान डगमगा जाता है या जो मिथ्या नारों में बहक जाते हैं या जो जाति वर्ग का पक्षपात करके वोट डालते हैं या जिन्हें यह भी ज्ञान नहीं है कि अमुक व्यसनी, चालाक या अपराध प्रवृत्ति वाले को विधानसभा या संसद में भेजने का परिणाम क्या हो सकता है, को चुनाव का अधिकार दे कर अनेक ऐसे व्यक्तियों को संसद भेज दिया है जिनका वास्तविक स्थान कारागार होना चाहिए था तथा राष्ट्र को उसका परिणाम घोटालों के रूप में खोखला होने के रूप में मिल रहा है। इसलिये वेद ने यह नियम दिया था कि सब को राजा आदि के चुनाव का अधिकार नहीं देना चाहिए अपितु उच्च कोटि के लोग ही चुनाव में भाग लें। आज भी यदि वेद की इस आज्ञा का पालन किया जाए। तो संसद तथा विधानसभा को नररत्न मिल सकते हैं तथा वेद की इस आज्ञा का उल्लंघन ही देश को दुर्दशा का कारण है। भारत को राजनीतिक चिंतन से शून्य मानने वाले आज भी भारतीयों की अनुपम निधि वेद से राजा के विषय में वर्षों सीख सकते हैं। वस्तुतः राज्य व्यवस्था तथा राजा के गुण कर्मों का बोध वेद को जाने बिना हो ही नहीं सकता। अभी हम बतला आए हैं कि तलवार या शक्ति के पर या प्रजा को बहका फुसला कर वेद के अनुसार राज्य पद प्राप्त न ही किया जाना चाहिए प्रत्युत अपने को योग्यतम सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए।

वेद भाष्य अनुसार राजा के गुण तथा कर्तव्यों का उल्लेख किया जा रहा है। राजा के गुण तथा कर्तव्य यजुर्वेद के एक मंत्र में राजा के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वह प्रभात के आरम्भ में प्रदीप्यमान सूर्य के समान तेजस्वी तथा उज्ज्वल आचरण वाला, लक्ष्मियों के मध्य उदार, उत्कृष्ट पदार्थों को देने वाला, धनों को धारण करने वाला, मनीषाओं को प्राप्त कराने वाला, ओषधियों और ऐश्वर्यों की रक्षा करने वाला, ब्रह्मचर्ययुक्त जितेन्द्रिय बलवान् पिता का पुत्र या अत्यन्त बलिष्ठ, प्रजा को बसाने वाला, जल और प्राण शक्ति से प्रकाश युक्त होकर शुभ गुणों का प्रकाश करता अर्थात् उन्हें फैलाता है।

श्रीणामुदारो धरणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणसोमगोपाः।

वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उपसामिधानः ।।⁶⁷

एक मंत्र में कहा है कि हे अग्नि के समान तेजस्वी सभापते आप असत्य को छोड़ने वाले होकर दुष्टाचारियों को दबाइए, अज्ञान को मिटाइये, अदान भावना एवं सब दुष्टाचरणों का मर्षण कीजिए, उन्हें पनपने न दीजिए तथा हमारे लिये वीर पुरुषों से युक्त सेना और धन प्रदान कीजिए ।

अति नि हो अति सिधोऽत्यचित्ति भत्यरातिमग्ने ।

विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यं सहवीर रयिन्दा ।।⁶⁸

राजा में यथा अवसर अनेक गुणों का प्रादुर्भाव आवश्यक है। कभी वह चन्द्रमा के समान शीतल दिखता है, कभी अग्नि के समान तेजस्वी, कभी सूर्य के समान शत्रुओं को तपाने वाला तथा कभी विद्युत के समान ऐश्वर्य प्रापक होता है। वह क्षेत्रों भाण्डलिक राजाओं का क्षत्रपति, सम्राट होता है तथा विद्या एवं धर्म के प्रकाश करने वालों की निरन्तर रक्षा करता है।

सोमस्यत्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्ने जसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रियस्येन्द्रियेण ।

क्षत्राणां क्षत्र तिरेध्यति दिघून् पाहि ।।⁶⁹

जो सूर्य के समान श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशित, सत्पुरुषों की शिक्षा से उत्कृष्ट बुरे व्यसनों से पृथक् सत्य न्याय से प्रकाशित, सुन्दर अंगों वाला, सर्वत्र प्रसिद्ध, सब के सत्कार और जानने योग्य व्यवहारों का ज्ञाता, दूतों द्वारा सब मनुष्यों के आशय को जानने वाला, शुद्ध न्याय से प्रजाओं में प्रवेश करता है, वही पुरुष राजा होने के योग्य है।⁷⁰ राजा होने के लिये उसे ईश्वर के समान प्रजाओं के पालने और सुख देने में समर्थ होना चाहिए।⁷¹ यजुर्वेद में ब्रम्हचर्य का पालन करने वाले राजा को

⁶⁷ यजुर्वेद २२.१२

⁶⁸ यजुर्वेद ६.२७

⁶⁹ यजुर्वेद २७.१०

⁷⁰ यजुर्वेद १४.१२, ९१३.१२

⁷¹ यजुर्वेद ७.२७

४८ ४०.६ तथा २६.६ मंत्र में आदित्य कहा गया है। राजा के लिये सदाचार का पालन नितान्त आवश्यक है। जो मन पर वशीकरण नहीं कर सकता वह प्रजा को वश में कैसे कर सकता है। उसका उद्देश्य महान् है। वह ब्रह्मचर्य पूर्वक दीर्घायु को प्राप्त करता हुआ सत्य धर्म से प्रेम रखने वाले अमात्यों सहित न्याय का पालन करने वाला, पक्षपात रहित न्यायाधीश, समस्त सुलक्षणों से युक्त, दुर्व्यसनों से पृथक् होकर मानव जीवन के उद्देश्य और मोक्ष को धैर्य अर्थ का धर्म शांति तथा अप्रभाव पूर्वक शनैः शनैः सिद्ध करने में तत्पर रहता है।⁷² एक मंत्र में राजा को अनाधृष्यः किसी से न दबने वाला जातवेदाः विद्या को प्राप्त एवं अनिष्टदुःख से प्रथक् रहने तथा करने वाला विराट ज्ञान से विशेष प्रकाशमान क्षत्र भ्रतराज्य का भरण पोषण करने वाला बताते हुये कहा गया है। साधनों से हमारी सब ओर से रक्षा कीजिए।⁷³ एक मंत्र के भावार्थ में महर्षि दयानन्द प्रजा की ओर से कहते हैं कि हे राजन! जो पक्षपात छोड़कर ईश्वर के तुल्य न्यायाधीश हों, जो कदाचित हम लोग कर भी न दें, तो भी हमारी रक्षा करे तो आपके अनुकूल हम सदा रहें।

सविता त्वा सवाना वनस्पतीनाम्।

सोमो सुवतामग्निहपतीना बृहस्पतिर्वाच इन्द्रोज्येष्ठयाय रुद्र सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्।।⁷⁴

इस मंत्र में अदुग्धाः इव धेनवः आया है। जिसका अर्थ होता है न दुही गौ के समान। प्रजा का दोहन कर ही है। अतः किसी परिस्थितिवश कर न देने वाली प्रजा ही न दुही गाय के समान है। राजा तथा प्रजा का सम्बन्ध पिता पुत्रवत् होता है। कभी राज्य में अकाल, अतिवृष्टि, महामारी आदि दैवी प्रकोप आ जाते हैं जिनके कारण प्रजा कर देने में असमर्थ रहती है। वेद का आदेश है कि राजा का कर्तव्य है कि वह उस अवस्था में भी प्रजा को न्याय तथा सुरक्षा प्रदान करे। क्या ये आदेश राष्ट्रीय चेतना शून्य सिद्ध करते हैं या राष्ट्रीयता तथा उच्च राजनीतिक चेतना से

⁷² यजुर्वेद २७.५

⁷³ यजुर्वेद २७.३५

⁷⁴ यजुर्वेद ३९.९

युक्त बतला रहे हैं? एक मंत्र में तो अग्नि के तुल्य तेजस्वी राजा को स्पष्ट कहा है कि –

पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा यजुर्वेदक्षात्य ।

क्रिया से ऐसे आप इन प्रजा जनों की रक्षा करे जैसे पिता-पुत्र की करता है। एक मंत्र में राजा को ऐश्वर्यों में सविता के समान, प्रेरकों में अग्नि के सदृश, वनस्पतियों में सोम के समान, धर्मपालकों में सत्य के तुल्य, शुभकर्मों में श्रेष्ठ, सब के मित्र तुल्य, वेद वाणी के लिये महाविद्वान् के सदृश, श्रेष्ठता के लिये परमैश्वर्यवान् जैसा तथा गौ आदि पशुओं के लिये शुद्ध वायु के समान बतलाया है।

महाँ २ इन्द्रो वज्रहस्तषोडशी शर्म यच्छतु हन्तु पाप्मानंयोस्मान् द्वेष्टि ।⁷⁵

इसका भाव है कि जैसे सूर्य संसार में हरियाली तथा प्रकाश ला देता है ऐसे हो राजा राज्य में समृद्धि तथा ज्ञान का प्रकाश फैलावें। अग्नि जैसे यंत्र एवं यानों को प्रेरणा दे कर चलाता है राजा भी उसी प्रकार अपनी प्रजा को शुभ प्रेरणा देकर उत्साहित करता रहे कभी निराश न होने दें। वनस्पतियों में जैसे सोम उत्तम तथा रोगनाशक है ऐसे ही राजा प्रजा से उत्तम गुण युक्त हो तथा पाप एवं अपराध के रोग से प्रजा को नीरोग रखें। जैसे सत्य ही धर्म तथा धर्म ही सत्य है इसी प्रकार राजा प्रजा के साथ सत्य व्यवहार करें तथा स्वयं धर्मात्मा होकर प्रजा को धर्मात्मा बनाए। शुभ कर्मों में वह समस्त प्रजाओं में श्रेष्ठ बने जिससे प्रजा भी धर्मात्मा तथा श्रेष्ठ बनें। क्योंकि प्रायः प्रजा राजा का अनुकरण करती है। कहा भी है—

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापासमे समारू ।

राजानमनु वर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ।।

राजा के धर्मात्मा होने पर प्रजा धर्मात्मा बन जाती है। पापी होने पर पापी तथा सामान्य रहने पर सामान्य। प्रजा राजा का अनुकरण करती है जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा बन जाती है। इसलिये राजा को धर्मात्मा तथा श्रेष्ठ बनने को वेद प्रेरणा देता है। आगे कहा है कि वह सब के मित्र तुल्य हो। जैसे मित्र सदैव मित्र

⁷⁵ यजुर्वेद २६.१०

का हित सोचता तथा करता है ऐसे ही राजा भी प्रजा का हित सोचे तथा करे। वेद वाणी, सत्य तथा असत्य का, पाप एवं पुण्य का और करणीय एवं अकरणीय कर्तव्य कर्मों का बोध कराती है। वेद के ज्ञान से शून्य व्यक्ति को इनका ज्ञान नहीं हो सकता। अतः वह अज्ञान के कारण अन्याय को न्याय समझ सकता है पाप को पुण्य तथा अकरणीय कर्मों को करणीय कर्म। जो बाद में राज्य को अशान्ति तथा असंतोष की आग में झुलसा सकते हैं। अतः कहा है कि वह वेद वाणी के लिये महाविद्वान के सदृश हो।

राष्ट्र संचालन धन के बिना भी नहीं चलता। गृहस्थ की भांति राज्य में भी धन अत्यन्त आवश्यक है। जिस राष्ट्र के अर्थ की धुरी डगमगा जाती है वह राष्ट्र भी डगमाने लगता है। अतः राजा को श्रेष्ठता के लिये परमैश्वर्यवान् जैसा बतलाया है। राष्ट्र का धन पशु भी है। ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेष आख्यान में पशवो विवाहाः कहा है। जिसका भाव है कि उस समय में जिसके घर में दुधारू पशु नहीं होते थे उस परिवार के लोगों के साथ कोई विवाह करने को तैयार नहीं होता था। क्योंकि उस घर में पुष्टि का अभाव माना जाता था, और यह है भी सत्य। अतः राष्ट्र में पशु धन की नितान्त आवश्यकता है। इस मंत्र में राजा को पशुओं के लिये शुद्ध वायु के समान कहा गया है। शुद्ध वायु जैसे प्राण देती है, जीवन देती है ऐसे ही राजा को भी पशुओं को जीवित रखने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। उसके राज्य में पशु रोग से रहित रहें, इसके वह उपाय करे तथा कोई भी आवश्यक पशु न मारा जाए अपितु उपकारक पशुओं की वह शुद्ध वायु जीवन रक्षा करे, राज्य संचालन के लिये वेदों में सुन्दर उपदेश है। वेद के इस उपदेश पर राज्य संचालन किया जाए तो धरती स्वर्ग बन जाए।

एक मंत्र में राजा को महान् इन्द्र पापी और परमैश्वर्यवान् वज्रहस्तः शत्रुओं को मारने के लिये हाथ में वज्र रखने वाला शोडशी १६ प्राणादि कलायुक्त बता कर कहा है कि 'वह प्रजा को शर्म यच्छतु सुख देवे, पाप्मानं हन्तुपापात्मा निष्कृष्ट कर्म करने वालों को मारे तथा योस्मान् द्वेष्टि जो प्रज से द्वेष करें, धर्मात्माओं को सताए या उनसे बैर रखे उसे भी दण्डित करें।'।

इस मंत्र में भी राजा को महान् होने, ऐश्वर्य का संचय करने, पापी एवं शत्रुओं के लिये वज्रधारक, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सर्वगुण सम्पन्न होने, प्रजाओं को सुख देने तथा पापी द्वेषी अपराधियों को दण्ड देने का विधान है। एक मंत्र में गाय की उपमा देकर बताया है कि जैसे गौ प्रतिदिन अपने बछड़े को पालती हैं ऐसे ही राजा भी प्रतिदिन प्रजा की रक्षा करे।

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा, साम्राज्याय सुक्रतुः।

मृत्यो रूपाहि विद्योत्पाहि।।⁷⁶

एक अन्य मंत्र में राजा को उत्तम बुद्धि तथा कर्म युक्त (सुक्रतुः), सत्यव्रत का धारण करने वाला (धृतव्रतः) तथा उत्तम स्वभावयुक्त (वरुणः) बता कर कहा है कि आप साम्राज्य अर्थात् भूगोल में चक्रवर्ती राज्य करने के लिये न्यायालयों में निरन्तर स्थित रहें तथा अपनी प्रजा और वीरों की मृत्यु एवं चमकते आग्नेय स्त्री आदि से रक्षा कीजिए। अभि वत्सन्नस्वसरेषु धेनवः।।

वेद के साम्राज्य शब्द को देख कर भी जो भारतीयों को राजनीतिक चिंतन से शून्य मानते हैं उनकी बुद्धि से अज्ञान का पर्दा परमात्मा ही हटाएं। एक देश के राज्य को राज्य कहते हैं तथा भूमंडल के राज्य को, चक्रवर्ती राज्य को, साम्राज्य कहते हैं। जिनके धर्म ग्रन्थों में साम्राज्य का स्पष्ट उल्लेख है, जिनके वेदों में राष्ट्र शब्द का अनेक बार उल्लेख हुआ है, जिनके वेदों में भूमि सूक्त में मातृभूमि का अभिनंदन सिखाया है, तथा उसे 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'⁷⁷ – माता कह कर पुकारा है, उस देश के नागरिकों को राजनीतिक शून्य बताना केवल अपना अज्ञान प्रकट करना है। इस विषय का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिये आचार्य प्रिय व्रत वेदमनीषी विद्या मार्तण्ड का तीन भागों में लिखा ग्रन्थ वेदों के राजनीतिक सिद्धांत देखना चाहिए, जिससे ज्ञात होगा कि वेदों में पूर्ण राजनीति विद्या है, तथा आर्य लोग उसके पूर्ण ज्ञाता तथा प्रयोक्ता थे। मनु उद्घोषणा पूर्वक कहते हैं कि

⁷⁶ यजुर्वेद २०.२

⁷⁷ यजुर्वेद २६.११

वेद-शास्त्र को जानने वाला व्यक्ति सेनापत्य अर्थात् सेनाओं का संघटन और संचालन कर सकता है, राज्य का संचालन कर सकता है।

सेनापत्य राज्यं च दण्ड नेतृत्वमेव च ।

सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ।⁷⁸

दण्डनेतृत्व अर्थात् न्याय व्यवस्था का संचालन कर सकता है और सर्व लोकाधिपत्य अर्थात् समस्त भू मण्डल के चक्रवर्ती राज्य का संचालन कर सकता है और कहां वेदानभिज्ञ, भारतीयों को नीचा दिखाने का अवसर न चूकने वाले, सौ बार बोले झूठ को सत्य बतलाने वालों द्वारा यह कहना कि भारतीयों को राष्ट्र चिंतन आता ही नहीं था, यह हास्यास्पद नहीं तो क्या है?

1.4 अथर्ववेद में राष्ट्र शब्द—

विश्व के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन हेतु वैदिक साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। वेद भारतीय ही नहीं विश्व के मनीषियों के लिए ज्ञान स्रोत हैं। ये हमारी सभ्यता और संस्कृति की प्रेरणा का महासागर तथा संस्कृत भाषा का असीमित स्रोत हैं। वेदों का स्वाध्याय सच्चे अर्थों में जीवन का निर्माण करना है। वेदों में क्या है, यह किसी को ज्ञात नहीं क्योंकि वेदों को सामान्य जन दुरुह समझते हैं।

वेद शब्द का अर्थ— 'वेद' शब्द विद् धातु से बना है, जिसका अर्थ है ज्ञान, गमन और प्राप्ति । विद्या की प्राप्ति ज्ञान से ही संभव है। 'वेद' और 'विद्या' शब्द समान धातु से बने हुए लगते हैं, अर्थात् ये समानार्थक हैं। वेद कोई पुस्तक वाचक शब्द नहीं है, अपितु भिन्न-भिन्न ऋषियों के अनुभव सिद्ध आध्यात्मिक नियमों का संग्रह है। वेद में सभी विद्याएँ बीज रूप में विद्यमान हैं। वेद भारतीय आर्यों के सर्वप्रधान व सर्वमान्य धार्मिक ग्रन्थ हैं, जिनसे सच्चा, वास्तविक, तर्कपूर्ण और प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त होता है। ये संख्या में चार हैं यथा ऋक्, यजुर्वेद, साम और अथर्ववेद।

⁷⁸ मनुस्मृति १२.१००

वेद की प्रामाणिकता— वेद वाक्य ऐसी प्रामाणिक बात है, जिसके खण्डन की कोई गुंजाइश नहीं है। मनुष्य देहधारी होने के कारण उसका ज्ञान सीमित है, असीमित नहीं। जबकि वेद अनादि और अपौरुषेय हैं। मनुष्य रचित ग्रन्थ कभी निर्धान्त नहीं हो सकते। वेदों में निर्धान्त ज्ञान समाहित है। प्राच्य विद्वानों ने बिना किसी साक्ष्य के वेदों में समाहित ज्ञान के आधार पर यह निर्णय किया कि वेद प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। वेद भाष्यकार सायणाचार्य भी लिखते हैं कि 'वेद वह ग्रन्थ है, जो इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट को रोकने का अलौकिक उपाय बताता है। वेद ईश्वर की प्रेरणा से तरंगों द्वारा छन्दों में प्रसारित हुए, ऋषियों ने अन्तः में सुने और फिर सृष्टि के आदि में वेद—वाणी में कहे।

वेद की ईश्वर प्रदत्तता— वेद अपौरुषेय है, अर्थात् किसी पुरुष ने नहीं कहे। वेद अनादि है। यह अनादि स्वरूप तो ज्ञान में ही हो सकता है। ईश्वर अनादि और अनन्त है, वह पुरुष नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि वेद सत्य विद्याओं के दर्शन करता है। सभी दार्शनिक वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। जैसे 'शास्त्रयोनित्वात्'⁷⁹। अनेक विद्याओं से युक्त प्रदीपवत् सब अर्थों का प्रकाश करने वाले सर्वज्ञ शास्त्र का कारण ब्रह्म है। ऐसे सर्वज्ञ गुणों से युक्त शास्त्र को सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं बना सकता। तदू चनादानायस्य प्रामाण्यम्⁸⁰ ईश्वर का वचन होने से वेद चतुष्टय प्रमाण है। निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्⁸¹ परमात्मा की निज शक्ति—स्वाभाविक शक्ति से प्रकट होने के कारण वेदों का स्वतः प्रामाण्य है। अतः निष्कर्षतः कह सकते हैं कि वेद (संहिता) ईश्वर प्रदत्त हैं, मनुष्य की रचना नहीं।

'राष्ट्र' का शाब्दिक भाव — 'राज—दीप्तौ' से राष्ट्र बनता है। "राजतेदीपते प्रकाशते इति राष्ट्रम्।" पहले प्रकृति देश बनाती है, बाद में उसके निवासी 'राष्ट्र' बनाते हैं। जैसे कि आर्यावर्त सृष्टि का आदि देश और आदि राष्ट्र है। भौगोलिक परिवर्तन से देश बनते व बिगड़ते हैं। इसमें मनुष्य की अपनी कोई भूमिका नहीं है। मनुष्यों का काम तो अपने देशों का राष्ट्र बनाना है।

⁷⁹ वेदा .१.१.३

⁸⁰ वै.१.३.३

⁸¹ सां.५.५१

राष्ट्र निर्माण के सिद्धान्त भी सार्वभौमिक और सार्वकालिक हैं। आदि ग्रन्थ 'वेद' में भी 'राष्ट्र' है, उसका अपना भाव है। राष्ट्र की विविधता में एकता होती है, समरसता होती है, सग्रता होती है। राष्ट्रवासियों का शरीर अलग-अलग होते हुए भी भाव एक और एक ही भाषा 'राष्ट्र-भाषा' होती है। सम्पूर्ण राष्ट्र का चालक एक ही राष्ट्रपति होता है। उसी राष्ट्र को 'वेद भगवान्' ने मातृ भूमि जैसा पवित्र शब्द दिया है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'⁸² अतः आइये इसी वेद के उपदेश को चिन्तन का विषय मानते हुए राष्ट्र के वैदिक भाव का विवेचन करते हैं।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।⁸³

(१) अथर्ववेद के १२वें काण्ड का नाम पृथिवी सूक्त है, इसमें ६३ मंत्र हैं। इन सभी मंत्रों में देश के उत्थान, उसकी स्वाधीनता की रक्षा, नागरिकों के कर्तव्य आदि सभी बातों पर बहुत उच्च कोटि के विचार दिए गए हैं। उपर्युक्त प्रथम मंत्र में राष्ट्रोत्थान के लिये निम्न आठ गुणों का उपदेश किया है— सत्य, बृहद्, ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ। इन गुणों को धारण करके समाज के व्यक्ति सद्भावना से कर्तव्य पालन करें तो ऐसा राष्ट्र स्वाधीन और स्वावलम्बी बना रहेगा। मंत्र कहता है कि वह मातृभूमि हमारे भूत और भविष्य की रक्षा करती है।

(२) जिस मातृभूमि के मानवों के बीच में झगड़े नहीं हैं। जिसमें ऊँचे-नीचे एवं समतल प्रदेश हैं। जो मातृभूमि नाना प्रकार की गुणकारी औषधि, वनस्पतियों को धारण करती है, वह मातृभूमि हमें बढ़ावे और समृद्ध करें।

(३) जिस मातृभूमि में समुद्र, नदी और अनेक जल प्रवाह हैं, जिसमें किसान अन्न-उत्पन्न करके संगठित होकर रहते हैं, जिसमें यह श्वास लेने वाला और चलने वाला उत्साह के कार्य करता है। वह हमारी मातृभूमि हमें अपूर्व रसपान में स्थापित करें।

⁸² अथर्ववेद १२.१.१२

⁸³ अथर्ववेद १२.१.१

(४) जिस पृथिवी की चारों दिशाएं ऐसी हैं, कि जिसमें अन्न पैदा करके संगठित रूप से रहने वाले, श्वास लेने वाले, चलने वाले किसानों का पोषण करती है वह मातृभूमि हमें गौ में तथा अन्न में स्थापित करें।

(५) जिसमें हमारे पूर्वकाल के पूर्वजों ने विशेष पराक्रम किये थे, जिसमें देवों ने असुरों का नाश किया था। गौ, अश्वों और अन्न की चौकी वह पृथ्वी हमको ऐश्वर्य और तेज देवे। जिससे मनुष्य पुरुषार्थ करके प्रतापवान हों।

(६) सबको धारण करके स्थान देने वाली, अपने अन्दर सुवर्ण आदि धारण करने वाली जगत् को आराम का स्थान देने वाली एवं जीवित रखने वाली अग्नि की धारक मातृभूमि, इन्द्र को प्रधान मानने वाली भूमि बल के बीच हमें रखें। सबमें नेतृत्व करने वाले अग्नि को धारण करने वाली। शरीर में अग्नि ही नेतृत्व करता है, शरीर में उष्णता के रहने तक ही सब कार्य शरीरावयवों से होते हैं।

(७) जो मनुष्य निरालसी और अप्रमादी होकर भूमि की रक्षा करते हैं, वे इस पृथिवी पर विज्ञानी और तेजस्वी होते हैं। अतरु मंत्र में प्रार्थना की गई है कि **“स नः मधु प्रियं दुहां”** वह मातृभूमि हमें मधुर और प्रिय दूध देवे और तेज से हमें युक्त करें। ताकि हम शक्तिशाली बनके राष्ट्र की उन्नति कर सकें।

(८) सृष्टि के आदि में जल के मध्य यह पृथ्वी बुदबुदे के समान थी, वह आकाश में ईश्वर नियम के दृढ़ हो कर अनेक रत्नों की खानि है, पहिले विचार वान के समान सब मनुष्य पराक्रम से पृथिवी की सेवा करके बड़े राज्य के भीतर तेजस्वी और बली होकर बढ़ती करें। **‘सा भूमिः नः उत्तमे राष्ट्रे त्विषि बलं दधातु’** अर्थात् वह हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में तेजस्विता तथा बल धारण कराये।

(९) जिस भूमि पर सेवा भाव वाले एक से स्वभाव वाले सत्य वक्ता लोग, प्रमाद रहित होकर निरन्तर दिन—रात चलते हैं। ऐसी अनेक शक्तियों को धारण करने वाली पृथ्वी हमें अन्न—दूध देकर राष्ट्र सेवा हेतु तेजस्विता से संयुक्त करे। अर्थात् राष्ट्र की रक्षा हेतु मनुष्यों को महात्माओं के समान दृढ़ चित्त होकर आपस में सेवा करके पृथ्वी पर अन्न—दूध का लाभ लेकर बल वीर्य बढ़ावें।

(१०) जिस पृथ्वी को दिन और रात्रि ने अपने गुणों से उपजाऊ बनाते हैं, जिस को सूर्य अपने आकर्षण, प्रकाश और वृष्टि आदि कर्म से स्थिर रखता है, और जिस पर यथार्थवक्ता, यथार्थकर्मा और यथार्थज्ञाता, पुरुष विजय पाते हैं, उस पृथ्वी को उपयोगी बनाकर प्रत्येक मनुष्य सब का हित करें।

(११) हमारी मातृभूमि के तथा आसपास के पर्वत, पहाड़ तथा जंगल हमारे लिये सुख देने वाले हों। इनमें शत्रु घुसकर हमें कष्ट देने वाले न बनें। मैं विजयी बनकर मातृभूमि अध्यक्ष बनकर मातृभूमि की उत्तम शासन करके सेवा करूँ।

(१२) हे मातृभूमि! जो तेरा मध्य भाग है, जो ऊपर का भाग है और जो बलवर्धक शरीर के भाग तेरे अन्दर हैं, उनमें हमें रख कर पवित्र करें। 'माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः' धरती मेरी माता और मैं उसका पुत्र हूँ। 'पर्जन्यः पिता' हमें अन्न देकर पूर्ण करे। इस प्रकार की भावना यदि सब भूमण्डल वासी करें तो 'राष्ट्र' का सही स्वरूप निखर सकता है।

(१३) जिस मातृभूमि में यज्ञ करने वाले याज्ञिक वेदी तैयार करके, उसके चारों ओर बैठकर यज्ञ करते हैं। उत्तम यूप यज्ञ स्थान के सामने खड़ा करते हैं। वह हमारी मातृभूमि यज्ञ से सम्पन्न होती हुई हमें सम्पन्न करें।

(१४) यदि कोई राष्ट्र हम से द्वेष करता है या सेना द्वारा आक्रमण करके हमें दास बनाना चाहता है या हमारा सर्वनाश करता है तो उसकी हिंसा कर देनी है, यह बात प्राचीन है। 'पूर्व कृत्वोरि भूमे' पहिले से ऐसे उत्तम कार्य करने वाली मातृभूमि में उसको हमारे हित करने के लिये विनष्ट कर 'तं नः रन्धय'। इसी उपदेश को इंगित करते हुए 'यजुर्वेद ३६.१८' में वैदिक राष्ट्र व्यवस्था के आदर्श की ओर संकेत दिया है कि हम सभी राष्ट्रों को मित्र भाव से देखें और वे भी हमें मित्र भाव से देखें— सब राष्ट्र परस्पर मित्र बनकर रहे।

दूतं दंह मा मित्रस्य चक्षुषा.....मित्रस्य चक्षुषा समीक्षमहे।।⁸⁴

⁸⁴ यजुर्वेद ३६.१८

(१५) तुझसे उत्पन्न हुए मनुष्य तुझ पर चलते हैं, तू दो पायों को और चौपायों को आश्रय देती है। हे पृथ्वी! ये सब पञ्चतवों से निर्मित मनुष्य तेरे हैं, जिन मनुष्यों के लिये उदय होता हुआ सूर्य अपनी ज्योति फैलाता है। जो मनुष्य पृथिवी पर उत्पन्न होकर उद्योग करते हैं वे सब प्राणियों की रक्षा करके सूर्य की पुष्टिकारक किरणों से वृष्टि आदि द्वारा सदा आनन्द पाते हैं।

(१६) वे सब प्रजाएं हमारे लिये उत्तम रीति से दूध आदि अन्न देवें। हे मातृभूमि! वाणी की मधुरता के लिये दे। अर्थात् जो मनुष्य वाणी की मधुरता अर्थात् सत्य वचन आदि से सब प्राणियों से उपकार लेते हैं, वे सब सुख पाते हैं।

(१७) सर्वस्व रूप से औषधियों की माता स्थिर धर्म से धारण की हुई कल्याण करने वाली तथा सुख देने वाली विस्तृत मातृभूमि की अपने जीवन के सब दिन हम सेवा करते रहें। इस प्रकार मनुष्य धर्म के साथ भूमि का शासन करके समस्त उत्तम गुणों और पदार्थों से सुख प्राप्त करें।

(१८) हे मातृभूमि! तू बड़ी होकर सबके लिये सहवास का बड़ा स्थान बनी है। तेरा वेग, चलना और हिलना बड़ा है। बड़े ऐश्वर्यवान् मनुष्य तेरी रक्षा करते हैं। सो हे पृथ्वी! तू हमें सुवर्ण के समान रूप में तेजस्विता प्रदान कर दे जिससे हमसे कोई द्वेष न करे! अर्थात् पुरुषार्थी पुरुष अनेक प्रयत्नों के साथ पृथिवी पर सबसे मिलकर विद्या द्वारा सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके तेजस्वी होते हैं।

(१९) अग्नितत्त्व भूमि में, औषधियों में, जल में, पत्थरों में, पुरुषों में, गौ में एवं घोड़ों में हैं। अर्थात् ईश्वर नियम से पृथिवी में स्थित अग्निताप अन्न आदि पदार्थों और प्राणियों में प्रवेश करके उनमें बढ़ने तथा पुष्ट होने का सामर्थ्य देता है।

(२०) यह अग्निताप भूमि को सूर्य से प्राप्त होता है, तथा आकाश के पदार्थों में प्रवेश करके उन्हें बलयुक्त करता है। उस अग्नि को मनुष्य आदि प्राणी भोजन आदि से शरीर में बढ़ाकर पुष्ट और बलवान् होते हैं तथा उसी अग्नि को ह्यद्रव्यों से प्रज्ज्वलित करके मनुष्य वायु, जल और अन्न को शुद्ध निर्दोष करते हैं।

(२१) जैसे भूमि भीतर और बाहर सूर्य ताप से बल पाकर अपने मार्ग पर बेरोक चलती रहती है, वैसे ही मनुष्य भीतरी और बाहिरी बल बढ़ाकर सुमार्ग पर बढ़ता चले। इससे स्वाभाविक है कि राष्ट्र का निर्माण सुदृढ़ हो सकेगा।

(२२) जिस प्रकार मनुष्य उत्तम पुरुषों से मिलकर श्रेष्ठतम गुण प्राप्त करते हैं, और दूसरों को प्राप्त कराते हैं, उसी प्रकार हम उत्तम गुण प्राप्त करके अपना जीवन श्रेष्ठ बनावें। क्योंकि श्रेष्ठ मनुष्य ही श्रेष्ठ राष्ट्र का सृजन करते हैं।

(२३) गन्धवती पृथ्वी का आश्रय लेकर अनेक प्रकार से सब प्राणी और सब लोक आकार धारण करके ठहरते हैं। मनुष्य उस पृथिवी के तत्त्व ज्ञान से सब कार्य सिद्ध करके ऐश्वर्यवान् हों।

(२४) पृथ्वी का गन्ध अर्थात् अंश प्रविष्ट होकर पदार्थों को पुष्ट करता है और सूर्य के ताप द्वारा देश-देशान्तरो में पहुंचता है। उस पृथिवी से तत्त्ववेत्ता लोग उपकार लेकर प्रसन्न होते हैं।

(२५) पृथिवी का आश्रय लेकर संसार के देहधारी मनुष्य आदि सब प्राणी और अन्तरिक्ष के तारागण आदि सब लोक स्थित हैं, वैसे ही मनुष्य सब प्रकार उपकारी और तेजस्वी होकर विघ्नों का नाश करें।

(२६) जिस भूमि पर अनेक बड़े-छोटे पदार्थ हैं, और जिसमें अनेक रत्न भरे हैं, उस पृथिवी के हित के लिये मनुष्य अन्न जल आदि पदार्थ खावें।

(२७) जिस पृथिवी पर हमारे उपकार के लिये फल फूल पत्र आदि वाले वृक्ष उत्पन्न होते हैं, उसकी सावधानी हम सदा करते रहें।

(२८) उठते हुए या बैठते हुए खड़े हुए या चलते हुए दायें और बायें पांवों से भूमि को कष्ट न दें। अर्थात् मनुष्य पृथिवी पर सावधान और स्वस्थ रहकर सदा सब को सुख देवें।

(२९) विज्ञानी लोग भूगर्भ विद्या, भूतल विद्या आदि द्वारा भूमि को खोजकर अनेक प्रकार के उपकारी पदार्थ प्राप्त करके स्वस्थ पुष्ट हों।

- (३०) जैसे निर्मल जल से शरीर शुद्ध करके मल का नाश करते हैं, वैसे ही मनुष्य अन्तःकरण का मल दूर करके पृथिवी पर धार्मिक व्यवहार से आत्मा की शुद्धि करें।
- (३१) इस प्रकार जो मनुष्य (चरते मध्य) चलते फिरते रहकर पुरुषार्थ करते हैं, वे पृथिवी पर (भुवने शिश्रियाणः) सब दिशाओं में सुख भोगते हैं।
- (३२) मनुष्य सब दिशाओं में सावधान रहकर (परिपंथिनः मा विदन्) दुराचारियों के फंदों से बचें और (भूमे नः स्वस्ति भव) भूमि हमारे लिये कल्याणकारी हो।
- (३३) मनुष्य ऐसा प्रयत्न करें कि विद्या बलपूर्वक ईश्वर की अद्भुत रचनाओं से सदा उत्तम-उत्तम क्रियायें करते रहें, जैसे सूर्य प्रकाश आदि से उपकार करता है।
- (३४) जो मनुष्य (सर्वस्य प्रतिशीवरी) सबको शमन देने वाली भूमि को समचौरस बना कर रहते हैं, वे सुख को पाते हैं।
- (३५) भू तल विद्या और भूगर्भ विद्या में चतुर लोग भूमि को उचित रीति से खोदकर और हल से जोतकर रत्न और अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करें।
- (३६) मनुष्यों को उचित है कि पृथ्वी पर सब ऋतुओं में उचित कर्म करके पूर्ण आयु भोगें। जिससे हे पृथिवी ! तेरे द्वारा स्थापित दिन-रात हमारे लिये पूर्ण करें।
- (३७) जो मनुष्य आगे की चलती हुई पृथिवी को खोजकर अपने भीतर पुरुषार्थ रूप तेज धारण करते हैं, उन विघ्ननाशक वीरों के लिये यह पृथिवी सुखदायिनी और दुराचारी दुष्टों को दुःखदायिनी होती है। अर्थात् शदेवपीयून् दस्यून पराददतीश् देवों के निन्दक दस्युओं को दूर फेंकती है।
- (३८) जिस भूमि पर जितेन्द्रिय वीर पुरुष शत्रुओं को जीतते हैं, और वेदज्ञानी, योगीन्द्र परम् आत्मा के तत्त्व ज्ञान से मोक्ष आनन्द भोगते हैं, उस भूमि पर हम अपना इष्ट सिद्ध करें।
- (३९) जिस भूमि पर मनुष्य अपने शरीर की इन्द्रियों द्वारा वेद ज्ञान प्राप्त करके आत्मोन्नति करते हैं, उस भूमि पर हम पुरुषार्थ करके सुख प्राप्त करें।

(४०) वह भूमि हमारी, जिस धन की इच्छा हम कर रहे हैं, वह हमें देवे। और उसका प्रेरणादायक ऐश्वर्य हमें इन्द्र से भी आगे चलने को प्रेरित करें।

(४१) जिस पृथिवी पर मनुष्य ऊंचे, नीचे और मध्यम स्वर से गाते, नाचते और बजाकर युद्ध करते हैं, वहां पर धर्मात्मा लोग निर्विघ्न होकर सुख प्राप्त करें।

(४२) जिस भूमि पर अन्न, चावल और जौ हैं, जिसके ऊपर पांच पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश आदि से सम्बन्ध वाले यह मनुष्य हैं। वर्षा से स्नेह रखने वाली, मेघ से पालन की गयी उस भूमि के लिये हमारा अन्न हो वे। अर्थात् मनुष्य पृथिवी के हित के लिये पृथिवी आदि पांच तत्वों से उपकार लेकर अन्न आदि प्राप्त करें।

नोट— यहां पर 'पंचकृष्टयः' से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद आदि पांच जातियों का भी आशय हो सकता है। (पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार)

(४३) जिस भूमि पर धर्मात्मा पुरुष राजभवन, कार्यालय आदि बनाकर अनेक प्रकार से उन्नति के काम करते हैं, और जिस में से अनेक रत्न उत्पन्न होते हैं, उस पर परमात्मा हमें धर्म में स्थिर रखकर सर्वत्र प्रसन्न रखें।

(४४) जो पृथिवी बहुत प्रकार से गुहा में धन के निधि को धारण करती है, वह मुझे रत्न व सुवर्ण देवे। अर्थात् मनुष्य पृथिवी के हित के लिये पृथिवी आदि पांच तत्वों से उपकार लेकर अन्न आदि प्राप्त करके अपनी विद्वत्ता से वे खानों में से अनेक रत्न और सुवर्ण आदि पाकर प्रसन्नचित्त होते हैं।

(४५) जैसे गौ अल्प मूल्य तृण आदि खाकर गोपाल की चतुराई के अनुसार बहुमूल्य दूध देती है, वैसे ही मनुष्य परिश्रम से अनेक विद्यायें और अनेक गुण प्राप्त करके पृथिवी पर अपनी योग्यता के अनुसार बहुत प्रकार से धनवान् हो।

(४६) हे मातृभूमि! तेरे ऊपर जीवनयापन करने वाले साँप, बिच्छू, कृमि आदि घबराए एवं रेंगते हुए आकर किसी भी ऋतु में प्रजा को कष्ट न पहुंचाए। 'यत् शिवम् तेन नः मृड' अर्थात् जो कुछ मंगल है उससे हमें सुखी कर। इस प्रकार मनुष्य सदा सावधान रहें कि सब ऋतुओं में दुष्ट जीव जन्तुओं से उन्हें क्लेश न हों।

(४७) जो मनुष्य पृथिवी पर ऊंचे—नीचे, भले बुरे मार्गों का विचार करके कुमार्ग से सुमार्ग पर चलते हैं, वे कुमार्गियों से बचकर सदा सुखी रहते हुए, राष्ट्रोन्नति में सहायक होते हैं।

(४८) पृथिवी अपने धारण आकर्षण से सब पदार्थों को अपने पर रखती है और सूर्य के सन्मुख चलने से जल आकाश में चढ़ता और बरसता है। उस पृथिवी को उपयोगी बनाने में मनुष्य प्रयत्न करें।

(४९) संसार के भीतर सब भयानक और शीघ्रगामी प्राणी परमेश्वर के आज्ञा पालक हैं और अणु—अणु में संयोग वियोग उसी की शक्ति से है। अतः मनुष्यों को उचित है कि हितकारी पशुओं की रक्षा करके हिंसक प्राणियों का नाश करें।

(५०) जो दुरुखदायी हिंसक विरुद्ध चलने वाले हैं, और जो कंजूस लुतरे पुरुष हैं। हे भूमि! उन पिशाचों और सब राक्षसों को हमसे अलग रखें। ('वैदिक राष्ट्र गीत' पुस्तक से)

नोट— श्रीपाद पं. दामोदर सातवलेकर सा. के अनुसार (गन्धर्वाः) जिनके शरीर से बदबू आती है। (अप्सरसः) जो दुष्ट प्राणी पानी में या पहाड़ी पर रहते हैं। (अ—रायाः) जो निर्धन हैं। (किमीदिनः) यह क्या है, यह क्या है? आदि कहकर सब कुछ खा जाने वाले (पिशाचाः) रक्त पीने वाले आदि से बचने का यत्न करना योग्य है।

(५१) मनुष्य पक्षियों, वायु, मेघ, प्रकार आदि के ज्ञान और गुणों से लाभ उठाकर आनन्दित हो वे। ईश्वर आज्ञानुसार प्रत्येक जीव अपनी—अपनी प्रवृत्ति में सतत क्रियावान् रहते हैं, अर्थात् सब कुछ प्रकृति के अधीनस्थ हैं। उसी प्रकार मनुष्य को भी स्वयं के नियमों को त्यागते हुए अनादि तत्त्वों की प्रेरणा अनुसार कर्म करते रहना चाहिए।

(५२) ईश्वर नियम से जिस प्रकार दिन—रात्रि मिले हुए हैं और पृथिवी मेघ मण्डल से छायी है, वैसे ही मनुष्य पृथिवी पर उत्तम बुद्धि के साथ रहकर सब स्थानों में आनन्द करें।

(५३) द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्ष मुझे यह विस्तार देवें तथा अग्नि, सूर्य, जल और सब देव मुझे मेधा बुद्धि देवें। अर्थात् जो मनुष्य संसार के पदार्थों में विज्ञान पूर्वक फैलते चले जाते हैं, वे ही विज्ञानी बुद्धि बढ़ाकर संसार को सुख देते हैं।

(५४) उपर्युक्त प्रेरणा से सम्पन्न होकर जब मनुष्य योग्यता प्राप्त करके आगे बढ़ता जाता है। तब संसार में कीर्ति बढ़ाकर सब में उच्च पद पाता है।

(५५) हे उत्तम गुण वाली पृथिवी! जब आगे को फैलती हुई और व्यवहार कुशलों करके कही गयी तू ने उस महिमा को फैलाया। तब सुभूति ने तुझ में सब ओर से प्रवेश किया, और चारों बड़ी दिशाओं को तू ने समर्थ बनाया। अतः इसी प्रकार पृथिवी की विस्तृत महिमा को खोजते हुए आगे बढ़ते हैं, वे ऐश्वर्यवान् होकर सब दिशाओं से समर्थ होते हैं।

(५६) मनुष्यों को उचित है कि सब स्थानों, सब अवस्थाओं और राजसभा, न्यायसभा, धर्मसभा आदि में पृथिवी के गुणों की महिमा जानकर और बखानकर देशभक्ति करें।

(५७) जिन अभिमानियों ने पृथिवी पर अत्याचार करके मस्तक उठाया है वे ईश्वर नियम से सदा नष्ट हुए हैं, जैसे घोड़ा थकावट उतारने को पृथिवी पर लौटकर शरीर की मलिन धूलि हिलाकर गिरा देता है।

(५८) जो मनुष्य समझ बूझकर बोलते हैं, देखते और काम करते हैं, वे ईश्वर नियम से प्रतापी और वेगवान् (फुर्तीले) होकर विघ्नों को मिटाते हैं।

(५९) शान्तिवाली, ऐश्वर्यवाली, सुखद, अमृतमय स्तनवाली, दुधैल, सर्वाधार पृथिवी अन्न के साथ मेरे लिये अधिकारपूर्वक बोले कि उद्योगी पुरुष परस्पर उपदेश करके पृथिवी से अनेक सुख प्राप्त करते और कराते हैं।

(६०) जैसे-जैसे मनुष्य मेघ मण्डल से घिरी पृथिवी को खोजते जाते हैं, उसमें अधिक-अधिक पालन शक्तियों को पाते हैं, जैसे माताओं में प्राणियों के पालन के लिये दुग्ध प्रकट होता है। इस प्रकार '**माता भूमिः**' यह मातृभूमि माता के समान पालने वाली है।

(६१) जैसे परमेश्वर ने पृथिवी में अन्न आदि से प्राणियों की पालन शक्ति दी है वैसे ही प्राणी जो कुछ खाते-पीते हैं, वह न्यूनता ईश्वर नियम से वृष्टि आदि द्वारा पूर्ण हो जाती है।

(६२) हे मातृभूमि! तेरी गोदें हमारे लिये निरोग और राजरोग रहित उत्पन्न होवें। अपने आयु को दीर्घकाल तक जगाते हुए हम तेरे (राष्ट्र के) लिये बलि (सेवा धर्म) देने वाले रहें। मनुष्य प्रयत्नपूर्वक पृथिवी पर स्वस्थ और चैतन्य रहकर धर्म के साथ पालन करते हुए परस्पर सहयोग करते हुए राष्ट्र की उन्नति करें।

(६३) हे धरती माता! मुझको कल्याणीमति के साथ बड़ी प्रतिष्ठा वाला बनाये रख। हे गतिशीले! प्रकाश के साथ मिली हुई मुझको तू श्री में और विभूति (ऐश्वर्य) में धारण कर। अर्थात् जो मनुष्य उत्तम भाव से पृथिवी पर अपना कर्तव्य पालते हैं, वे बड़ी प्रतिष्ठा पाकर ऐश्वर्यवान् और श्रीमान् होते हैं।

इस प्रकार सभी विद्वज्जन एवं राष्ट्र के विचारक पक्षपात रहित होकर यदि उपर्युक्त वेदोपदेश का चिन्तन एवं मनन करें तो निष्कर्ष यही निकलेगा कि सम्पूर्ण विश्व में राष्ट्र शब्द का प्रतिपादन, इसका स्वरूप एवं परिक्षेत्र विश्व के अनादि ग्रन्थ वेद ने ही स्पष्ट किया है। लेकिन आधुनिकता के इस अज्ञान रूपी अन्धकार ने इस बात को धूमिल कर दी है। वेद में जहाँ भूमि को माता कहा गया है, वहीं इसके गिरि, हिम से ढके पर्वत और वन को भी सुखकारी बताया है। साथ ही इसी भूमि सूक्त में कहा गया है कि वह हमारी भूमि माता उसी तरह से दूध दे, जैसे माता पुत्र को। अतः वैदिक राष्ट्रीयता एक माता के तुल्य था, परन्तु आज उसी पवित्र वेद भूमि में राष्ट्रीयता माता के स्थान पर न जाने क्या क्या अनैतिकताएं हो रही हैं। यदि वेदोपदेश जारी रहता तो ऐसा होना असम्भव था।

अथर्ववेद के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र—

राष्ट्र की अवधारणा पाश्चात्य चिन्तन दृष्टि से बहुत पुरानी नहीं है। यूनान (सुकरात, प्लेटो, अरस्तू) का चिन्तन पाश्चात्य चिन्तन का मूल है। इस का व्यवस्थित रूप सर्वप्रथम 'प्लेटो' के 'रिपब्लिक' एवम् 'अरस्तू' की 'पालिटिक्स' के माध्यम से उपलब्ध होता है। प्लेटो की अवधारणा आदर्श दार्शनिक शासक की है।

अरस्तू का राज्य चिन्तन कुछ व्यापक है। यहां यह स्मरणीय है कि यह चिन्तन राज्य (state) का तो है, किन्तु वर्तमान में परिभाषित राष्ट्र (Nation) का नहीं। यदि इस राज्य-राष्ट्र को एक मानें तब यह चिन्तन 'नगर-राष्ट्र' का है।⁸⁵

उन्नीसवीं शती तक राष्ट्र बनने के लिये भूमि, भाषा, नस्ल, धर्म और राज्य की एकता को आवश्यक माना जाता था। विविधताओं से भरे 'भारत' को उक्त निकष पर एक राष्ट्र कैसे कहा जा सकता था अंग्रेजों की इसी सीख का निराकरण करते हुए 'हिन्द स्वराज्य' (१९०६ ई.) में महात्मा गाँधी ने लिखा है — 'हमें अंग्रेजों ने सिखाया है कि हम एक राष्ट्र नहीं थे और एक राष्ट्र बनने के लिये हमें सैकड़ों बरस लगेंगे। यह बात बिल्कुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे, तब भी हम एक राष्ट्र थे।' प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् यूरोप और अमेरिका में राष्ट्रीयता की अवधारणा पर पुनर्चिन्तन प्रारम्भ हुआ। इसके अनुसार — राष्ट्रीयता एक ऐसी सामूहिक चेतना है, जो किसी भूखण्ड पर रहने वाले समाज को उसकी अनेक बाह्य विविधताओं के होते हुए भी एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के फलस्वरूप उस भूमि के प्रति माता पुत्र भाव से जोड़ देती है। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया का रूप कहीं राजनैतिक हो सकता है, तो कहीं सांस्कृतिक.....।⁸⁶

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में राष्ट्रचिन्तन के सूत्र उपलब्ध हैं।⁸⁷ संहिताओं में अनेकशः 'राष्ट्र' का वर्णन उपलब्ध होता है। यहां मात्र अथर्ववेद संहिता के आधार पर 'राष्ट्र' का विवेचन संक्षेप में प्रस्तुत है। अथर्ववेद में ५३ बार सविभक्तिक⁸⁸ राष्ट्र शब्द प्रयुक्त है। महर्षि दयानन्द के मतानुसार संहिताओं में अनित्य इतिहास नहीं है। अतः संहिताओं में उपलब्ध इस प्रकार के वर्णन किसी काल विशेष की विशिष्ट

⁸⁵ 'अरस्तू की राजनीति' - अनुवादक- भोलानाथ शर्मा - पृ.८१

⁸⁶ हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, २१ सित. ९७ में प्रकाशित लेख - 'भारतीय राष्ट्रवाद और अध्यात्म' - देवेन्द्र स्वरूप

⁸⁷ क्षत्रं हि राष्ट्रम् - एतरेय ब्राह्मण ७.२२ . राष्ट्राणि वै विशः एतरेय ब्राह्मण ८.२६ राष्ट्रं वै वैश्वानर :- तैत्तरीय .संहिता ५.४.७.७

⁸⁸ राष्ट्रम्- ३२ मंत्रों में ३३ बार , राष्ट्रमणि - (त्वं राष्ट्रमणि रक्षसि) १९.३०.३ में १ बार राष्ट्रेण - (अभिराष्ट्रेण वर्धताम्) ६.७८.२ में १ बार ,राष्ट्राय - ५ बार, राष्ट्रस्य - ४ बार, राष्ट्रे - ९ बार = ५३ बार

परिस्थितियों के बोधक नहीं हैं, अपितु वे शाश्वत आदर्श व्यवस्था के ज्ञापक हैं। इस प्रकार अथर्ववेद संहिता में उपलब्ध राष्ट्र वर्णन किसी विशिष्ट काल की अवधारणा का वर्णन न होकर परमेश्वर द्वारा सूत्र रूप में उपदिष्ट 'राष्ट्र' सिद्धान्त का वर्णन मात्र समझा जाना चाहिए।

आचार्य सायण ने प्रायः राष्ट्र का अर्थ 'राज्य' किया है।⁸⁹ दो स्थलों⁹⁰ पर 'जनपद' अर्थ किया है। सायण के अनुसार 'राज्ञः कर्म दुष्टनिग्रह शिष्ट परिपालनादिकं राज्यम्'⁹¹ — दुष्टनिग्रह और सभ्यजनों का परिपालनादिक कर्म राज्य है। अर्थात् राज्य व्यवस्था का प्रवृत्ति-निमित्त ही प्रजापालन एवं दुष्टनिग्रह है। चतुर्वेद भाष्यकार पं. जयदेव शर्मा ने भी प्रायः 'राष्ट्र' को राज्य के रूप में ही व्याख्यान किया है। यद्यपि महर्षि का अथर्ववेद पर भाष्य नहीं है, किन्तु यजुर्वेद भाष्य में 'राष्ट्रम्-राज्यम्'⁹² 'राजमानं राज्यम्'⁹³ 'राष्ट्र-प्रकाशमाने राज्ये'⁹⁴ कहकर राष्ट्र का अर्थ राज्य ही किया है। 'राष्ट्राणि वै विशः' आदि ब्राह्मण वचनानुसार राष्ट्र का अर्थ है — प्रजा।

शब्द कोष⁹⁵ के अनुसार — पालनीय देश, जनपद, राज्य, साम्राज्य, जन, प्रजा, Kingdom, Empire, Country, People.

अथर्ववेदीय 'राज्ञः संवरणम्' सूक्त ६.८७ 'स्थ मात्वद् राष्ट्रमधिभ्रशत्' — १ 'इह राष्ट्र मु धारय' — २ से प्रतीत होता है कि राष्ट्र-राज्य एक ही है। पृथिवी सूक्तस्थ 'सा नो

⁸⁹ अथर्ववेद सायणभाष्यम् — ३.४.१, ८.१, १९.५, ६.३९.२, ८७.१, १२८.१, १३४.१, ११.९.१७-१८, १९.४१.१

⁹⁰ जनपदम् - अथर्ववेद स.भा. ३.१९.२, 'अस्मदीयं जनपदम्' — ७.३६.१

⁹¹ अथर्ववेद सायणभाष्यम् — ४.८.१

⁹² यजुर्वेद १२.११

⁹³ यजुर्वेद २०.८

⁹⁴ यजुर्वेद २०.१०

⁹⁵ क-संस्कृत हिन्दी - अंग्रेजी शब्द कोष - डा. सूर्यकान्त पृ. ४८९

ख- 'राजत इति राष्ट्रम् - जनपदसन्निवेशः' - दशपाधुणादि ८.७९ पर 'माणिक्यदेव वृत्ति

भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूतमे⁹⁶ मन्त्रानुसार प्रजा ही राष्ट्र पदवाच्य है। मात्र भौगोलिक दृष्टि से स्थान विशेष की ही संज्ञा राष्ट्र नहीं है, अपितु विश= जन, प्रजा, राज्य—राष्ट्र पदवाच्य हैं।

उत्पत्ति— अथर्ववेदीय विराट् सूक्त राष्ट्र की अवधारणा का मूल कहा जा सकता है। सृष्टि के प्रारम्भ में केवल एक विराडू अर्थात् राजा से विहीन प्रजा शक्ति ही थी। उस (शक्ति) ने विचार किया कि क्या यही अवस्था रहेगी।

‘विराडू वा इदमन आसीत् तस्या जातायारूसर्वमभिभेदियमेवेदं भविष्यतीति’⁹⁷

वह प्रजाशक्ति उत्क्रमण कर गार्हपत्य में परिणत हो गयी अर्थात् जो अलग—अलग मनुष्य थे, उनके व्यवस्थित परिवार—कुटुम्ब बन गए। गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद⁹⁸ परिवार बनने से गृहपति भी बन गया। अर्थात् प्रजा का प्रथम संगठन परिवार के रूप में हुआ। परिवार संगठन से उत्क्रांत = विकसित होकर वह विराट् = प्रजाशक्ति आहवनीयर — ग्राम संगठन में स्थिर हुई। विविध कुलों के मुख्य—मुख्य व्यक्तियों के एक स्थान पर आह्वान के कारण यह अवस्था आहवनीय है। आहवनीय से उत्क्रांत होकर वह विराट् शक्ति ‘दक्षिणाग्नि’ नामक अवस्था को प्राप्त करती है। सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्⁹⁹ जहां दक्षिण— चतुर जन, अग्नि—अग्रणी हों वह जनपद संगठन. राष्ट्र ‘दक्षिणाग्नि’ पद वाक्य है। उक्त संस्थात्रय (१) कुल परिवार, (२) ग्राम (३) राष्ट्र—संगठन के पश्चात् सभा और समिति नामक संस्थाओं का विकस हुआ। अन्त में ‘आमंत्रण’ नामक संगठन बना।

अथर्ववेद के अनुसार— सभा एवं समिति प्रजापति — प्रजापालक शासक की पुत्रियां अर्थात् पुत्री के तुल्य हैं। जिस प्रकार समाज में साधारण व्यक्ति का आचरण भी पुत्री के समक्ष मर्यादित रहता है, उसी प्रकार शासक भी सभा एवं समिति के निर्णयों से बंधा रहना चाहिए।

⁹⁶ अथर्ववेद १२.१.८

⁹⁷ अथर्ववेद. ८.१०.१

⁹⁸ अथर्ववेद ८.१०.३

⁹⁹ अथर्ववेद ८.१०.६

1.5 ब्राह्मण ग्रंथों में प्रयुक्त राष्ट्र शब्द—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वान्गरी जानुश्रुतेय उदितहोमिनमैकादशाक्षं मानुतन्तव्यमुवाच
प्रजायामेनंविज्ञातास्मो यदि विद्वान्वा जुहोत्यविद्वान्वेति तस्यो हैकादशाक्षे
राष्ट्रमिव प्रजा बभूवराष्ट्रमिव ह वा अस्य प्रजा भवति य एवं विद्वानुदिते
जुहोति तस्मादुदिते होतव्यम्।¹⁰⁰

वैदिक ग्रंथों की ही तरह हमें ब्राह्मण ग्रंथों में भी राष्ट्र शब्द अनेक जगह देखने को मिला है ऐतरेय ब्राह्मण में हमें ऐसा कई बार देखने को मिलता है कि जो राजा सूर्य उदय होने के बाद हवन करता है तो उस राजा की प्रजा राष्ट्र के साथ एकत्रित बनी रहती है एवं राष्ट्र हित में राजा और प्रजा दोनों एकमत होते हैं।

जो ऐतरेय ब्राह्मण है उसमें क्षत्रिय के राष्ट्र के साथ गिरा हुआ एवं पतित होने का वर्णन हमें देखने को मिलता है।¹⁰¹

क्षत्रं प्रपद्ये क्षत्रं मा ब्रह्मणो गोपायतु क्षत्राय स्वाहेति तत्तदिती क्षत्रं वा एष
प्रपद्यते योराष्ट्रं प्रपद्यत क्षत्रं हि राष्ट्रं तं क्षत्रं प्रपन्नं ब्रह्म न परिजिनाति क्षत्रं
मा ब्रह्मणोगोपायत्वित्याह यथैनं क्षत्रं ब्रह्मणो गोपायेत् क्षत्राय स्वाहेति
तदेनत्प्रीणाति तदेनत्प्रीतब्रह्मणो गोपायति।¹⁰²

ऐतरेय ब्राह्मण में हमें यह भी देखने को मिलता है की बल एवं सत्ता ही राष्ट्र है। ऐतरेय ब्राह्मण में हमें कहा गया है की जो बल को प्राप्त करता है, वह राष्ट्र को भी प्राप्त करता है। और जो राष्ट्र एक हित एवं बलशाली हो जाता है, उस राष्ट्र से वहां की ब्रह्म शक्ति भी वैर नहीं मानती ।

ऐतरेय ब्राह्मण में एक विशेष प्रकार के भोजन का वर्णन किया गया है जो राष्ट्र उस भोजन का सेवन करता है वह कभी भी क्लेशित नहीं होता है और यह भी कहा गया है कि जो क्षत्रिय यजमान उस प्रकार का भोजन करते हैं, वह सूर्य के

¹⁰⁰ ऐतरेय ब्राह्मण २५.५

¹⁰¹ ऐतरेय ब्राह्मण २९.६

¹⁰² ऐतरेय ब्राह्मण ३४.४

समान चमकते हैं और वह चारों दिशाओं से ऐश्वर्य ग्रहण करता है और उसका शक्तिशाली राज्य कभी भी पराजय नहीं होता।¹⁰³

इमा आपः शिवतमा इमाः सर्वस्य भेषजीः ।

इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्रभृतोऽमृताः ।।¹⁰⁴

अत्रि ब्राह्मण में जल को औषधि कल्याणकारी एवं राष्ट्र को बढ़ाने वाली एवं राष्ट्र को धारण करने वाली बताया गया है। और ऐतरेय ब्राह्मण में हमें यह भी देखने को मिलता है वह राष्ट्र सुखी होता है जिस राष्ट्र में बल ब्रह्म शक्ति के आश्रित होता है वह राष्ट्र हमेशा सुखी होता है एवं उस राष्ट्र में वीर बलशाली संतानें पैदा होती हैं और बुद्धिमान बलवान संतान का जन्म होता है।¹⁰⁵ ऐतरेय ब्राह्मण में राष्ट्र से पतित हुआ राजा फिर से राष्ट्र को पानी का या वापस आने का उल्लेख हमें प्राप्त होता है।¹⁰⁶

ऐतरेय ब्राह्मण में हमें ऐसा वर्णन भी देखने को प्राप्त होता है कि जिस राष्ट्र में विद्वान पुरोहित ब्राह्मण राष्ट्र की रक्षा करने वाले होते हैं, उस राष्ट्र के राजा के साथ अन्य राष्ट्र के राजाओं की मित्रता हो जाती है और जो दुश्मन अमंगलकारी राजा होते हैं, वह समाप्त हो जाते हैं नष्ट हो जाते हैं और उस राष्ट्र की प्रजा भी एक होकर राजा का समर्थन करती है।¹⁰⁷ **अस्मिन्नाष्ट्र श्रियमावेशयाम्यतो देवीः प्रतिपश्याम्यापः¹⁰⁸** और इसी जगह पर हमें इस बात का भी वर्णन देखने को मिलता है कि जो ब्राह्मण और पुरोहित उस राष्ट्र का संपूर्ण ऐश्वर्य सम्मान स्थापित करने के लिए दृढ़ निश्चय होता है।

देवभागः श्रौतर्षः स उभयेषां कुरुणां च सृजयानां च पुरोहित आस ।

¹⁰³ ऐतरेय ब्राह्मण ३५.८

¹⁰⁴ ऐतरेय ब्राह्मण ३७.३

¹⁰⁵ ऐतरेय ब्राह्मण ३७.५

¹⁰⁶ ऐतरेय ब्राह्मण ३७.६

¹⁰⁷ ऐतरेय ब्राह्मण ४०.४

¹⁰⁸ ऐतरेय ब्राह्मण ४०.४

परमता वै सा यो न्वेवैकस्य राष्ट्रस्य पुरोहितोऽसत् सा न्वेव परमता किमु यो द्वयोः।¹⁰⁹

शतपथ ब्राह्मण में हमें यह वर्णन देखने को मिलता है कि एक राष्ट्र का एक ही पुरोहित होता है, लेकिन अगर वही पुरोहित दो राष्ट्र का हो तो बहुत अच्छा होता है। शतपथ ब्राह्मण मध्यान्हदिन यजुर्वेद ६.२३ को मानता है जिसमें सदा जागरूक रहने का वर्णन मिलता है।

सं यरु प्राडुददति। तं गृह्णाति वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्ण ऊर्मिरसिराष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहीति।¹¹⁰

अथ ह स्माह ताण्ड्यः। क्षत्रं वै यजुष्मत्य इष्टका विशो लोकम्पृणा अत्ता वै क्षत्रियोऽन्नंविड् यत्र वा अत्तुरन्नं भूयो भवति तद्राष्ट्र समृद्धं भवति तदेधते।¹¹¹

शतपथ ब्राह्मण में हमें १७ प्रकार के जल को राष्ट्र प्रदान करने वाला बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण में हमें इस बात का वर्णन देखने को मिलता है कि जहां खाने वालों के लिए अन्न अत्यधिक मात्रा में होता है वही राष्ट्र सबसे अधिक संपन्न एवं समृद्ध राष्ट्र कहा जाता है।

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वित्यन्नं वै विशोऽन्नं त्वा सर्वं वाञ्छत्वित्येतत्।

मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशदिति श्रीर्वै राष्ट्र मा त्वच्छ्रीरधिभ्रशदित्येतत्।¹¹²

शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्र को लक्ष्मी के रूप में बताया गया है कहा गया है राष्ट्र से अन्न की प्राप्ति की प्राप्ति होना ही उसकी लक्ष्मी है और शतपथ ब्राह्मण में हमें ऐसा वर्णन भी देखने को मिलता है जिसमें कहा गया है कि जो अन्न है वही प्रजा है।

अथातो राष्ट्रभृतो जुहोति। राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि बिभ्रति।

एता ह देवताः सुताएतेन सवेन येनैतत्सोष्यमाणो भवति ता एवैतत्प्रीणाति ता अस्मा इष्टाः प्रीता एतंसवमनुमन्यन्ते ताभिरनुमतः सूयते।

¹⁰⁹ ऐतरेय ब्राह्मण २.४.४.५

¹¹⁰ शतपथ ब्राह्मण ५.३.४.५

¹¹¹ शतपथ ब्राह्मण ६.१.२.२५

¹¹² शतपथ ब्राह्मण ६.७.३.७

यस्मै वै राजानो राज्यमनुमन्यन्ते स राजा भवति न सयस्मै न तद्राजानो
राष्ट्राणि बिभ्रति राजान उ एते देवास्तस्मादेता राष्ट्रभृतः।¹¹³

शतपथ ब्राह्मण में हमें राष्ट्र को अत्यधिक संपन्न होने के लिए किए जाने वाले राष्ट्रभृत हवन का विधान हमें देखने को मिलता है, वहां हमें बताया गया है की राजा को राष्ट्र के प्रति ईमानदार होना चाहिए क्योंकि वही राष्ट्र का कर्ता-धर्ता होता है इसलिए राजा को राष्ट्र के प्रति ईमानदार होना बहुत ही आवश्यक है अगर राजा ही बेईमान हो तो वहां की प्रजा में एकता नहीं हो पाएगी प्रजा में विद्रोह हो जाएगा इसलिए राजा का ईमानदार होना बहुत ही आवश्यक है और जिन देवी देवताओं के लिए हवन किया जाता है वही देवी देवता प्रसन्न होकर उस राष्ट्र को संपन्न एवं समृद्धि प्रदान करते हैं और जिस राष्ट्र पर देवता प्रसन्न हो जाते हैं उस राष्ट्र का गुणगान अन्य राष्ट्र भी स्वयं ही करने लग जाते हैं और जो राष्ट्र गुणगान नहीं करते उस राष्ट्र पर देवताओं की कृपा नहीं होती वह राष्ट्र सुसंपन्न प्रकार से नहीं चल पाता वह इस लिए की अन्य राष्ट्र देवताओं की प्रार्थना हवन करते हैं तो देवताओं की कृपा उन राष्ट्रों पर बनी रहती है और जो राष्ट्र देवताओं की प्रार्थना उपासना नहीं करते तो उन राष्ट्रों पर देवताओं की कृपा नहीं रहती है इसलिए वह राष्ट्र सम्यक पूर्वक नहीं चल पाते इसीलिए राष्ट्र के राजा का ईमानदार होना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि राजा ही राष्ट्र का भरण पोषण करने वाला होता है।

यद्वैता राष्ट्रभृतो जुहोति।

प्रजापतेर्विस्रस्तान्मिथुनान्युदक्रामन्गन्धर्वाप्सरसो भूत्वा।

तानि रथोभूत्वा पर्यगच्छत्, तानि परिगत्यात्मन्धत्तात्मन्कुरुत

तथैवैनान्ययमेतत्परिगत्यात्मन्धत्तात्मन्कुरुते।।¹¹⁴

शतपथ ब्राह्मण में यह वर्णन हमें देखने को मिलता है की जो राजा राष्ट्र के भरण पोषण आदि के लिए यज्ञ करता है तो उनके राष्ट्र की रक्षा के लिए के लिए गंधर्व अप्सरा आदि सभी प्रकार से राष्ट्र की रक्षा करते हैं।

¹¹³ शतपथ ब्राह्मण ९.४.१.१

¹¹⁴ शतपथ ब्राह्मण ९.४.१.२

मिथुनानि जुहोति। मिथुनाद्वा अधि प्रजातिर्यौ वै प्रजायते स राष्ट्रं भवत्यराष्ट्रं
वै स भवतियो न प्रजायते । तद्यन्मिथुनानि राष्ट्रं बिभ्रति मिथुना उ एते
देवास्तस्मादेता राष्ट्रभृतः।¹¹⁵

शतपथ ब्राह्मण में इस बात का भी वर्णन हमें देखने को मिलता है कि जो
संयोग या समागम से उत्पन्न होते हैं वह राष्ट्र की उन्नति एवं समृद्धि करने वाले
होते हैं और जो उत्पन्न होने वाले नहीं होते उनकी गिनती राष्ट्र में की जाती है।
यहां कहने का अर्थ यह है अभ्युदय होते रहने को ही राष्ट्र बताया गया है और
उसी में राष्ट्र की भलाई है । और अभ्युदय कारों को जाना राष्ट्र के लिए बहुत ही
हानिकारक है

राष्ट्र सान्नाय्यम्। स यो ह वै राष्ट्र सान्नाय्यमिति वेदाव ह राष्ट्र रुन्धेऽथो
यत्किञ्च राष्ट्रेणजय्यं सर्व हैव तज्जयति तद्यत्सन्नयन्त्येके नैके तस्माद्राष्ट्र सं
चौति वि च।¹¹⁶

शतपथ ब्राह्मण में हवि हवन को ही राष्ट्र कहा गया है उसमें हमें ऐसा वर्णन देखने
को मिलता है कि जो हवि को जानता है वही राष्ट्र को प्राप्त करता है।

सोमो राज्यं वरुणरू साम्राज्यं मित्रः क्षत्रमिन्द्रो बलं बृहस्पतिर्ब्रह्मवर्चसं सविता
राष्ट्र पूषा भगंसरस्वती पुष्टिं त्वष्टा रूपाणि।¹¹⁷

शतपथ ब्राह्मण में कहीं कहीं पर तो सूर्य को भी राष्ट्र कहा गया है ।

सविता राष्ट्र राष्ट्रपतिः। राष्ट्रमस्मिन्यज्ञे मयिदधातु स्वाहेत्याहुतिमेवादाय
सवितोदक्रामत्पुनरस्यै राष्ट्रमददात्।¹¹⁸

शतपथ ब्राह्मण में हमें राष्ट्रपति शब्द का वर्णन भी हमें देखने को मिलता है।

विन्दते मित्रं राष्ट्रमस्य भवत्यप पुनर्मृत्यु जयति सर्वमायुरेति य एवं
विद्वानेतयेष्ट्या यजतेयो वैतदेवं वेद।¹¹⁹

¹¹⁵ शतपथ ब्राह्मण ९.४.१.५

¹¹⁶ शतपथ ब्राह्मण ११.२.७.१७

¹¹⁷ शतपथ ब्राह्मण ११.४.३३

¹¹⁸ शतपथ ब्राह्मण ११.४.३.१४

¹¹⁹ शतपथ ब्राह्मण ११.४.४.२०

शतपथ ब्राह्मण में हमें अच्छे मित्र के होने का भी उल्लेख मिलता है कहा गया है कि अच्छा मित्र होना बहुत जरूरी है जो की वह सदैव आपका विश्वासपात्र बना रहे एवं आपके अच्छे बुरे में आपका साथ दे ऐसे मित्र का वर्णन हमें शतपथ ब्राह्मण में देखने को मिलता है।

राष्ट्र वा अश्वमेधः। राष्ट्र एते व्यायच्छन्ति येऽश्वं रक्षन्ति ।

तेषां य उदृचङ्गच्छन्ति राष्ट्रेणैव ते राष्ट्रं भवन्त्यथ ये नोदृचङ्गच्छन्ति राष्ट्रात्ते व्यवच्छिद्यन्ते तस्माद्राष्ट्यश्वमेधेन यजेत।

परावा एष सिच्यते योऽबलोऽश्वमेधेन यजेते।

यद्यमित्रा अश्वं विन्देरन्यज्ञोऽस्य विच्छिद्येतपापीयान्त्स्यात्।

शतकवचिनो रक्षन्ति यज्ञस्य सन्तत्या अव्यवच्छेदाय न पापीयान्भवति।¹²⁰

शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्र को अश्वमेध कहा गया है वह इसलिए कहा गया है कि जब कोई राजा अश्वमेध यज्ञ करता है तो अश्व को संपूर्ण राष्ट्र में भ्रमण के लिए भेजा जाता है अगर राजा कमजोर हुआ तो उसका अश्व पकड़ लिया जाता है और यज्ञ विफल हो जाता है अगर राजा बलवान हुआ तो उसका अश्व भय की वजह से कोई नहीं पकड़ता और उस घोड़े के साथ सो वीर सैनिक भी संपूर्ण राष्ट्र का भ्रमण करते हैं इसलिए वह घोड़ा संपूर्ण राष्ट्र का भ्रमण करके यज्ञ को सफल बनाता है इसी प्रकार राष्ट्र का राजा भी इतना शक्तिशाली होना चाहिए कि कोई भी उसकी सीमा पर आक्रमण ना कर दे उसके सैनिक बलवान सूर्य वीर होना चाहिए जिससे कि उसका अश्वमेध यज्ञ कभी भी खंडित ना हो क्योंकि अश्वमेध राष्ट्र का गौरव प्रतीक होता है ।

सूचीभिः कल्पयन्ति।

विशो वै सूच्यो राष्ट्रमश्वमेधो विशं चौवास्मिन्त्राष्ट्रं च समीचीदधति।¹²¹

शतपथ ब्राह्मण में हमें ऐसा उल्लेख देखने को मिलता है कि जो राजा है उसका प्रजा के साथ सामंजस्य सदा बना रहे जिससे कि प्रजा में कभी भी विद्रोह की बात ना हो पाए ।

¹²⁰ शतपथ ब्राह्मण १३.१.६.३

¹²¹ शतपथ ब्राह्मण १३.२.१०.२

1.6 उपनिषदों में राष्ट्र एवं वैदिक संस्कृति—

उपनिषद् तर्क प्रधान ग्रन्थ हैं। वैदिक ऋषियों की बौद्धिक शक्ति की पराकाष्ठा उन्हीं के द्वारा प्रकाश में आयी है। उपनिषदों के तर्क का अपना मौलिक आधार है। यह तर्क दो परस्पर विरोधी तत्त्वों को लेकर उपस्थित किया गया है और अन्त में उनका समन्वय एक ही तत्त्व क्षर—अक्षर, नित्य—अनित्य, श्रेय—प्रेय में स्थापित किया गया है। इस तर्क के आधार हैं सत्य—असत्य, धर्म—अधर्म, सत्—असत् चेतन अचेतन, जीवात्मा—परमात्मा और ब्रह्ममाया।

उपनिषदों में इस प्रकार के तर्क द्वारा वस्तु की यथार्थता का दिग्दर्शन कराने का कारण की विद्यमान है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय को स्पष्ट करने के लिए सहज एवं सरल उपाय या उत्तर नहीं है। ये प्रश्न बड़े जटिल हैं और उनकी मीमांसा बिना तर्क बुद्धि के सम्भव नहीं है। तर्क ही प्रमाण है और वही ज्ञान की उत्पत्ति का मूल भी है। तर्कबुद्धि से वैदिक ऋषियों ने उपनिषदों में उन जिज्ञासाओं का समाधान किया, जिन्हें वेदों के ऋषि उपस्थित कर चुके थे, किन्तु जिनका उत्तर वे न दे पाये उपनिषदों में उन पर भी विचार किया गया है।

वस्तुतः देखा जाय तो उपनिषद् वेदों की विचार प्रधान संस्कृति के ही व्याख्यान हैं। विषय की दृष्टि से वेदों के प्रमुख तीन भाग हैं— कर्म, उपासना और ज्ञान। वेदों के कर्म विषय का प्रतिपादन संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में हुआ है, उपासना विषय का संहिताओं एवं आरण्यकों में, और तीसरे ज्ञान काण्ड का प्रतिपादन उपनिषदों में। वेदों में कर्म तथा उपासना भाग का सम्यक् निरूपण जैमिनि के 'पूर्व मीमांसा दर्शन' में और ज्ञान भाग का बादरायण व्यास कृत 'उत्तर मीमांसा दर्शन' में हुआ है। 'शारीरिक मीमांसा', 'वेदान्तदर्शन' या 'ब्रह्मसूत्र' भी उत्तर मीमांसा दर्शन के अपर नाम हैं। वेदान्त के आचार्यों ने वेदान्त दर्शन को तीन भागों में विभाजित किया है— श्रुति, स्मृति और न्याय। उपनिषद् भाग को उन्होंने श्रुति के अन्तर्गत, 'गीता' आदि को स्मृति के अन्तर्गत और 'ब्रह्मसूत्र' आदि को न्याय के अन्तर्गत माना है।

उपनिषदों में मोक्ष साधन का मार्ग बताया गया है। मोक्ष की उपलब्धि के लिए पहला साधन है— ज्ञान अर्थात् विद्या। विद्या उपनिषदों में विद्या दो प्रकार की

बतायी गयी है— परा और अपरा। चारों वेद तथा छहों वेदांग अपरा विद्या और अक्षर ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली परा विद्या है। परा विद्या अर्थात् श्रेष्ठ विद्या ही ब्रह्म विद्या है, जिसके प्रतिपादक ग्रन्थ उपनिषद् हैं। अपरा विद्या कर्म प्रधान विद्या है। कर्म विद्या की फलोपलब्धि कालान्तर में होती है, किन्तु ब्रह्म विद्या तत्काल फलदायिनी होती है। कर्मफल विनश्वर भी है, किन्तु ब्रह्म विद्या या फल अविनश्वर, अमर होता है। अपरा विद्या युक्ति का कारण नहीं हो सकती, किन्तु परा विद्या का एकमात्र फल है— मोक्ष। फिर भी अपरा विद्या से मोक्ष फल को प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि वह हेतु है।

अविद्या अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा में क्रमशः नित्य, शुचि, सुख और आत्म बुद्धि अविद्या है। प्रत्येक से अभिन्न ब्रह्म का बोध कराने का साक्षात् साधन विद्या है। उसके विपरीत अविद्या है, जिसके कारण आत्म भिन्न देहेन्द्रियों में भ्रान्तिवश आत्मबुद्धि होने के कारण जीव संसारासक्त होकर परमार्थ से च्युत हो जाता है। ब्रह्म विद्या के अभाव को अविद्या कहते हैं, जिसके सम्बन्ध में कहा गया है कि अविद्या में लिप्त अज्ञानी पुरुष अहंकारी तथा अभिमानी हो जाते हैं। रागासक्त होने के कारण वे विद्या (ज्ञान) को नहीं पहचान पाते, जिससे उनका उत्तम लोक क्षीण पड़ जाता है और उनका पतन हो जाता है।¹²² अविद्या से घिरे हुए वे अपने-अपने को धीर तथा पंडित समझते हैं। इसलिए वे मोहित होकर इधर-उधर डोलते रहते हैं, जैसे अन्धे के द्वारा ले जाए जाते अन्धे (अन्धेनेव नीयमाना यथान्धाः)।

इसी प्रकार में विद्या और अविद्या का स्वरूप विस्तार से समझाया गया है। वहाँ कहा गया है कि जो पुरुष केवल अविद्या (अज्ञान) या कर्म की उपासना करते हैं वे सांसारिक अज्ञान में प्रवेश करते हैं।¹²³

उपनिषदों में मुमुक्षु पुरुष के लिए बताया गया है कि वेद—विदित कर्मों को करता हुआ साथ ही आत्मज्ञान (विद्या) के लिए भी यत्न करे। क्योंकि केवल आत्मज्ञान या देवताओं की उपासना से दूसरा ही फल मिलता है, और केवल कर्म

¹²² मुण्डकोपनिषद् १.२.८९

¹²³ ईशावास्योपनिषद् ९.११

अनुष्ठान से दूसरा ही फल मिलता है। श्रुति भी इसी बात को कहती है कि काम करने से पितृलोक और आत्मज्ञान से देवलोक प्राप्त होता है। इसलिए जो पुरुष विद्या (आत्म ज्ञान) और अविद्या (कर्मानुष्ठान) दोनों को एक साथ जानता है वह अविद्या से मृत्यु को दूर कर विद्या से अमृत (मोक्ष) को प्राप्त करता है। प्रकृति या माया प्रकृति, पुरुष और परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही उपनिषद् विद्या का प्रतिपाद्य विषय है।

मूल तत्त्व प्रकृति से ही जगत का अस्तित्व है। वह प्रकृति ब्रह्म की उपादानभूत माया है। उद्भिज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज ये चार देहधारीय वाक्, हस्त, पाद, वायु, उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक्, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार ये नौ ज्ञानेन्द्रिय और एक विषय ये सभी प्रकृति तत्त्व के कार्य व्यापार हैं। दर्शनों में जिन पर विस्तार से विचार किया गया है। आत्मा उपनिषदों में आत्मा को अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन कहा गया है। वह जन्म-मृत्यु से रहित है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उसकी स्थिति में कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता है। वह मेधावी है।

नचिकेता को उपेदश देते हुए 'कठोपनिषद्' में यमराज ने आत्मा का स्वरूप बताते हुए कहा 'हे नचिकेता, यह चैतन्यरूप आत्मा न जन्मता है और न मरता है। न वह किसी दूसरे से उत्पन्न हुआ है, न कोई दूसरा ही उससे उत्पन्न हुआ है। शरीर के नष्ट होने पर भी वह नहीं मरता।¹²⁴ यह आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और महान से महत्तर है। वह जीव की गुफा में छिपा है।¹²⁵ वह समस्त अनित्य शरीर में रहता हुआ भी शरीर रहित है, समस्त अस्थिर पदार्थों में व्याप्त होते हुए भी सदा स्थिर है। इस नित्य और महान विभु आत्मा को जो धीर पुरुष जान लेता है वह शोक से तर जाता है।¹²⁶ वह न तो वेद के प्रवचन से मिलता है, न विशाल बुद्धि से और न केवल जन्म भर शास्त्रों के श्रवण से ही, बल्कि वह उसको मिलता है, जो

¹²⁴ कठोपनिषद् १.२.१२

¹²⁵ कठोपनिषद् १.२.१९

¹²⁶ कठोपनिषद् १.२.२२

उसको पाने के लिए व्याकुल हो जाता है।¹²⁷ यह शरीर रथ है, आत्मा रथ का स्वामी रथी नाम से कहलाता है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, श्रोत्रादि इन्द्रियाँ उसके घोड़े हैं, शब्द स्पर्शादि विषय दौड़ने की भूमि है। इस शरीर इन्द्रिय मन से युक्त आत्मा को 'भोक्ता' कहते हैं।¹²⁸

'प्रज्ञात्मा 'कौषीतकी उपनिषद्' के चौथे अध्याय में लिखा है कि प्रज्ञात्मा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। प्रज्ञात्मा शरीर में उसी प्रकार व्याप्त है जैसे— काष्ठ में आग। सम्पूर्ण प्राण चेष्टाएँ प्रज्ञात्मा के पीछे उसी प्रकार भागती हैं जैसे— वन के पीछे धन लुब्धक। इस प्रज्ञात्मा का ज्ञान प्राप्त करने पर सम्पूर्ण पाप एवं दुःख विनष्ट होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसी हेतु धर्म सूत्रों ने पाप मुक्ति के लिए उपनिषद् विद्या के अध्ययन पर बल दिया है।¹²⁹

'ऐतरेयोपनिषद्' के तीसरे अध्याय में कहा गया है कि ब्रह्मा आदि देवता, पंच महाभूत, वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज, स्थावर और जंगम आदि जितनी भी जीवात्माएँ हैं सबका आधार प्रज्ञान है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी पर आधारित है। वही प्रधान ब्रह्म है।¹³⁰

ब्रह्म उपनिषद् विद्या का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है— ब्रह्म। ब्रह्म की सत्ता क्या है, जगत ब्रह्म का सम्बन्ध क्या है, ब्रह्म जीवात्मा का स्वरूप क्या है, ब्रह्म की उपलब्धि का मार्ग क्या है, आत्मा, प्रज्ञात्मा, प्रज्ञान क्या है, ब्रह्म आत्मा के ऐक्य का रहस्य क्या है और ब्रह्म साक्षात्कार का रहस्य क्या है — ये सभी बातें उपनिषदों में विस्तार से बतायी गयी हैं। उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म सत है। वह सर्वव्यापी अनन्त और शुद्ध चैतन्य है। वही सब का आत्मा है। उसी से इस जगत की उत्पत्ति हुई है, उसमें वह स्थिर है और उसी में विलय हो जाता है। यह प्रकृति और प्राकृतिक शक्तियाँ उसी के अंश हैं। वह विज्ञानमय और आनन्दमय है। उसको विवेक (ज्ञान) से जाना जा सकता है।

¹²⁷ कठोपनिषद् १.२.२३

¹²⁸ कठोपनिषद् १.३.३४

¹²⁹ कौषीतकी उपनिषद् अध्याय ४

¹³⁰ ऐतरेयोपनिषद् अध्याय . ३

उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूप माने गए हैं पर और अपर। पर ब्रह्म परा विद्या का विषय है और अपरा ब्रह्म अपरा विद्या का। पर ब्रह्म अवर्णनीय है और उसको 'नेति—नेति' से कहा जाता है, किन्तु अपर ब्रह्म सोपाधि होने से वर्णनीय है और उसको 'इति—इति' कहा जाता है।

वैदिक संस्कृति—

परंब्रह्म सत्य, ज्ञान, अनन्त, अद्वैत, अमृत और सनातन है। अपर ब्रह्म जगत का कारण पाप पुण्य के फलों को देने वाला, प्रकाशक और वह भी अनन्त, अक्षर सर्वज्ञ तथा सनातन है। पर को निर्गुण और अपर को सगुण भी कहा जाता है। दोनों के स्वरूप, शक्तियाँ और विभूतियाँ अनन्त हैं। उनमें यदि अन्तर है तो इतना ही कि पर ब्रह्म की प्राप्ति वैराग्य, त्याग, तपस्या और संन्यास से सम्भव है, किन्तु अपर ब्रह्म को भक्ति, श्रद्धा, प्रेम और भावना से प्राप्त किया जा सकता है। पर पारलौकिक और अपर ऐहिक जगत का विषय है। दोनों की प्राप्ति का समान फल है।

ब्रह्म विद्या या अध्यात्म विद्या का नाम ही उपनिषद् है। वेद का ज्ञान काण्ड होने से वह चिर प्रदीप्त और ज्ञानदीपक है। उपनिषदों के अनुसार सब कुछ ब्रह्म है। जीव भी ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्मस्वरूप जीव को उपनिषद् ज्ञान को प्राप्त करने की आवश्यकता इसलिए हुई कि वह अविद्या के प्रभाव से अपने वास्तविक अजन्मा, अविनश्वर, शुद्ध बुद्ध संयुक्त सच्चिदानन्दमय आत्मस्वरूप को विस्मृत कर स्वयं को जन्म—मरण के बन्धन से छुटकारा नहीं पा रहा है। उपनिषद् वह ज्ञान है जिससे जीव को दुःखों से छुटकारा पाने तथा अविद्या का कोहरा मिटा देने वाले प्रकाश की प्राप्ति होती है। जन्म दुःखमूलक है। उससे छुटकारा देने वाली एकमात्र उपनिषद् विद्या है। तत्त्व जिज्ञासुओं के लिए वह परमार्थ है और क्लेश युक्त जीवों के लिए परम उपकारिणी। सुख—दुःख, हानि लाभ, जय—पराजय की अपेक्षा किए बिना निरन्तर कर्म करने के लिए 'गीता' जिस परम पुरुषार्थ का निर्देश करती है, उपनिषद् भी ठीक उसी निष्काम कर्म का प्रतिपादन करते हुए मनुष्य को कर्तव्य शास्त्र की ओर प्रेरित करते हैं। इसलिए वे कर्तव्य शास्त्र, व्यवहार शास्त्र और नीतिशास्त्र के भी कोश हैं।

बन्धन और मोक्ष उपनिषदों के अनुसार जीवन दुःखमूलक है। वह अनेक तरह के बन्धनों से बँधा हुआ जीवन—मृत्यु के चक्र में घूम रहा है। इस बन्धन से छुटकारा दिलाने वाली, परम पुरुषार्थ को प्रकाशित करने वाली और परमार्थ को यथार्थ स्वरूप बताने वाली एकमात्र परम उपकारिणी विद्या उपनिषद् है। अनन्त कर्म बन्धनों से जकड़े हुए जीव को छुटकारा दिलाने वाली यह उपनिषद् विद्या मोक्ष का भी कारण है। कर्मबन्धन से मुक्त होकर अनन्त मोक्ष मार्ग को प्राप्त करने के लिए उपनिषदों में विस्तार से प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार उपनिषदों में विद्या—अविद्या, आत्मा—परमात्मा और माया—ब्रह्म विषयक परस्पर विरोधी तत्त्वों को उपस्थित करके अन्त में उनमें ऐक्य स्थापित किया गया है। उपनिषदों की तर्क—प्रधान संस्कृति में इस समन्वयवाद या ऐक्य का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी तात्त्विक जानकारी के लिए भी उनका यह ऐक्य का सिद्धान्त बड़ा ही महत्वपूर्ण है। यह ऐक्य ही वेदों और वेदान्त विद्या का अद्वैत है, जिसके अनुसार सभी कुछ है, किन्तु उसका एक ही परम तत्त्व में विश्वास है। उपनिषदों का यह ऐक्य सिद्धान्त वस्तुतः दार्शनिक जगत का साम्यवाद है। उपनिषदों तथा दर्शनों के इस साम्यवाद में एक वस्तु या एक जीव का दूसरी वस्तु या दूसरे जीव से इतना सामीप्य है कि वे दो इकाइयाँ कही ही नहीं जा सकती हैं। स्वरूप से, विचार से, कर्म से और सभी तरह से कहीं भी, किसी भी अवस्था में कोई भिन्नता या अनेकता नहीं है। उपनिषद् आर्य ऋषियों के उच्च चिन्तन के परिणाम हैं। उनमें आत्मा के अनुसन्धान पर गम्भीर विचार किया गया है। वे भारत की अन्तःचेतना के स्रोत हैं। नश्वर भौतिक सुखों की अपेक्षा उनमें आत्मा के अमरत्व पर विशेष बल दिया गया है। निरपेक्षता, निवृत्ति और वैराग्य आदि विषयों पर उपनिषदों की संस्कृति में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार उपनिषदों की तात्त्विक संस्कृति में विविधता में एकता स्थापित करके जीवन की विभिन्न धाराओं को एक ही महार्णव में विलयित करने का महान् सन्देश निहित है। उपनिषदों के विचारों की सर्वोच्च महानता इसी में है कि उसमें समस्त के लिए समान रूप से श्रेय और हित का दिग्दर्शन किया गया है। यही कारण है कि न केवल भारत में, अपितु विश्व साहित्य में उनको सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ।

द्वितीय अध्याय

वैदिक याज्ञिक कर्मकाण्ड में राष्ट्रियता की भावना

यज्ञ आर्य संस्कृति का आधारगत मूल्य है। वैदिक काल में सभी प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक गतिविधियों के नियन्त्रण में यज्ञ की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह बात भली भाँति ज्ञात होती है कि वैदिक समाज का हर कार्य यज्ञ के ही इर्द-गिर्द घूमता था। चाहे व्यक्ति का अपना जीवन हो, समाज की गतिविधि हो, सम्पूर्ण राष्ट्र की गतिविधि हो सभी यज्ञ से सम्पृक्त था। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का जीवन, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यज्ञ के साथ जुड़ा हुआ था। किसी भी व्यक्ति की अच्छाई-बुराई का मापक यज्ञ ही था।

जो यज्ञ करता था वह आर्य, यज्यु, यजमान, सूरि आदि नामों से अभिहित होता था। किन्तु जो व्यक्ति यज्ञ का सम्पादन नहीं करता था, अथवा विरोध करता था, वह अनार्य, 'अयज्यु', 'अरि', 'अराति आदि अभिधानों से जाना जाता था और उसको समाज का शत्रु समझा जाता था। कोई भी मान्यता अथवा युक्ति जो यज्ञ के विपरीत होती थी, त्याज्य थी। उसी का जीवन समादृत था जो यज्ञ का सम्पादन करता था। इस प्रकार यज्ञ वैदिक संस्कृति का शरीर था। पारिवारिक व्यवस्था में परिवार का प्रत्येक सदस्य, सामाजिक व्यवस्था में समाज का प्रत्येक वर्ग, राजनैतिक व्यवस्था में राजा से लेकर प्रजा तक सभी यज्ञ के साथ जुड़े थे। याज्ञिक कर्मकाण्ड विषयक विधियों के अध्ययन से मालूम होता है कि तत्कालीन ऋषियों ने याज्ञिक कर्मकाण्ड में केवल विधि के सम्पादन में ही यज्ञ की इयत्ता नहीं मानी थी, बल्कि उन विधियों के माध्यम से एक स्वस्थ राष्ट्रिय चिन्तन भी प्रदान किया था, जिसमें राष्ट्र की अभिवृद्धि सर्वोपरि थी। ऐसा क्यों न होता? क्योंकि व्यष्टि से समष्टि तथा समष्टि से राष्ट्र अधिक गुरुतर होता है। राष्ट्र में सुरक्षित रहकर ही संस्कृति का विकास सम्भव है। राष्ट्र की प्राप्ति भी तो तप एवं दीक्षा से होती है। अथर्ववेद इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख करता है कि ब्रह्मतत्त्ववेत्ता ऋषियों ने कल्याण की कामना से तप और दीक्षा का पालन किया जिसके प्रभाव से राष्ट्र, बल तथा ओज

पैदा हुआ।¹ इस प्रकार राष्ट्र ऋषियों के तप तथा दीक्षा रूप यज्ञ का ही परिणाम है।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपसेदुरग्रे।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्यै देवा उपसंनमन्तु।।

2.1 याज्ञिक विधियों के विधान में राष्ट्रियता की भावना—

यज्ञ में जो विधियाँ हैं वे देवताविषयक, द्रव्यविषयक, मन्त्रविषयक, यजमानविषयक, ऋत्विग्विषयक, कालविषयक, देशविषयक, पात्रविषयक, आदि हैं। इन सभी विधियों में राष्ट्रीय भावना के संकेत इतस्ततः प्राप्त होते हैं। कुछ कर्म तो ऐसे हैं जो प्रत्यक्षरूप से राष्ट्र के अभ्युदय के लिये किये जाते हैं। राजसूय में जो याज्ञिक विधियाँ हैं वे मुख्य रूप से राष्ट्रहित को सम्मुख रखकर ही विहित हैं, इस लिये उनका सम्पादन राष्ट्र को उत्तम बनाने की दृष्टि से अत्यावश्यक कर्तव्य बताया गया है। राजसूय यज्ञ साधारण व्यक्ति द्वारा सम्पादित न होकर राजाओं के द्वारा ही किया जाता था। इसलिये उसमें जिन कृत्यों का विधान है, उनमें किसी न किसी प्रकार की राष्ट्रहित-विषयक दृष्टि अवश्य है। राजसूय में अग्निनेत्र, यमनेत्र, विश्वेदेवनेत्र, मित्रावरुणनेत्र, मरुन्नेत्र, सोमनेत्र संज्ञक देवताओं के लिये निर्दिष्ट मन्त्रों² द्वारा पाँच वातीय आहुतियाँ प्रदान करने का विधान है।³ यह विधि इस बात की ओर संकेत करती है कि जिस प्रकार अग्नि, यम, विश्वेदेवा, मित्रावरुण या मरुत् तथा सोम क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊर्ध्व दिशा के देवता हैं, इसलिये इन देवताओं को आहुति प्रदान करने से ब्रह्माण्ड की प्रक्रिया सुचारु रूप से संचालित होती है, उसी प्रकार विभिन्न दिशाओं में स्थित राज्य के कमचारियों को राजा द्वारा प्रसन्न रखने से राष्ट्र सुरक्षित रहता है। सभी राजकर्मचारी अपनी-अपनी दिशा में स्थित होकर राष्ट्र की रक्षा करते हैं। जब राजा राजसूय यज्ञ करता है तब राष्ट्र चारों तरफ से सुरक्षित रहना चाहिये। किसी ओर से आन्तरिक अथवा बाह्य खतरा नहीं होना चाहिये। महाभारत से पता चलता है कि जब महाराज युधिष्ठिर ने

¹ अथर्व १९.४१.१

² मा.यजु. ९.३५, मा.यजु. ९.३६

³ का.श्रौ. सू. १५.१.१९

राजसूय यज्ञ करना चाहा, तब भगवान श्रीकृष्ण के सुझाव से पहले जरासंध आदि शत्रुओं को परास्त करना पड़ा, ताकि राजसूय यज्ञ में किसी प्रकार का विघ्न न होने पावे। इसी भावना से राजसूय में अग्निनेत्र आदि दिक्पाल देवों को आहुतियां प्रदान की जाती हैं।

राजसूय याग में एक विधि है कि अध्वर्यु यजमान राजा के दक्षिण बाहु को अपने हाथ से पकड़कर 'सविता त्वा' आदि आठ मन्त्रों का उच्चारण करता है।

सविता त्वा सवानां सुवतामग्निर्गृहपतीनां सोमो वनस्पतीनाम्।

बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्।

इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।।⁴

जहाँ 'त्वा' पद है उसके स्थान पर यजमान— राजा का नाम ग्रहण करता है। यहाँ जो आठ मन्त्र बोले जाते हैं वे 'देवसूहवींषि' कहलाते हैं। इस विधि के मूल में राजा को हर दृष्टि से शक्तिशाली बनाने की भावना है। मन्त्रों में जो भाव व्यक्त किया गया है वह इस प्रकार है— हे राजन्! प्रेरकों का अधिपति सविता देव तुमको सब को आज्ञा देने का अधिकारी बनावे, अर्थात् तुम सबको आज्ञा देने वाले होवोय अग्नि सम्पूर्ण गृहपतियों का तुम्हें अधिपति बनावे, सोम तुमको सभी वृक्षों का अधिपति बनावे अर्थात् सभी वृक्ष तुम्हारे लिये उपकारक हों अथवा सम्पूर्ण वनसम्पदा राष्ट्र के लिये उपयोगी होवेय बृहस्पति तुमको वाक्पटु बनावे, इन्द्र ज्येष्ठ ऐश्वर्यभाव के लिये तुमको प्रेरित करेय रुद्र पशुओं के आधिपत्य के लिये प्रेरित करे, अर्थात् पशुसम्पदा का स्वामी बनावेय मित्र देवता सत्यवाक् के लिये तुम्हें प्रेरित करे, तथा वरुण तुमको धर्मशीलों के ऊपर आधिपत्य प्रदान करे। सविता आदि देवताओं से राजा के लिये जिन नाना प्रकार के आधिपत्य की कामना की गई है वह केवल इसी दृष्टि से है कि वह राजा एक श्रेष्ठ प्रशासक बने।

इन आधिपत्यों से सम्पन्न होकर ही राजा अपने राष्ट्र का संरक्षण तथा संवर्धन कर सकता है। जिन आठ प्रकार के आधिपत्यों का उल्लेख है वे वस्तुतः

⁴ मा.यजु. ९.३९-४०

एक श्रेष्ठ राष्ट्राध्यक्ष में होने ही चाहियें। वही राजा राष्ट्र की रक्षा कर सकता है जिसे महान् क्षत्रबल, महान् ज्येष्ठ्य, महान् जनराज्य तथा महान् ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है। राजसूययज्ञ में इस कृत्य का विधान करते समय वैदिक यज्ञविदों के सम्मुख वह भावना मुख्य रूप से थी कि ऐसा कर्म सम्पादित किया जाये जिससे उस राष्ट्र का राजा इन सभी आधिपत्यों से सम्पन्न हो। इन विधानों के द्वारा यज्ञ कर्म सम्पादित करने वाले याज्ञिकों के अन्दर अपने राष्ट्र तथा राष्ट्राध्यक्ष के सर्वशक्तिमान होने के लिये कितनी बड़ी निष्ठा थी। जो लोग याज्ञिक ब्राह्मणों के ऊपर यह आरोप लगाते हैं कि वे दक्षिणा रूप में धन-प्राप्ति के उद्देश्य से ऐसा करते थे वे लोग इन विधियों के अन्दर निहित राष्ट्रिय भावना का अपमान करते हैं।

राजसूय में इडान्त कर्म के पश्चात् औदुम्बरी पात्रों में जलों के लाने का विधान है। जल लाते समय अध्वर्यु एक विशिष्ट अर्थ का वाचक एक मन्त्र⁵ पढ़ता है। इन जलों के लाने के पीछे यह भावना थी कि जलों में शत्रुनाशक शक्ति है। देवों ने मित्रावरुण तथा इन्द्र के अभिषेक के लिये इन जलों को ग्रहण किया था, ताकि वे उससे शत्रुओं का विनाश कर सकें। यह मन्त्र अध्वर्यु इसी अभिप्राय से पढ़ता है कि जिस प्रकार देवों ने इन्द्र और वरुण के अभिषेक के समय इस मन्त्र को पढ़कर उनके शत्रुओं से रक्षा की थी, उसी प्रकार वह अपने राजा को शत्रुओं से रक्षित करता है। एक अन्य मन्त्र में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है— **‘युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्यं यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं’**⁶ जलों में यजमान की रक्षा करने की शक्ति है। इन्द्र ने इसी कारण वृत्रवध के लिये जलों का वरण किया था और जलों ने इन्द्र का वरण किया था। राजसूय में जिन १६ प्रकार के जलों से राजा का अभिषेक किया जाता है उनको ‘राष्ट्री’ कहा गया है और उनसे यजमान राजा को राष्ट्रधारण करने की शक्ति प्रदान करने के लिये प्रार्थना की गई है।⁷

यह बात उल्लेखनीय है कि जलों को ‘राष्ट्री’, ‘राष्ट्रदा’, आदि विशेषणों से जो अभिहित किया गया है वह तो उनके राष्ट्रधारक गुणों के कारण ही है, यहाँ विभिन्न प्रकार के जलों को लाने का जो याज्ञिक विधान है उसमें भी राष्ट्रियता की

⁵ मा.यजु. १०.१

⁶ मा.यजु. १.१३

⁷ मा.यजु. १०.२-४; पीछे. पृ. ३, टि. ४

भावना सन्निहित है। राष्ट्र का प्रत्येक भाग हमारे लिये अपना है, देश की सभी नदियाँ अपनी हैं। इसलिये यदि किसी धार्मिक कृत्य में जब देश की विभिन्न नदियों का जो जल लाया जाता है उसके पीछे यही सांस्कृतिक राष्ट्रिय एकता की भावना होती है। स्मार्त कर्मों में भी जब कोई धार्मिक अनुष्ठान किया जाता है तो वहां कलश में स्थित जल में गंगाजल डालते समय केवल यह भावना की जाती है कि देश की समस्त नदियों का जल उसमें आ गया है। उस समय मन्त्र भी ऐसा पढ़ा जाता है।

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु ॥

यह विधि स्मार्त कर्मकाण्ड के समय ही नहीं बल्कि वैदिक काल से प्रचलित चली आ रही है। उस समय भी अभिषेक के लिये विभिन्न पवित्र नदियों का तथा विभिन्न प्रकार के जलों को तो लाया ही जाता था, यज्ञ में राष्ट्र की सभी नदियों का यज्ञवेदि पर पधारने के लिये आवाहन किया जाता था।

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्या ।

असिकन्या मरुद्ध्ये वितस्तयाजकीये शृणुह्या सुषोमया ॥

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्ता रसया श्वेत्या त्या ।

त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्वा सरथं याभिरीयसे ॥⁸

ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदी सूक्त के दो मन्त्रों का जिनमें सप्तसिन्धु प्रदेश की सभी नदियों का उल्लेख किया गया है, ऐसे ही अवसरों पर विनियोग होता था। आज इस भावना के अभाव में एक प्रान्त में स्थित नदी के जल को दूसरे प्रान्त में स्थित व्यक्ति देना नहीं चाहता। जल—विवाद आज की एक प्रबल समस्या है। वैदिक कर्मकाण्ड में जलों की स्थिति आज के लोगों को एक सन्देश देती है कि जल चाहे किसी भी प्रान्त की नदी का हो या सरोवर का हो, उस पर सबका अधिकार है।

राजसूय में यजमान राजा के अभिषेक के बाद उसको वस्त्रादि पहनाने का विधान मिलता है। तायंप्रभृतीनि क्षत्रस्य इति प्रतिमन्त्रम्⁹ इस कर्म में जिन मन्त्रों¹⁰

⁸ ऋ. १०.७५.५-६

⁹ का. श्रौ. सू. १५.५.१४

का विनियोग किया गया है, उन सब में राजा के क्षात्र शक्ति से आवेष्टि होने का भाव व्यक्त होता है। क्षात्र शक्ति से सम्पन्न राजा ही राष्ट्र की रक्षा कर सकता है तथा राष्ट्रविरोधी शत्रुओं का दमन कर सकता है।

राजसूय में खादिर लकड़ी की बनी आसन्दी को उस स्थान पर जहां व्याघ्र चर्म बिछाया गया है, रखा जाता है। उस समय 'स्योनासि सुषदासि' यह मन्त्र बोलता है। खादिरीमासन्दीं रज्जूतां व्याघ्रचर्मदेशे निदधाति स्योनाऽसी ति।¹¹ पुनः 'क्षत्रस्य योनिरिति'। यह मन्त्र बोलकर उसी आसन्दी पर एक चादर फैलाता है। अधीवाससमस्यामास्तृणाति क्षत्रस्य योनिरिति।¹² तदनन्तर स्योनामासीद, सुषदामासीद, योनिमासीद इन तीन मन्त्रों को बोलकर उस पर राजा को बैठाता है। सुन्वन्तमस्यामुपवेशयति स्योनामासीदे ति।¹³ 'निषसाद धृतव्रत' इस मन्त्र का राजा के हृदय का स्पर्श करते हुये जप करता है। 'निषसादे त्युरोऽस्यालभते'।¹⁴ इस कर्मकाण्ड के मूल में राजा को राष्ट्र में सुप्रतिष्ठित करने की भावना निहित है। जिस आसन्दी को व्याघ्रचर्म पर स्थापित करता है, वह आसन्दी राष्ट्र की शक्ति की प्रतीक है। यदि राजा की आसन्दी चली जाती है तो वह राष्ट्र नष्ट हुआ समझा जाता है। राष्ट्र के सिंहासन पर राजा सदा वर्तमान रहे, यह भावना राष्ट्र के प्रति ऋत्विजों की निष्ठा की द्योतक है। वैदिक कर्मकाण्डियों की यही भावना थी कि उनका राजा उसी प्रकार अपने सिंहासन पर बैठकर सुन्दर यज्ञ-यागादिक कर्म करता हुआ (सुक्रतुः) राष्ट्र का प्रशासन करता रहे, जिस प्रकार वरुण अपने राज-सिंहासन पर आसीन होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का शासन करता है। अपने राजा में वरुण की भावना राष्ट्र को सर्वशक्तिमान रखने की भावना है। ब्रह्मशक्ति का आरोपण क्षात्र शक्ति में किस प्रकार किया जाता है, इसके दृष्टान्त राजसूय के ही एक कर्मकाण्ड में दिखाई पड़ता है।

¹⁰ मा.यजु. १०.८

¹¹ का.श्रौ.सू. १५.७.१; द्र. वा. सं. १०.२६

¹² का.श्रौ.सू. १५.७.२

¹³ का.श्रौ. सू. १५.७.३

¹⁴ का.श्रौ. सू. १५.७.४

राजा ब्रह्मा को सम्बोधित करते हुये कहता है, हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मा हो, तदनन्तर ब्रह्मा यजमान राजा को कहता है। हे राजन्! तुम ब्रह्मा हो। पुनः दूसरी बार राजा ब्रह्मा से कहता है। हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मा हो। तदनन्तर ब्रह्मा राजा को कहता है। हे राजन्! तुम ब्रह्मा हो, सत्य आज्ञा वाले सविता हो। पुनः तीसरी बार राजा ब्रह्मा से कहता है। हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मा हो। तदनन्तर ब्रह्मा राजा को कहता है। हे राजन्! तुम ब्रह्मा हो, सत्य ओजस् वाले वरुण हो। पुनः चौथी बार राजा ब्रह्मा से कहता है। हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मा हो। तदनन्तर ब्रह्मा राजा को कहता है। हे राजन्! तुम ब्रह्मा हो, विश रूप शक्ति वाले इन्द्र हो। अन्त में पुनः राजा ब्रह्मा से कहता है। हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मा हो।¹⁵ तदनन्तर ब्रह्मा राजा को कहता है। हे राजन्! तुम ब्रह्मा हो, सबके नियन्ता ब्रह्मा हो। इस कर्मकाण्ड के द्वारा ब्रह्म शक्ति की प्रधानता को स्वीकार करते हुये उसी को क्षात्रशक्ति में प्रत्यारोपित किया गया है। राजा को जो शक्ति प्राप्त होती है। वह ब्रह्मशक्ति के आशीर्वाद के रूप में ही प्राप्त होती है। ब्रह्मशक्ति से ही शक्ति पाकर राजा राष्ट्र का शासन करता है।

राजा को राज्य ब्रह्मशक्ति से प्राप्त हुआ है, इसलिये वह धरोहर का रक्षक है। राजा तथा ब्रह्मा नामक ऋत्विज के संवाद रूप इस कर्मकाण्ड में जो 'सत्यप्रसवः, शसत्यौजाश्, विशौजा तथा सुशेवः' पद प्रयुक्त हुये हैं। वे राष्ट्रिय सन्दर्भ में विशेष महत्त्व के हैं। 'सत्यप्रसवः' का अर्थ है— सत्य आदेश वाला। राजा का आदेश पालनीय होता है। यह तभी हो सकता है, जब राजा शक्तिशाली हो। यदि राजा के आदेश का पालन जनता में न हो तो वह राजा, राजा नहीं। राजनीति के क्षेत्र में अवज्ञा आन्दोलन होते हैं, किन्तु शक्तिशाली राजा आन्दोलन दबा देता है। वैदिक काल में राजा की आज्ञा अनुल्लंघनीय होती थी, इसका कारण यही था कि वह सत्य पर आधारित थी। 'सत्यौजस्' पद का अर्थ है— सत्यरूप शक्ति वाला। सत्य जिसका बल है, उस राजा का राज्य नष्ट नहीं हो सकता, उस राष्ट्र का कभी पतन नहीं हो सकता। वरुण को 'सत्यौजा' कहा गया है, क्योंकि सत्य ही उसकी शक्ति है। 'विशौजा' का अर्थ है— प्रजा ही जिसकी शक्ति है। जिस राष्ट्र की जनता राजा

¹⁵ मा.यजु. १०.२८

की शक्ति होकर काम करती है, उस राष्ट्र का पतन कभी नहीं होता। यहां 'विशौजस्' शब्द प्रजातन्त्रात्मक शासन की ओर संकेत करता है।

राजा की सत्ता जनता पर आश्रित होती है। जनता ही राजा का वरण करती है और जब तक राजा अपने कर्तव्यपथ पर चलता हुआ प्रजा का पालन करता है, प्रजा उसकी शक्ति होकर रहती है। किन्तु जब राजा उच्छृंखल होकर प्रजा का शोषण करने लग जाता है, तब वही जनता उसको पदच्युत भी कर सकती है। इसलिये उत्तम राष्ट्र के लिये जनता रूपी शक्ति को अपने अधीन रखना आवश्यक है। यही बात 'विशौजा' पद से अभिव्यक्त होती है। 'सुशेवरू' पद का अर्थ है—सुन्दर सुख देने वाला। जिस राष्ट्र का शासनकर्ता राजा जनता को सदा सुख देने वाला होगा, वह राष्ट्र कभी संकटग्रस्त नहीं हो सकता।

यह बात उल्लेखनीय है कि राजसूय—विषयक कर्मकाण्डीय विधियों में ब्राह्मण को श्रेष्ठ तथा राजा को उसके आशीर्वाद का पात्र अथवा उसके द्वारा प्रदत्त राज्य का पालक बताया गया है। इस सन्दर्भ में शतपथब्राह्मण का कथन है कि जो राजा ब्राह्मणों से कमजोर होता है, वह निश्चित ही शत्रुओं से बलवान् होता है।

यो वै राजा ब्राह्मणादबलीयानमित्रेभ्यो वै स बलीयान्भवति।¹⁶ इसका आशय स्पष्ट है। राजा का ब्राह्मण के ऊपर आधिपत्य नहीं, क्योंकि वह राष्ट्र का मस्तिष्क होता है, वह राजा का मार्गदर्शक है। राजतन्त्र में लाभ का भागीदार नहीं, इस लिये वह संविधान का निर्माता है। श्रुति स्पष्ट रूप से ब्राह्मण के लिये कहती है 'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा' अर्थात् हम ब्राह्मणों का राजा सोम है।

वैदिक राजतन्त्र में कहीं ऐसा उल्लेख नहीं जहां ब्राह्मण के ऊपर राजा का आधिपत्य दिखाया गया है। दूसरी तरफ इस बात के अनेक उदाहरण मिलेंगे जिसमें कहा गया है कि जिस राजा ने ब्राह्मण के ऊपर आधिपत्य दिखाया वह नष्ट हुआ।

2.2 राजसूयगत रत्नहवींषि संज्ञक आहुतियों में राष्ट्रियता की भावना—

राजसूय में राजा द्वारा दी जाने वाली एक विशेष प्रकार की आहुतियों का उल्लेख मिलता है जिन्हें 'रत्नहवींषि' कहते हैं। इन आहुतियों की संख्या १२ है और ये भिन्नभिन्न व्यक्तियों के घरों में दी जाती हैं। द्वादशोत्तराणि रत्नहवींषि।

¹⁶ श.ब्रा. ५.४.४.१५

प्रतिगृहमेकैकं श्वः।¹⁷ राष्ट्र की सुरक्षा चाहने वाले राजा के लिये इन आहुतियों का विधान है। यहां राज्य के विभिन्न अधिकारियों को 'रत्न' कहा गया है। जिस प्रकार रत्न सम्पत्ति में बहुमूल्य होता है, उसी प्रकार राष्ट्र को धारण करने में इन अधिकारियों का विशेष महत्त्व है। रत्न संज्ञक अधिकारी ये हैं¹⁸— (१) सेनानी (२) पुरोहित (३) यजमान (४) महिषी (५) सूत (६) ग्रामणी (७) क्षत्ता (८) संग्रहीता (९) भागदुघ (१०) अक्षावाप (११) गोविकर्त तथा (१२) परिवृत्ती। तै.सं. में राजा को छोड़कर इनकी संख्या ११ बताई गई है, जो इस प्रकार है— ब्रह्मा, राजन्य, महिषी, परिवृत्ती, सेनानी, सूत, ग्रामणी, क्षत्ता, संग्रहीता, भागदुध तथा अक्षावाप ।

सेनानी के गृह प्रथम आहुति—

अग्निमन्थन के द्वारा अग्नि को उत्पन्न तथा प्रज्वलित कर अनीकवत् अग्नि के लिये अष्टाकपाल पुरोडाश की आहुति राजा सर्वप्रथम अपने सेनापति के घर में प्रदान करता है। **समारूढनिर्मथितेऽग्नयेऽनीकवते सेनान्यः।**¹⁹ इस आहुति का महत्त्व बताते हुये शतपथ ब्राह्मण कहता है कि जिस प्रकार अग्नि देवताओं का मुख है उसी प्रकार राजा की सेना का प्रमुख सेनानी होता है। इसलिये सेनापति के घर पर अनीकवत् अग्नि के लिये आहुति दी जाती है। सेनानी राष्ट्र का प्रथम रत्न है। सेनानी के घर में आहुति प्रदान कर राजा उसे अपने राष्ट्र के प्रति विश्वासपात्र बनाता है। उसको अपने से अलग नहीं होने देता। यदि सेनापति राष्ट्राध्यक्ष का विश्वासपात्र नहीं तो वह राष्ट्र संकट में पड़ सकता है। इसी उद्देश्य से राजा सेनानी के घर प्रथम आहुति प्रदान करता है, ताकि वह उसका विश्वासपात्र बना रहे।

पुरोहित या ब्रह्मा के घर द्वितीय आहुति—

¹⁷ का.श्रौ. सू. १५.३.१-२

¹⁸ का. श्रौ.सू. १५.३.३-१४; श.ब्रा. ५.३.१.१-१३

¹⁹ का. श्रौ. सू. १५.३.३

दूसरे दिन राजा अपने पुरोहित के घर बृहस्पति के लिये चरु की आहुति प्रदान करता है। जिस प्रकार बृहस्पति देवताओं के पुरोहित हैं, उसी प्रकार राजा का पुरोहित होता है। पुरोहित भी राष्ट्र का एक रत्न है। जिस राष्ट्र में पुरोहित राजा से असन्तुष्ट हो या विश्वासपात्र न हो वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है। पुरोहित जो राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण घटक है, वह राष्ट्र के विरुद्ध न हो इस लिये राजा उसके घर में बार्हस्पत्य चरु की आहुति देता है।²⁰ ऐसा करके वह पुरोहित को अपने राष्ट्र के हित में नियुक्त करता है। तैत्तिरीय संहिता में पुरोहित के स्थान पर ब्रह्मा का रत्नी के रूप में उल्लेख है।²¹ और उसके घर प्रथम दिन आहुति प्रदान की जाती है। इसका उद्देश्य यही है कि ब्रह्मशक्ति राष्ट्र से अलग न होने पावे।

यजमान के घर तृतीय आहुति—

तीसरे दिन राजा अपने घर में ही इन्द्र देवता के लिये एकादशकपाल पुरोडाश की आहुति प्रदान करता है। जिस प्रकार इन्द्र देवताओं का राजा है, उसी प्रकार राजा भी अपनी जनता का शासक है। क्षात्रशक्ति उससे कभी अलग न हो, इसलिये वह इस आहुति को अपने घर पर ही प्रदान करता है।²² ऐसा भी माना जाता है कि यह आहुति युवराज के निवास पर दी जाती है। युवराज भी राष्ट्र का एक शक्तिशाली अंग होता है। यदि युवराज राजा का विश्वासपात्र न हो तो वह राष्ट्र के लिये तथा राजा के लिये घातक सिद्ध हो सकता है। इसलिये राजा के प्रति उसका विश्वास कायम रखने के लिये युवराज के निवास पर यह आहुति दी जाती है।

महिषी के घर चतुर्थ आहुति—

चौथे दिन महिषी के घर आकर अदिति के लिये चरु का निर्वाप करता है। जिस प्रकार अदिति देवताओं की पत्नी या रक्षिका है, उसी प्रकार महिषी भी राजा की रक्षिका होती है। वस्तुतः महिषी भी राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण अंग है, इसलिये वह भी एक रत्न है। यदि महिषी असन्तुष्ट होगी तो राजा अपने राष्ट्र को धारण करने

²⁰ श.ब्रा. ५.३.१.२; द्र.का.श्रौ.सू. १५.३.४

²¹ तै.सं. १.८.९.१

²² श.ब्रा. ५.३.१.३; का. श्रौ. सू. १५.३.५

में सक्षम नहीं हो सकेगा। इसलिये महिषी राजा तथा राष्ट्र दोनों के प्रति विश्वसनीय हो इसके लिये महिषी के घर पर आहुति का विधान है। ऐसा करके महिषी को राजा से कभी विमुख न होने वाला बनाया जाता है।²³

सूत के घर पंचम आहुति—

पाँचवें दिन सूत के घर जाकर वरुण देवता के लिये यव से बने चरु का निर्वाप करता है। जिस प्रकार वरुण देवताओं में प्रेरक है, उसी प्रकार सूत भी राजा को प्रेरित करने वाला होता है। सूत भी राष्ट्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, इसलिये वह भी एक रत्न है। राजा के रथ का संवाहक होता है। यदि किसी कारण वह राजा से असन्तुष्ट हो जाय तो युद्ध में राजा के जीवन को खतरा उपस्थित हो सकता है। सूत राजा के प्रति विश्वसनीय बना रहे, उससे अलग न होने पावे, इस उद्देश्य से उसके घर राजा वरुण देवता को आहुति प्रदान करता है।²⁴

ग्रामणी के घर षष्ठ आहुति—

छठे दिन राजा ग्रामणी नामक अधिकारी के घर जाकर मरुत् देवता के लिये सप्तकपाल पुरोडाश का निर्वाप करता है। जिस प्रकार मरुत् विश्व हैं, उसी प्रकार ग्रामणी भी विश्व का प्रतिनिधि होता है। ग्राम का प्रमुख होने के कारण ग्रामणी राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है, इसलिये वह भी एक रत्न है। यदि ग्रामणी राजा के विरुद्ध हो जाय या असन्तुष्ट हो तो राजा के लिये बाधक हो सकता है। ग्रामणी राजा के प्रति विश्वसनीयता बनाये रखे, किसी प्रकार उससे अलग न होने पावे, इसलिये ग्रामणी के घर भी राजा द्वारा एक आहुति देने का विधान किया गया है।

अथ श्वो भूते। ग्रामण्यो गृहान् परेत्य मारुतं सप्तकपालं पुरोडाशं निर्वपति।

विशो वै मरुतो वैश्यो वै ग्रामणीस्तस्मान्मारुतो भवत्येतद्वा अस्यैकं रत्नं यद् ग्रामणीस्तस्मा एवैतेन सूयते तं स्वमनपक्रमिणं कुरुते।²⁵

क्षत्ता के घर सप्तम आहुति—

²³ श.ब्रा. ५.३.१.४; का.श्रौ.सू. १५.३.६

²⁴ श.ब्रा. ५.३.१.५; का. श्रौ.सू. १५.३.७

²⁵ श.ब्रा. ५.३.१.६; का. श्रौ. सू. १५.३.८

सातवें दिन राजा क्षत्ता के घर जाकर सविता देवता के लिये द्वादशकपाल या अष्टकपाल पुरोडाश का निर्वप करता है। जिस प्रकार सविता देवताओं का प्रेरक है, उसी प्रकार क्षत्ता भी राष्ट्र का प्रेरक होता है। क्षत्ता राजा का रक्षापुरुष होने के कारण राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण अंग है, इसीलिये वह भी एक रत्न है। यदि क्षत्ता राजा के प्रति विश्वासपात्र नहीं तो राजा के जीवन के लिये खतरा हो सकता है। रक्षापुरुष राजा के प्रति विश्वसनीयता बनाये रखे तथा उससे कभी अलग न होने पावे, इस उद्देश्य से राजा द्वारा उसके घर में आहुति देने का विधान किया गया है।

अथ श्वो भूते। क्षत्तुर्गृहान् परेत्य सावित्रं द्वादशकपालं वाऽष्टकपालं वा पुरोडाशं निर्वपति। सविता वै देवानां प्रसविता प्रसविता वै क्षत्ता तस्मात् सावित्रो भवत्येतद्वा अस्यैकं रत्नं यत्क्षत्ता तस्मा एवैतेन सूयते तं स्वमनपक्रमिणं कुरुते।²⁶

संग्रहीता के घर अष्टम आहुति—

आठवें दिन राजा संग्रहीता नामक अधिकारी के घर जाकर अश्विनौ देवता के लिये द्विकपाल पुरोडाश का निर्वप करता है। संग्रहीता प्रशासक होता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार संग्रहीता सारथी होता है। अश्विनीकुमार जुड़वें देव हैं। जिस प्रकार वे सदा साथ रहते हैं, संग्रहीता भी सदा राजा के साथ रहता है। संग्रहीता राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है, इसलिये वह भी एक रत्न है। यदि संग्रहीता राजा से असन्तुष्ट हो जाय तो राजा के लिये वह खतरा उत्पन्न कर सकता है। संग्रहीता राजा के प्रति विश्वसनीयता बनाये रखे तथा उससे कभी अलग न हो, इसलिये राजा द्वारा उसके घर आहुति देने का विधान किया गया है।

अथ श्वोभूते । संग्रहीतुर्गृहान् परेत्याश्विनं द्विकपालं पुरोडाशं निर्वपति। सयोनी वा अश्विनौ सयोनी सव्यष्टी सारथी समानं हि रथमधितिष्ठतस्तस्मादाश्विनो भवत्येतद्वा अस्यैकं रत्नं यत् संग्रहीता तस्मा एवैतेन सूयते तं स्वमनपक्रमिणं कुरुते।²⁷

भागदुघ के घर नवमी आहुति—

²⁶ श.ब्रा. ५.३.१.७; द्र. का. श्री. सू. १५.३.९

²⁷ श.ब्रा. ५.३.१.९ , कौ. श्री. सू. १५.३.१०

नवें दिन राजा भागदुध नामक अधिकारी के घर जाकर पूषा देवता के लिये चरु का निर्वाप करता है। जिस प्रकार पूषा देवताओं को भाग प्रदान करने वाला है, उसी प्रकार भागदुध राजा के लिये कर रूप में धन संग्रह करने वाला होता है। भागदुध राष्ट्र का प्रमुख कराधिकारी होता है, इसलिये वह भी एक रत्न है। यदि भागदुध राजा का विश्वसनीय नहीं तो राजा का कोष रिक्त हो सकता है और कोष रिक्त होने पर राष्ट्र महान् आर्थिक संकट में पड़ सकता है। संग्रहीता राजा के प्रति अपनी विश्वसनीयता बनाये रखे और उससे अलग न होने पावे, इसी उद्देश्य से राजा भागदुध के घर एक आहुति प्रदान करता है।²⁸

अक्षावाप तथा गोविकर्त के गोधूम से यजमान के घर दशमी आहुति—

दसवें दिन राजा अक्षावाप तथा गोविकर्त के घर जाकर उनके यहां से गोधूम लाकर उससे अपने घर रुद्र देवता के लिये चरु का निर्वाप करता है। ऐसा करके वह अक्षावाप और गोविकर्त को वस्तुतः दो होते हुए भी एक बनाता है। अक्षावाप राजा के अक्षकर्म का अधिकारी होता है तथा गोविकर्त कृषिकर्म का अधिकारी होता है। ये दोनों मिलकर एक रत्न होते हैं, इसलिये दोनों के घर से गोधूम लाकर एक चरु का निर्वाप होता है। अक्षावाप तथा गोविकर्त राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण अंग हैं, इसलिये राजा के प्रति इनकी विश्वसनीयता आवश्यक है। इनके विश्वसनीय न से राजा जुए में हार सकता है तथा राष्ट्र की कृषि सम्पदा क्षीण हो सकती है। अक्षावाप और गोविकर्त राजा के प्रति अपनी विश्वसनीयता बनाये रखें तथा उससे कभी अलग न होने पावें, इसी उद्देश्य से उनके घर से गोधूम लाकर राजा के घर चरु का निर्वाप किया जाता है।²⁹

पालागल के घर जाते हुये मार्ग में आज्यहोम—

ग्यारहवें दिन राजा पालागल के घर जाकर चतुर्गृहीत आज्य से मार्ग में 'जुषाणोऽध्वाऽऽज्यस्य वेतु स्वाहा' इस मन्त्र से होम करता है। पालागल राजा का दूत होता है जो उसके सन्देश को दूसरे के पास ले जाता है। राजा द्वारा प्रेषित होकर वह मार्ग से जाता है, इसलिये मार्ग में ही आज्य की आहुति दी जाती है।

²⁸ श.ब्रा. ५.३.१., द्र. कौ. श्रौ. १५.३.११

²⁹ श.ब्रा. ५.३.१.१०; का.श्रौ. सू. १५.३.१२

पालागल राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण अंग है, इसलिये वह भी एक रत्न है। यदि राजा के प्रति दूत की विश्वसनीयता नहीं तो वह राजा नष्ट हो सकता है। पालागल की विश्वसनीयता राजा के प्रति बनी रहे और उससे वह कभी अलग न हो, इसीलिये यह आहुति प्रदान की जाती है।³⁰ तैत्तिरीय परम्परा में तथा कात्यायन श्रौतसूत्र में इस पालागल के घर जाते समय मार्ग में दी जाने वाली घृत की आहुति का उल्लेख नहीं।

परिवृत्ती के घर बारहवीं आहुति—

बारहवें दिन राजा परिवृत्ती (परिवृत्ती) के घर जाकर नखनिर्भिन्न चावलों से निवृत्ति देवता के लिये चरु से दर्वीहोम की आहुति 'एष ते निरृतेर्भागस्तं जुषस्व स्वाहा' इस मन्त्र द्वारा देता है। पुत्ररहित पत्नी परिवृत्ती कहलाती है। जो पुत्ररहित स्त्री होती है वह निऋतिगृहीत मानी जाती है। वह स्त्री राष्ट्र के लिये घातक हो सकती है। इसके इस पापरूप को दूर करने की भावना से उसके घर यह आहुति दी जाती है।³¹ यह बात उल्लेखनीय है कि तैत्तिरीय संहिता, बौधायन श्रौतसूत्र, वाधूल श्रौतसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र सभी परिवृत्ती को भी रत्नी मानते हैं। शतपथ ब्राह्मण परिवृत्ती के घर आहुति देने का विधान तो करता है, किन्तु अन्यो की तरह स्पष्ट शब्दों में उसके रत्नी होने का उल्लेख नहीं करता। शतपथ ब्राह्मण रत्नियों की संख्या ग्यारह ही मानता है।³² तैत्तिरीय संहिता आदि में भी रत्नियों की संख्या ग्यारह ही है, किन्तु उनमें परिवृत्ती भी सम्मिलित है।

मैत्रायणी संहिता के राजसूय ब्राह्मण में इन रत्नियों को शक्तिशाली माना गया है। इनके विश्वसनीय होने पर ही राजा शक्तिसम्पन्न माना जाता है। वहाँ यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जिस राजा के ये रत्नी ओजस्वी होते हैं वह राष्ट्र ओजस्वी होता है। इसलिये राजा उक्त इष्टियों द्वारा उसको ओजस्वी बनाता है। जिस राजा के ये रत्नी तेजस्वी होते हैं, उस राजा का राष्ट्र तेजस्वी होता है। मैत्रायणी संहिता के अनुसार राजा सबसे पहले बार्हस्पत्य चरु का निर्वाप ब्रह्मा के घर से करता है। ब्रह्मा बृहस्पति का रूप है, इसलिये बृहस्पतिरूप पुरोहित वाला ही राजा राष्ट्र को

³⁰ श.ब्रा. ५.३.१.११

³¹ श.ब्रा. ५.३.१.१३

³² श.ब्रा. ५.३.१.१३

समृद्ध कर सकता है। ब्रह्म का ही अनुगामी बनाता है।³³ एक बात उल्लेखनीय है कि इन ग्यारह रत्नियों की आहुतियां अलग-अलग ही होती है। मैत्रायणी संहिता इनको अलग-अलग देने का ही विधान करती है। यदि एक साथही सबका निर्वाप किया तो ये अरत्नी हो जायेंगे।³⁴

2.3 वाजपेयगत विधियों में राष्ट्रियता की भावना—

वाजपेय याग में कई ऐसी कर्मकाण्डीय विधियां मिलती हैं जिनमें तत्कालीन याज्ञिकों की राष्ट्रिय भावना का पता चलता है। वाजपेय में रथधावन का विधान है। जिस रथ पर राजा बैठता है उस रथ के दौड़ने से पूर्व वहाँ 'रथविमोचनीया' नामक इष्टि होती है। यजमान रथ के नीचे की भूमि को यह कहते हुये देखता है कि हे पृथिवि माता! मुझे हिसित मत करो और मैं भी तुम्हें हिसित न करूँ। **पृथिवि मातर्मा हिंसीम अहं त्वाम्**।³⁵ यद्यपि इस विधि में नीचे की भूमि के वेक्षण का उल्लेख है **भूमिमवेक्षते पृथिवि मातरिति**।³⁶ किन्तु इसके अन्दर एक बहुत बड़ी राष्ट्रिय भावना निहित है। जिस राष्ट्रभूमि में हम रहते हैं, उसके प्रति मातृत्व की भावना रखना एक श्रेष्ठ राष्ट्रियता का लक्षण है। रथविमोचनीया इष्टि में रथ के नीचे की भूमि को मातृरूप में सम्बोधित करना इसी राष्ट्रिय भावना का परिणाम है।

वाजपेय याग में 'वाजप्रसवीय' संज्ञक सात आहुतियों के देने का विधान है। **स्रुवेण सम्भृताञ्जुहोति वाजस्येममिति प्रतिमन्त्रम्**।³⁷ इन आहुतियों के समय जिन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, उनमें वैदिक ऋषियों की राष्ट्र की समृद्धि की भावना व्यक्त हुई है। प्रथम आहुति प्रदान करते समय यह कामना की गई है कि अन्न के उत्पादक प्रजापति ने सर्वप्रथम सृष्टि के प्रारम्भ में राजा सोम को औषधियों तथा जलों में स्थापित किया। वे औषधियाँ तथा जल हमारे लिये मधु से युक्त हों, तथा उन औषधियों एवं जलों से युक्त हम राष्ट्र में सदा जागरूक रहें।

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमं राजानमोषधीष्वप्सु।

³³ मै. सं. ४.३.८

³⁴ मै. सं. ४.३.८

³⁵ मा. यजु. १०.२३

³⁶ का. श्रौ. सू. १५.६.२५

³⁷ का. श्रौ. सू. १४.५.२३

ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयं राष्ट्रे जागृत्याम पुरोहिताः ।।³⁸

ब्राह्मण राष्ट्र के पुरोहित होते हैं। जब राष्ट्र के पुरोहित सदा जागरूक रहते हैं, तब राष्ट्र कभी पतन की ओर नहीं जाता, वह सम्पूर्ण धन-धान्य से परिपूर्ण होता है। राष्ट्र की रक्षा के लिये ब्रह्मशक्ति सदा प्रज्वलित रहती है। यही भावना वाजप्रसवीय होम के प्रथम मन्त्र से अभिव्यक्त होती है।

वाजपेय में प्रसवीय होम के बाद बचे हुये होम द्रव्य से यजमान को अभिषिक्त करने का विधान है। शेषेणाभिषिञ्चति यजमानं शदेवस्य त्वे ति।³⁹ अभिषिक्त करते समय जिस मन्त्र⁴⁰ का उच्चारण करता है उसमें राजा को सर्वशक्तिमान बनाने का भाव है। इस विधान के मूल में राजा को बृहस्पति के साम्राज्य अर्थात् विद्याबल में सर्वश्रेष्ठ बनाना है। पुरोहित यजमान को बुद्धिमान राजा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है। यह बात सर्वविदित है कि वही राष्ट्र उन्नति के पथ पर चल सकता है, जिसका राष्ट्राध्यक्ष बुद्धिमान हो। इसलिये ऐसा विधान करते समय विधानकर्ता के मन में यही राष्ट्रिय भावना काम कर रही है कि उसका राजा बुद्धिमान हो, ताकि अपने राष्ट्र का वह सम्यक् प्रकार से संरक्षण और संचालन कर सके।

वाजपेय के अन्त में 'अग्निरेकाक्षरेण' अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषम्। अश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषम्। विष्णुस्त्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषम्। सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम्। पूषा पंचाक्षरेण पंच दिश उदजयत्ता उज्जेषम्। सविता षडक्षरेण षडृतूनुदजयत्तानुज्जेषम्। मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजययँस्तानुज्जेषम्। बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तानुज्जेषम्। मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम्। वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तानुज्जेषम्। इन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तानुज्जेषम्। विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तानुज्जेषम् । वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशं

³⁸ मा.यजु. ९.२३

³⁹ का.श्रौ.सू. १४.५.२४

⁴⁰ मा.यजु. ९.३०

स्तोममुदजयँस्तमज्जेषम् । अदितिः षोडशाक्षरेण षोडशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ।
प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ।।⁴¹

इस अनुवाक के उज्जिति संज्ञक मन्त्रों का उच्चारण राजा से करवाने का अथवा इन मन्त्रों से होम करने का विधान है।⁴² इस विधान के पीछे यही राष्ट्रिय भावना कार्य कर रही है कि राजा सभी प्रकार की विजय प्राप्त करे। विजेता राजा से ही प्रजा प्रसन्न रहती है। जो राजा अपने राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता तथा जो शत्रुओं से पराजित होने वाला है, वह राष्ट्र का स्वामी होने के योग्य नहीं। वैदिक कर्मकाण्ड में अनेक ऐसी विधियां निर्धारित की गई थीं, जिनमें राजा के विजय की कामना होती थी। वाजपेय याग वस्तुतः वही राजा कर सकता था जो चक्रवर्ती होना चाहता था।

2.4 अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन में राष्ट्रियता की भावना—

अश्वमेध एक राष्ट्रिय यज्ञ था। इसका सम्पादन वही कर सकता था जो चक्रवर्ती राजा होना चाहता था। कमजोर राजा इसका सम्पादन नहीं कर सकता था। वैदिक काल में यद्यपि कई छोटे-छोटे राजा हुआ करते थे, किन्तु इन सबका अधिपति एक चक्रवर्ती राजा होता था। चक्रवर्ती राजा वही हो सकता था जो अश्वमेध करता था। अश्वमेध चक्रवर्ती होने का प्रतीक था। यह आवश्यक नहीं कि एक ही राजा या उसके वंशज सदा चक्रवर्ती बने रहें। उसके वंशजों के शक्तिहीन होने पर कोई अन्य राजा भी अश्वमेध करके चक्रवर्ती हो सकता था। अश्वमेध का अश्व आध्यात्मिक तथा आधिदैविक धरातल पर भले ही आत्मा या सूर्य का प्रतीक रहा हो, किन्तु आधिलौकिक धरातल पर वह शक्ति का प्रतीक था। इसलिये अश्वमेध यज्ञ में जो विधियां विहित हैं, वे इसी उद्देश्य से प्रेरित हैं। अश्वमेध का सर्वप्रथम विधान यह है कि जो राजा इसे करना चाहता है वह चार रथों को चारों दिशाओं में प्रेषित करता है और रथ के साथ राजा का सन्देशवाहक यह कहता है कि अमुक राजा अश्वमेध यज्ञ करेंगे, आप इसके लिये अपनी सहमति दीजिये। यदि वह

⁴¹ मा.यजु. ९.३१-३४

⁴² का.श्रौ. सू. १४.५.२७

स्वीकार कर लेता था, तब वह आगे दूसरे जनपद से वही सन्देश भिजवाता था।⁴³ यदि वह स्वीकार नहीं करता तो उसे साम-दाम-दण्ड-भेद द्वारा समझाया जाता था। उसके साथ राजा अपनी कन्या या पुत्र का विवाह-सम्बन्ध भी स्थापित करके उससे मेल करता था। अश्वमेध के अश्व के साथ उसकी रक्षा के लिये सैनिक भी जाते थे। जो अश्व को पकड़ता था, ऐसा माना जाता था कि वह राजा की प्रभुसत्ता को चुनौती देता है। ऐसी स्थिति में उसके साथ युद्ध होता था। अश्वमेध प्रारम्भ करते समय कुछ ऐसे कर्म सम्पादित किये जाते थे, ऐसी आहुतियाँ दी जाती थीं जिनका उद्देश्य यही होता था कि अश्वमेध का अश्व सुरक्षित वापस आ जाय। किसी के साथ युद्ध न करना पड़े या सभी उस राजा की सार्वभौम प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लें।

2.5 अग्निचयनगत राष्ट्रभृत् संज्ञक इष्टकाओं के चयन में राष्ट्रियता की भावना—

अग्निचयन याज्ञिक कर्मकाण्ड का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्य है। सोमयाग के लिये इष्टकाओं से वेदि का निर्माण अग्निचयन कहलाता है। वेदी के चयन में पाँच चित्तियाँ होती हैं। चतुर्थ चित्ति में राष्ट्रभृत् नामक चार इष्टकाओं (ईंटों) को क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर की ओर रखने का विधान है।⁴⁴ 'अग्ने यशस्विन्'⁴⁵ इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करता हुआ सर्वप्रथम पूर्व की ओर एक इष्टका रखता है, तदनन्तर 'भद्रं पश्यन्तः'⁴⁶ यह मन्त्र बोलता हुआ दक्षिण की ओर दूसरी इष्टका रखता है, तदनन्तर 'धाता विधाता'⁴⁷ मन्त्र बोलता हुआ पश्चिम की ओर तीसरी इष्टका रखता है। तदनन्तर 'अभ्यावर्तध्वम्'⁴⁸ यह मन्त्र बोलता हुआ चतुर्थ इष्टका उत्तर की ओर रखता है। तैत्तिरीय संहिता स्पष्ट रूप से कहती है कि यह जो चार राष्ट्रभृत् संज्ञक इष्टकाओं से अग्निचयन किया जाता है वह अग्नि की

⁴³ वाधूल श्रौतसूत्र, ११.१.१-७

⁴⁴ वाधूल श्रौतसूत्र, ८.४०.८१-८६

⁴⁵ तै.सं. ५.७.४.५

⁴⁶ तै.सं. ५.७.४.६

⁴⁷ तै.सं. ५.७.४.७

⁴⁸ तै.सं. ५.७.४.८

राष्ट्रभृत्-चिति है। इस चिति से इसमें राष्ट्र को ही प्रतिष्ठित किया जाता है। इस राष्ट्रभृत्-चयन से राजा में राष्ट्र प्रतिष्ठित रहता है, उससे अलग नहीं होता।

राष्ट्रभृत् एता उप दधात्येषा वा अग्नेश्चिती राष्ट्रभृत्

तथैवास्मिन् राष्ट्रे दधाति, राष्ट्रमेव भवति, नास्माद्राष्ट्रं भ्रंशते।⁴⁹

राष्ट्रभृत्-चिति में प्रयुक्त इन मन्त्रों के भाव को देखने से मालूम होता है कि पहले मन्त्र में यशस्वी अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह यजमान राजा को अपने यश से प्रेरित करे, इन्द्र से सदा युक्त रहने वाली अपचिती को इसके पास लावे, सुन्दर वर्चस् वाला सबका मूर्धन्य यह परमेष्ठी (राजा) समानों में उत्तम कीर्ति वाला होवे। दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि सबके कल्याण को देखते हुये स्वर्गलोक को जानने वाले ऋषियों ने तप और दीक्षा का आचरण किया, उससे क्षत्र, बल और ओजस् उत्पन्न हुआ, उस क्षत्र, बल एवं ओजस् से सम्पन्न राजा के सामने सभी नमन करें। तीसरे मन्त्र में कहा गया है कि धाता, विधाता, प्रजापति, परमेष्ठी, विराज, स्तोम, छन्द, निवित् सभी कहते हैं कि उस राजा के लिये राष्ट्र को लक्ष्यकर हम नमस्कार करें। चौथे मन्त्र में कहा गया है कि हे विशो! तुम सब एक साथ इस राजा की ओर लौटो, यह शासन करने वाला राजा आप सबका अधिपति होवे, इसके आदेश का पालन करो, इसके पीछे आप सब जीवित रहो।

अग्निचयन में ही एक राष्ट्रभृत् होम का विधान है। इस राष्ट्रभृत् होम में १२ आहुतियाँ गन्धर्वों एवं अप्सराओं को दी जाती हैं। ६ आहुतियाँ गन्धर्वों के लिए तथा ६ आहुतियाँ अप्सराओं के लिये। गन्धर्वों को जो आहुतियाँ दी जाती हैं वे वषट्कार के साथ होती हैं तथा अप्सराओं के लिये जो आहुतियाँ दी जाती हैं वे स्वाहाकार के साथ होती हैं। दूसरी बात यह है कि गन्धर्वों को जो आहुतियाँ दी जाती हैं उनमें गन्धर्वों को एकपुरुष मानकर तथा अप्सराओं को जो आहुतियाँ दी जाती हैं उनमें अप्सराओं को बहुल मानकर दी जाती हैं। ये आहुतियाँ मिथुनरूप होती हैं।

ऋताषाद्धृतधामाऽग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।

सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ।।

⁴⁹ तै.सं. ५.७.४.९

संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम । स न..।
सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम स न..।
इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जा नाम । स न
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम । स न..।।
प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम ।
स न.।⁵⁰

मन्त्र भी मिथुनरूप में हैं। इनको आहुति प्रदान करते समय अलग-अलग कर दिया जाता है। मन्त्र के पूर्व भाग में गन्धर्वों को और उत्तर भाग में अप्सराओं को आहुतियाँ दी जाती हैं। उदाहरण के लिये प्रथम कण्डिका में गन्धर्वों को आहुति देते समय मन्त्र का पूर्वभाग अर्थात् 'ऋताषाडृतधामाग्निगन्धर्वः स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्' बोला जाता है, तथा दूसरी आहुति के समय जो अप्सराओं को दी जाती है उस समय मन्त्र का उत्तर भाग अर्थात् 'तस्योषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा' बोला जाता है। इस प्रकार ६ मिथुनमन्त्रों से ६ मिथुन आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। कुल १२ आहुतियाँ हो जाती हैं।

इन आहुतियों की राष्ट्रभृत् संज्ञा है। इन्हें राष्ट्रभृत् क्यों कहा जाता है और इनको इस रूप में देने के पीछे क्या भावना है, शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय संहिता इसके विषय में विस्तार से उल्लेख करते हैं। शतपथ ब्राह्मण का स्पष्टरूप से कथन है कि राजा ही राष्ट्रभृत् होते हैं, क्योंकि वे ही राष्ट्रों का भरण-पोषण करते हैं। ये सभी राजा एकमत होकर जिस का अनुमोदन करते हैं, वही एकराट् चक्रवर्ती राजा बनता है। वह व्यक्ति कभी भी एकराट् चक्रवर्ती नहीं बन सकता जिसका अनुमोदन राष्ट्रों का भरण-पोषण करने वाले अन्य राजा नहीं करते।

अथातो राष्ट्रभृतो जुहोति। राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि बिभ्रति... यस्मै वै राजानो राज्यमनुमन्यन्ते स राजा भवति न स यस्मै न तद्राजानो राष्ट्राणि बिभ्रति।⁵¹

⁵⁰ मा.यजु. १८.३८-४३

⁵¹ श.ब्रा. ९.४.१.१

शतपथ ब्राह्मण का राष्ट्रभृत् शब्द का यह राष्ट्रपरक व्याख्यान ब्रह्माण्ड-प्रक्रिया के ऊपर आधारित है। ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया में ये सब देवता सवनयाग कर रहे हैं। अपने आप सवनयाग से अपने-अपने क्षेत्र का भरणपोषण कर रहे हैं। जो यजमान राष्ट्रभृत्-संज्ञक इन आहुतियों से इन देवताओं का यजन करता है, वे देवता प्रसन्न होकर उस राजा के द्वारा किये जाने वाले सवन का अनुमोदन करते हैं। वे सब देवता अलग-अलग क्षेत्र के राजास्वरूप हैं, इसलिए उनको प्रसन्न करने के लिये यह राष्ट्रभृत् कहलाता है।

एता ह देवताः सुता एतेन सवेन येनैतत्सोष्यमाणो भवति ता एवैतत् प्रीणाति,
ता अस्मा इष्टाः प्रीता एतं सवमनुमन्यन्ते ताभिरनुमतः स्तूयते। राजान उ एते
देवास्तस्मादेते राष्ट्रभृतः।⁵²

ये राष्ट्रभृत् आहुतियाँ मिथुनरूप में होती हैं और इसके पीछे क्या राष्ट्रीय भावना है, इस विषय में शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि मिथुन का सम्बन्ध राष्ट्र की प्रजाति से है। मिथुन से ही प्रजाति होती है, जो प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न होता है वही राष्ट्र होता है, जो प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न नहीं होता, वह अराष्ट्र होता है। प्रजा के बिना राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रजा ही राष्ट्र है और प्रजा का अभाव अराष्ट्र प्रजा मिथुनभाव से ही होती है इसलिये मिथुन भाव ही राष्ट्र को धारण करता है।⁵³ गन्धर्वों तथा अप्सराओं को जो आहुतियाँ दी जाती हैं उसका अभिप्राय यह है कि गन्धर्व राज्यों के राजा हैं और अप्सरायें उनकी प्रजा। राजाओं तथा उनकी प्रजाओं को प्रसन्न करके ही उनसे अपने चक्रवर्ती एकराट् होने की सहमति मांगता है। राजा द्वारा सम्मानित होने पर ही वे अन्य राजा अपनी प्रजा के साथ उसका एकराट् के रूप में अनुमोदन करते हैं। गन्धर्वों को जो आहुतियाँ ६ बार दी जाती हैं, वह एकवचन में होती हैं तथा अप्सराओं को जो आहुतियाँ दी जाती हैं वह बहुवचन में होती हैं। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि यही कारण है कि एक पुरुष की अनेक पत्नियां होती हैं।⁵⁴ यहाँ एक पुरुष की अनेक पत्नियों से अभिप्राय एक राजा

⁵² श.ब्रा. ९.४.१.१

⁵³ श.ब्रा. ९.४.१.५

⁵⁴ श.ब्रा. ५.४.१.६

को अनेक प्रजा से है। राजा एक होता है, प्रजा अनेक होती है। सामाजिक व्यवस्था में एक पुरुष की अनेक पत्नियां होती थीं, वह इसी की अनुकृति पर थी।

तैत्तिरीय संहिता जय, अभ्यातान तथा राष्ट्रभृत् संज्ञक तीन होमों को इसी क्रम में सम्पादित करने का विधान करती है। जय नामक होम के विषय में कहा गया है कि सर्वप्रथम प्रजापति ने शक्तिशाली इन्द्र के लिये इस होम को प्रदान किया। इससे इन्द्र अधिक शक्तिशाली हुआ और सभी असुरों को उसने जीत लिया। जो व्यक्ति इस होम को करता है वह राष्ट्र के शत्रुओं को जीतता है। अभ्यातानहोम के पीछे भी राष्ट्रीय भावना कार्य कर रही है। अभ्यातान होम के मन्त्रों में अधिपति होने की भावना है। जो-जो ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया के अधिपति हैं, उन सबसे यही प्रार्थना की गई है कि वे यजमान राजा को अपने राष्ट्र का अधिपति बनावें। हर क्षेत्र में आधिपत्य प्राप्त करने की भावना से इस होम का विधान है। अभ्यातान होम के विषय में कहा गया है कि इसके द्वारा ही देवता ऋद्धि को प्राप्त हुये। राजा के लिये जो अभ्यातान होम किया जाता है⁵⁵ वह उस राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिये ही किया जाता है। चूँकि सभी देवताओं ने इसे प्रजापति के पास लाया, इसलिये इसे अभ्यातान कहा जाता है। अभ्यातान, जय और राष्ट्रभूत होम के राष्ट्रीय महत्त्व का उल्लेख करते हुये तैत्तिरीय संहिता में यह कहा गया है कि अभ्यातान से देवों ने असुरों के राज्य को चारों तरफ से घेर लिया, जय से उसको जीता तथा राष्ट्रभृत् से उस राष्ट्र को ग्रहण किया।

ते देवा अभ्यातानैरसुरानभ्यातन्वत जयैरजयन् राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमाऽददत।⁵⁶ इस कर्मकाण्डीय विधान से स्पष्ट है कि याज्ञिक विधानकर्ताओं के मन में इन विधियों के पीछे राष्ट्रिय भावना कार्य कर रही थी। विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिये भी राष्ट्रभृत् होम का विधान है। उन कामनाओं को देखने से पता चलता है कि सबके मूल में राष्ट्रिय भावना ही निहित है।⁵⁷

⁵⁵ तै.सं. ३.४.५.३

⁵⁶ तै.सं. ४.४.६.३

⁵⁷ द्र. पीछे पृ. ७, टि. २-३; तैत्तिरीय कर्मकाण्डीय विधियों में राष्ट्रीय भावना के लिये द्रष्टव्य, पीछे पृ. ५-९

2.6 वैदिक सामगान में राष्ट्रियता की भावना—

वैदिक यागों में सामगान का विशेष महत्त्व है। शतपथ ब्राह्मण स्पष्टरूप से घोषणा करता है कि साम के बिना यज्ञ हो ही नहीं सकता। यज्ञ में जहां प्रत्यक्ष रूप से साम का गान नहीं किया जाता, केवल मन्त्र का उच्चारण होता है वहाँ भी हिंकार किया जाता है। यह हिंकार साम का रूप है।⁵⁸ यज्ञ में साम के प्रयोग के पीछे क्या राष्ट्रीय भावना है वह तैत्तिरीय संहिता के उस कथन से स्पष्ट होती है जिसमें कहा गया है कि यज्ञ में साम के द्वारा जो कर्म सम्पादित किया जाता है उसका सम्पूर्ण फल सम्पूर्ण राष्ट्र को प्राप्त होता है तथा जो ऋक् के द्वारा किया जाता है उसका फल प्रजा को प्राप्त होता है। **यद्वै यज्ञस्य साम्ना क्रियते राष्ट्रं यज्ञस्याशीर्गच्छति, यदृचा विशं यज्ञस्याशीर्गच्छति।**⁵⁹ यहाँ ऋक् का फल प्रजा को तथा साम का फल राष्ट्र को मिलता है। इस कथन से प्रजा और राष्ट्र के परस्पर सम्बन्ध का ही द्योतन होता है। जिस प्रकार साम ऋक् पर आधारित है— **ऋच्यध्यूढः साम गीयते।**⁶⁰ उसी प्रकार राष्ट्र जनता पर आधारित होता है। दोनों की समृद्धि तथा दोनों का परस्पर सामंजस्य ही इस विधान का लक्ष्य है। कर्मकाण्डगत विधियों में इस प्रकार के अनेक विधान हैं, जिनमें राष्ट्र और प्रजा के स्वस्थ सम्बन्ध की ही भावना निहित है।

सोमयागों में विभिन्न अवसरों पर विशिष्ट प्रकार के सामों तथा स्तोमों का प्रयोग विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिये किया जाता है। इन स्तोमों में कई ऐसे स्तोम हैं तथा उनकी विशिष्ट प्रकार की विष्टुतियां हैं जो राष्ट्रिय उद्देश्य को सम्मुख रखकर ही विहित हैं। यहाँ विभिन्न स्तोमों की कतिपय विष्टुतियों का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। त्रिवृत्स्तोम की एक 'उद्यती' संज्ञक विष्टुति होती है। त्रिवृत् स्तोम में नौ स्तोत्रिया ऋक् होती हैं, जो तृचगत प्रत्येक ऋक् की तीन-तीन बार आवृत्ति करने से प्राप्त होती है। उद्यती विष्टुति के तीन पर्यायों में प्रथम पर्याय में, प्रथम ऋक् का तीन बार, द्वितीय पर्याय में, द्वितीय ऋक् का तीन बार तथा तृतीय

⁵⁸ श.ब्रा. १.४.१.१ अयज्ञो वा एष योऽसामा। तै.सं. १.५.७.१, २.५.८.१

⁵⁹ तै.सं. १.६.१०.९

⁶⁰ छा.उप. १.६.१

पर्याय में, तृतीय ऋक् का तीन बार गान किया जाता है।⁶¹ इस विष्टुति के गान का फल यह होता है कि राष्ट्र की जनता परस्पर एक दूसरे से युद्ध नहीं करती और न ही कोई किसी की सम्पत्ति हड़पता है। सभी अपने-अपने क्षेत्र में रहकर कार्य करते हैं।

न जनता जनतामभ्येति नान्योऽन्यस्य प्रजा आददते, यथाक्षेत्रं कल्पन्ते।⁶²

सप्तदश स्तोम की एक 'गर्भिणी' नामक विष्टुति होती है। **गर्भिणी विष्टुतिः प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायते य एतया स्तुते।**⁶³ इसके तीन पर्यायों में प्रथम पर्याय में, प्रथम ऋक् का पाँच बार गान किया जाता है। द्वितीय पर्याय में, द्वितीय ऋक् का सात बार तथा तृतीय पर्याय में, तृतीय ऋक् का पाँच बार गान किया जाता है। **विड् वै सप्तदशस्तस्या राजा गर्भो विश एव तद्राजानं गर्भं करोति।**⁶⁴ द्वितीय पर्याय में, मध्यम ऋक् का सात बार तथा प्रथम एवं द्वितीय ऋचाओं का पांच-पांच करने से द्वितीय पर्यायगत मध्यम ऋक् का सात बार गान होना, उसकी श्रेष्ठता का द्योतक है। ताण्ड्यब्राह्मण प्रथम तथा तृतीय पर्यायगत प्रथम तथा अन्तिम ऋक् की प्रजा के रूप में तथा द्वितीय पर्याय में, मध्यम ऋक् की भावना राजा के रूप में करता है और स्पष्ट रूप से कथन करता है कि जो सप्तदशस्तोम है, वह विट् रूप है, इसके दोनों तरफ प्रजा है तथा मध्य में राजा है। इस विष्टुति में सप्तदश स्तोम का गान करने से राष्ट्राध्यक्ष सदा अपनी प्रजा के मध्य सुरक्षित रहता है। जैसे— गर्भस्थ शिशु सुरक्षित रहता है। **एष एव व्यूहः सप्तैकमध्या।**⁶⁵

सप्तदशस्तोम की ही एक विष्टुति दशसप्ता है, जिसमें प्रथम पर्याय में प्रथम ऋक् का तीन बार, द्वितीय एवं तृतीय का एक-एक बार गान किया जाता है। द्वितीय पर्याय में, प्रथम ऋक् का एक बार, द्वितीय का तीन बार तथा तृतीय का एक

⁶¹ तां. ब्रा. २.१.१

⁶² ता. ब्रा. २.१.४

⁶³ तां. ब्रा. २.७.४

⁶⁴ ता. ब्रा. २.७.५

⁶⁵ ता. बा. २.८.१, द्र. तां. ब्रा. २.७.१

वार गान किया जाता है। तृतीय पर्याय में, प्रथम और द्वितीय ऋचाओं का एक-एक वार तथा तृतीय का तीन वार गान किया जाता है।

ब्रह्मणो वा आयतनं प्रथमा, क्षत्रस्य मध्यमा, विश उत्तमाः। यत् प्रथमा भूयिष्ठा
भाजय ब्रह्मण्येव तदोजो वीर्यं दधाति, ब्रह्मण एव तत् क्षत्रं च विशं चानुगे
करोति।⁶⁶

सप्तदशस्तोम की इस दशसप्ता विष्टुति की संरचना में राष्ट्रिय सामंजस्य की भावना निहित है। प्रथम ऋक् ब्राह्मण रूपा है, द्वितीय ऋक् क्षत्रियरूपा तथा तृतीय विट् रूपा है। वही राष्ट्र शक्तिशाली हो सकता है, जिसमें सर्वप्रथम स्थान ब्राह्मण को प्राप्त हो, इसलिये प्रथम पर्याय में उसकी तीन वार आवृत्ति होती है, बाद में एक-एक वार द्वितीय और तृतीय की। ऐसा करने से ब्राह्मण में ही ओज और वीर्य धारण करता है तथा क्षत्रिय एवं विट् को उनका अनुगामी बनाता है। जिस राष्ट्र में क्षेत्र और विट् ब्रह्म के अधीन होकर काम करते हैं, वह राष्ट्र निश्चित ही उन्नति को प्राप्त होता है। वह कभी नष्ट नहीं होता। यही भाव सप्तदश स्तोम की दशसप्ता विष्टुति के गान के पीछे निहित है।

सप्तदशस्तोम की ही एक विष्टुति सप्तास्थिता होती है जिसमें प्रथम पर्याय में प्रथम ऋक् का तीन वार, द्वितीय ऋक् का एक वार तथा तृतीय ऋक् का तीन वार गान किया जाता है, द्वितीय पर्याय में, तीनों ऋचाओं का पराचीक्रम से एक वार, तथा तृतीय पर्याय में पहले पर्याय की तरह प्रथम ऋक् का तीन वार, द्वितीय का एक वार तथा तृतीय का तीन वार गान किया जाता है। एष एव व्यूह उभयः सप्तैकमध्या निर्मध्या।⁶⁷ इस विष्टुति के पीछे सामगों का राष्ट्रीय दृष्टिकोण यह था कि उद्गाता द्वारा इसका गान उस राजा के लिये किया जाता था, जो परिजनों से घेर लिया गया हो। ऐसा करके वह राजा को अपराधकारियों से अलग करके प्रतिष्ठित करता है।⁶⁸

एकविंश स्तोम की एक प्रतिष्टुति संज्ञक विष्टुति होती है, जिसमें प्रथम पर्याय में, तृचगत तीनों ऋचायें पराचीक्रम से तीन-तीन वार गाई जाती हैं। द्वितीय पर्याय

⁶⁶ तां. ब्रा. २.८.२

⁶⁷ तां. ब्रा. २.१०.१

⁶⁸ तां. ब्रा. २.१०.४; द्र. तां. ब्रा. २.१०.४ पर सायण-भाष्य

में, प्रथम ऋक् एक वार, द्वितीय तीन वार तथा अन्तिम पुनः एक वार गाई जाती हैं। तृतीय पर्याय में, प्रथम ऋक् तीन वार, द्वितीय एक वार तथा तृतीय तीन वार गाई जाती हैं।⁶⁹ इस विष्टुति का विधान पुरोधा की कामना से किया जाता है। प्रथम पर्याय में, जो नव ऋचाओं का गान है, वह ब्रह्म है, और कुल मिलाकर जो एकविंशस्तोम है, वह क्षत्र है। पहले त्रिवृत् स्तोम के गान से मानो राष्ट्र में ब्रह्म को क्षत्र से पूर्व प्रतिष्ठित करता है।⁷⁰ ऐसा तत्कालीन राजनीतिशास्त्रज्ञों विश्वास था कि ब्रह्म के क्षत्र से पूर्व स्थित होने पर ही राष्ट्र का अभ्युदय हो सकता है। समाज में सर्वप्रथम स्थिति के कारण ही वह 'पुरोहित' या 'पुरोधा' था। ऋग्वेद के एक सूक्त में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया गया है कि वही राष्ट्र उन्नति कर सकता है जिसमें ब्राह्मण को प्रथम स्थान प्राप्त है।⁷¹

चतुश्चत्वारिंश स्तोम की प्रथम प्रकार की विष्टुति में प्रथम पर्याय में पन्द्रह वार, द्वितीय पर्याय में चौदह वार तथा तृतीय पर्याय में पन्द्रह वार गान होता है। प्रथम पर्याय में, प्रथम ऋक् का तीन वार, द्वितीय का ग्यारह वार तथा तृतीय का एक वार द्वितीय पर्याय में, प्रथम का एक वार, द्वितीय का तीन वार तथा तृतीय का दस वार तृतीय पर्याय में, प्रथम का ग्यारह वार, द्वितीय का एक वार तथा तृतीय का तीन वार गान किया जाता है। इस प्रकार प्रथम और द्वितीय ऋक् का पन्द्रह-पन्द्रह वार तथा तृतीय का चौदह वार गान होता है।⁷² इस विष्टुति की संरचना में भी वही राष्ट्रिय भावना काम कर रही है। प्रथम ऋक् ब्रह्म का आधार है, द्वितीय क्षत्र का तथा तृतीय विश् का। प्रथम तथा द्वितीय ऋचाओं की पन्द्रह-पन्द्रह वार तथा तृतीय की चौदह वार आवृत्ति द्वारा यह भाव व्यक्त किया गया है कि ब्रह्म तथा क्षत्र दोनों में ओज तथा वीर्य अधिक होना चाहिये ताकि विश दोनों का अनुगामी बना रहे।⁷³ जिस राष्ट्र की जनता ब्रह्म तथा क्षत्र दोनों की अनुगामी होती है वह राष्ट्र कभी पतन की ओर नहीं जाता।

⁶⁹ द्र. तां. ब्रा. २.१६.१

⁷⁰ तां. ब्रा. २.१६.४

⁷¹ तु. ऋ. ४.५०.७-९

⁷² द्र. तां. ब्रा. ३.९.१

⁷³ तां. ब्रा. ३.९.२

अग्निष्टोम में उद्गातृवर्ग द्वारा सोमाभिषव के साधनभूत पत्थरों को रखकर उनके ऊपर द्रोणकलश के रखने का विधान है। इस याज्ञिक कर्मकाण्ड के पीछे क्या राष्ट्रीय भावना है, इस विषय में ताण्ड्यब्राह्मण का कथन है कि जो अभिषव-पाषाण हैं, वे विश् हैं, सोम अन्न है तथा जो द्रोणकलश है, वह राष्ट्र है। विश् रूप पाषाणों के ऊपर सोमरस के आधारभूत राष्ट्ररूप कलश को जो रखता है, उससे मानो प्रजा में ही अन्न से परिपूर्ण राष्ट्र को धारण करता है।⁷⁴ पाषाणों के ऊपर द्रोणकलश के रखने से प्रजा समृद्ध राष्ट्र को धारण करती है या नहीं, किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि इस कर्मकाण्ड के पीछे यज्ञविज्ञानवेत्ताओं की यह भावना अवश्य कार्य कर रही है कि उनका राष्ट्र अन्न से समृद्ध हो, वहाँ की जनता अन्न से समृद्ध राष्ट्र को धारण करने वाली हो। जब राष्ट्र अन्न से समृद्ध नहीं होगा वहाँ की प्रजा सुखी नहीं रह सकती। सायण ने इस बात का उल्लेख किया है कि कुछ आचार्य यहाँ राष्ट्र का अर्थ राजा करते हैं और दूसरे राज्य, किन्तु यहाँ राष्ट्र अर्थ ही अधिक समीचीन है।⁷⁵

ताण्ड्यब्राह्मण एक अभिचार कर्म का विधान करता है। यदि उद्गाता यह चाहे कि प्रजा द्वारा राजा नष्ट कर दिया जाय तो इसके लिये अभिषवण पत्थरों को अलग-अलग रखकर द्रोणकलश को नीचे जमीन पर रख दे और उपांशुसवन नामक पत्थर को, जिस पर उपांशुग्रह का अभिषव किया जाता है, द्रोणकलश के ऊपर रखकर और विश् तथा राजा का नाम लेता हुआ यह कहे कि इस समय में अमुक प्रजा द्वारा तथा अमुक परिजनों के द्वारा इस राष्ट्र को तथा इस राजा को नष्ट करता हूँ।⁷⁶ इस अभिचार कर्म के पीछे भी राष्ट्रीय भावना निहित है। ब्राह्मण अपने राष्ट्र का पतन नहीं देख सकता। कभी-कभी राजा उद्दण्ड होकर राष्ट्र को पतन की ओर ले जाने लगते हैं, प्रजा का शोषण करने लगते हैं। उस समय राष्ट्र की रक्षा की जिम्मेवारी ब्राह्मणवर्ग की होती है। ब्राह्मण शस्त्र तो उठा नहीं सकता, किन्तु मन्त्ररूप शस्त्र से वह दुष्ट राजा को नष्ट कर सकता है। जब कोई राजा पापाचार करने लग जाता है, उस समय उसको नष्ट करने के लिये तथा राष्ट्र की रक्षा के

⁷⁴ ता. ब्रा. ६.६.१

⁷⁵ तां. ब्रा. ६.६.१ पर सायण-भाष्य

⁷⁶ तां. ब्रा. ६.६.५

लिये इस प्रकार का अभिचार ब्राह्मण करते थे। यदि शत्रु—राजा राष्ट्र को नष्ट करना चाहे या आक्रमण करे, तब भी इस प्रकार का अभिचार शत्रु—राजा के विरुद्ध किया जा सकता था। अग्निष्टोम में उल्लिखित अभिचार इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। इस बात के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं कि उस समय ऋत्विज शत्रु—राजा के यहाँ भी जाकर यज्ञ कराते थे और दुराचारी राजा के विरुद्ध इसी प्रकार के अभिचार करते थे। वृत्रासुर द्वारा इन्द्रवधार्थ किये जाने वाले यज्ञ में ब्राह्मणों ने 'इन्द्रशत्रुवर्धस्व' मन्त्र में 'इन्द्रशत्रु' की इन्द्रशत्रु पद में स्वरभेद करके यजमान वृत्रासुर को ही नष्ट कर दिया, यह आख्यान इसी बात का समर्थन करता है।

अग्निष्टोम में ही शत्रु—राष्ट्र की सम्पत्ति को अपने राष्ट्र में करने के उद्देश्य से भी याज्ञिक कर्मकाण्ड का विधान मिलता है। ताण्ड्यब्राह्मण प्रतिपद् ऋक् के रूप में 'तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् जन्यास उप नो गृहम्' (साम. १४३६) इस सामयोनि ऋक् पर गान करने का विधान करता है। इस विधान के पीछे यह भावना है कि शत्रु से सम्बन्धित गायें मेरे राष्ट्र में आवें। मन्त्र में गायों के अपने गृह में आने का उल्लेख है, किन्तु यहाँ गृहम् पद राष्ट्र के अर्थ में लिया गया है।

'तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् जन्यास उप नो गृहम् इति प्रतिपदं कुर्याद्यः कामयेतोप मा जन्या गावो नमेयुर्विन्देत मे जन्या गा राष्ट्रमिति यदेषा प्रतिपद् भवत्युपैनंजन्या गावो नमन्ति विन्दतेऽस्य जन्या गा राष्ट्रम्।'⁷⁷

राजसूय में अभिषेचनीय, दशपेय तथा केशवपनीय कर्मों में विशिष्ट प्रकार के स्तोमों के गान का विधान है। इन विधानों में राष्ट्रिय हित की भावना परिलक्षित होती है। अभिषेचनीया में त्रिवृत्स्तोम का निधेष किया गया है। त्रिवृत्स्तोम ब्राह्मण का प्रतीक है, क्योंकि ब्राह्मण की तरह वह भी प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुआ है। राजसूय में यदि त्रिवृत्स्तोम का गान किया जाता है तो उसका अर्थ होगा क्षत्रियोत्कर्ष के लिये ब्रह्मशक्ति को आच्छादित करें। राजसूय में क्षेत्र की प्रधानता होती है। इस क्षत्रप्रधानभूत राजसूय में उसके अंगरूप ब्राह्मणरूप त्रिवृत्स्तोम का गान करे तो क्षत्र द्वारा ब्रह्म को आच्छादित करना हो जाय। ऐसी स्थिति में जब

⁷⁷ तां.ब्रा. ६.१०.१९

ब्रह्मशक्ति, क्षात्रशक्ति से आच्छादित हो जायेगी, राष्ट्र के लिये खतरा उत्पन्न हो सकता है। ऐसा न होने पावे इसलिये राजसूय के अभिषेचनीय कर्म में त्रिवृत् स्तोम का गान नहीं किया जाता। त्रिवृत्स्तोम का हटाना क्षत्रिय द्वारा ब्रह्मशक्ति के प्रति होने वाली भावी अवज्ञा को हटाना है। क्षेत्र द्वारा आच्छादित होने पर ब्रह्म क्षेत्र का प्रतिदण्ड हो जाता है। यदि राजा धनादि अपहरण करके ब्राह्मण को दण्डित करता है, तब ब्राह्मण राजा के प्रति निन्दा अथवा शाप के द्वारा प्रतिकूल दण्ड देने वाला होता है।⁷⁸

राजसूय में अभिषेचनीय, दशपेय तथा केशवपनीय कर्म में क्रमशः एकविंश स्तोम, सप्तदश स्तोम तथा एकविंश स्तोम का गान उद्गातृवर्ण के द्वारा करने का विधान है। इस विधि के पीछे भी वही राष्ट्रिय भावना काम कर रही है। एकविंश स्तोम क्षत्र का गान करता है, इससे मानो वह दोनों तरफ से विश की रक्षा करता है।⁷⁹ प्रजा सर्वदा राजा के द्वारा रक्षित होनी चाहिये। राजा के द्वारा प्रजा के चारों तरफ से रक्षित होने पर ही कोई राष्ट्र वृद्धि कर सकता है। यदि राजा प्रजा को चारों तरफ से संरक्षण प्रदान नहीं करेगा तो उसका राष्ट्र नष्ट हो जायेगा। इसलिये राजा का प्रत्येक कर्म प्रजा की सुरक्षा—भावना से ही होना चाहिये। प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्र में तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है।

ताण्ड्यब्राह्मण 'राट्' संज्ञक एक क्रतु का उल्लेख करता है। इस ऋतु का अनुष्ठान उस व्यक्ति के लिये विहित किया गया है जो राज्यप्राप्ति के लिये अभिलाषा रखता है, किन्तु कुछ बाधाओं के कारण उस पद को प्राप्त नहीं कर पाता। इस राट् संज्ञक क्रतु के अनुष्ठान से उस व्यक्ति की अभिलाषा पूर्ण होती है और उसे राज्य की प्राप्ति होती है। यह राट् नामक क्रतु सभी क्रतुओं का राजा है। राजा रूप यह राट्क्रतु उसका सम्पादन करने वाले को राजा बनाता है। अथवा इस क्रतु के द्वारा ऋत्विग्वर्ग उस यजमान को राजा बनाता है और जिसको ऋत्विग्वर्ग राजा बनाता है। उसी को सभी लोग राजा कहने लगते हैं। दूसरा भले वहाँ का राजा हो, किन्तु

⁷⁸ तां.ब्रा. १८.१०.८

⁷⁹ तां.ब्रा. १८.१०.९

इसको वहाँ का राजा नहीं माना जा सकता।⁸⁰ यह राट्संज्ञक यज्ञ इसलिये शक्तिशाली बताया गया है कि अन्य यज्ञ तो छन्दमात्र को प्राप्त करते हैं, किन्तु यह स्तोमरूप छन्दसंघ को प्राप्त करता है। एक की अपेक्षा संघ की शक्ति बड़ी होती है। यहाँ पर राट् यज्ञ के द्वारा संघीय राष्ट्र की ओर संकेत मिलता है। संघ जिसको राजा बनाना चाहता है। वही राजा बन सकता है।

छन्दोऽन्ये यज्ञाः सम्पद्यन्ते स्तोममेष, वीर्यं वै स्तोमो वीर्यं एवाध्यभिषिच्यते।⁸¹

इस राट्संज्ञक यज्ञ में कुल स्तोत्रीया ऋचाओं की दृष्टि से आठ एकविंश स्तोम बनते हैं। इसमें अलग-अलग स्तोम इस प्रकार हैं—सप्तदश स्तोम वाले तीन पवमान स्तोत्र में ५१ स्तोत्रीया ऋचायें होती हैं, त्रिवृत् स्तोमयुक्त चार आज्यस्तोत्रों में ३६ स्तोत्रियां ऋचायें होती हैं, पंचदशस्तोम वाले चार पृष्ठस्तोत्रों में ६० स्तोत्रियां ऋचायें होती हैं। इस प्रकार पवमान, आज्य तथा पृष्ठ स्तोत्रों में कुल १४७ (५१. ३६. ६०) ऋचायें होती हैं। इनको २१ से भाग देने पर ७ एकविंशस्तोम की प्राप्ति होती है। अन्तिम स्तोत्र में एक एकविंश स्तोत्र होता है। इस प्रकार कुल आठ एकविंश स्तोमों की प्राप्ति होती है।⁸² यहाँ पवमान, आज्य तथा पृष्ठ स्तोत्रों के तीन सप्तदश स्तोमों, चार त्रिवृत् स्तोमों तथा चार पञ्चदश स्तोमों को मिलाकर अन्तिम स्तोम के एक एकविंश स्तोम को जोड़कर कुल आठ एकविंश स्तोम का उल्लेख करने के पीछे राष्ट्रिय भावना ही कार्य करती दिखाई पड़ रही है।

ताण्ड्य ब्राह्मण स्पष्ट रूप से कहता है कि इस राट् संज्ञक क्रतु में जो आठ एकविंश स्तोम होते हैं वे राष्ट्र को धारण करने वाले आठ वीर माने गये हैं। वे वीर हैं—राजा का भाई, राजा का पुत्र, पुरोहित, महिषी, सूत, ग्रामणी, क्षत्ता तथा संग्रहीता। ये ही आठ वीर राष्ट्र की रक्षा करते हैं।⁸³

ताण्ड्यब्राह्मण राजा के लिये एक ऋषभ क्रतु के सम्पादन का विधान करता है। इस क्रतु के सम्पादन के पीछे भी राष्ट्रिय उद्देश्य निहित है। जैसे— ऋषभ वत्सोत्पादन में समर्थ होने के कारण पशुओं में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार राजा

⁸⁰ तां.ब्रा. १९.१.२

⁸¹ तां.ब्रा. १९.१.३

⁸² द्र.तां. ब्रा. १९.१.४ पर सायण-भाष्य

⁸³ तां.ब्रा. १९.१.४

सबकी कामनाओं की पूर्ति करने वाला होने के कारण मनुष्यों का अधिपति होता है।⁸⁴ उस ऋषभ की अवधारणा संज्ञक क्रतु में 'पुनानः सोम धारया' (साम. ५११) इस सामयोनि ऋक् पर माध्यन्दिन पवमान में 'सदोविशीय' साम (ग्राम. ५११.११) का गान करता है। ऋषभक्रतु में सदोविशीय साम के गान का उद्देश्य यही है कि जिस प्रकार माध्यन्दिन सवन प्रातरुसवन तथा तृतीयसवनरूप पार्श्व वाला है, उसी प्रकार विश्व सदा राजा के पार्श्व में रहे, उससे कभी अलग न होने पावे। जनता जिस राजा की पार्श्ववर्तिनी होती है उसका राष्ट्र कभी नष्ट नहीं हो सकता।⁸⁵ इस ऋषभक्रतु में 'दुहान ऊध' (साम. ६७६य दशरात्र १.१.३) इस ऋक् पर 'समन्त' नामक साम के गान का विधान है। इसके पीछे यही राष्ट्रिय भावना है कि विश्व को राजा के चारों तरफ स्थित किया जाये।

समन्तं भवति समन्तामेवासमै विशं करोत्यनपक्रामुकाऽस्माद् विड् भवति।⁸⁶

ताण्ड्य ब्राह्मण 'इन्द्राग्निस्तोम' नामक एक क्रतु के सम्पादन का विधान करता है। इस क्रतु में त्रिवृत् तथा पंचदश दो ही स्तोम होते हैं। त्रिवृत् ब्रह्म-स्वरूप है तथा पंचदश क्षत्ररूप है। इस क्रतु का सम्पादन राजा और पुरोहित दोनों मिलकर करते हैं। इसका प्रयोजन वही ब्रह्म तथा क्षत्र शक्ति में सामंजस्य स्थापित करना है। ब्रह्म और क्षत्रशक्ति के सामंजस्य से ही राष्ट्र सुरक्षित रह सकता है। अग्नि ब्रह्मशक्ति का तथा इन्द्र क्षत्रशक्ति का स्वरूप है, अन्य देवता इन्हीं की प्रजा स्वरूप हैं।⁸⁷ इन्द्राग्निस्तोम नामक क्रतु में ६ त्रिवृत्स्तोम वाले स्तोम होते हैं, तथा ६ पंचदशस्तोम वाले स्तोम होते हैं। ६ त्रिवृत्स्तोम में ५४ स्तोत्रीया ऋक् होती हैं तथा ६ पंचदशस्तोम में ६० ऋक् होती हैं। इस प्रकार कुल १४४ ऋक्स्तोत्रीया ऋक् होती हैं। इन १४४ स्तोत्रियों की ६ गायत्री तथा तीन जगती होती हैं।⁸⁸ छः त्रिवृत्स्तोमों तथा छः पंचदशस्तोमों की कुल १४४ स्तोत्रियों से छः गायत्री तथा तीन जगती का सम्पादन ब्रह्म तथा क्षत्रशक्ति की श्रेष्ठता दिखाता है। ब्राह्मण को गायत्री से तेज

⁸⁴ तां.ब्रा. १९.१२.३

⁸⁵ तां.ब्रा. १९.१२.५

⁸⁶ तां.ब्रा. १९.१२.६

⁸⁷ तां.ब्रा. १९.१७.१-४

⁸⁸ द्र. तां. ब्रा. १९.१७.५ पर सायणभाष्य

और ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति होती है तथा क्षत्रिय को जगती से प्रजा में प्रवेशरूप फल की प्राप्ति होती है।

गायत्रीं च जगत च संपद्यते। तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्या ब्राह्मणोऽवरुन्धे, विशं राजा जगत्या प्रविशति।⁸⁹

ताण्ड्यब्राह्मण गर्गत्रिरात्र के अन्तर्गत विश्वामित्र-संजय चतूरात्र संज्ञक एक कर्म का उल्लेख करता है। इसमें त्रिवृदग्निष्टोम, पंचदश उक्थ, सप्तदश उक्थ तथा एकविंशोऽतिरात्र कर्म होता है। इस कर्म के मूल में शत्रुओं को नष्ट कर अपने राष्ट्र की प्राप्ति ही प्रयोजन है। यहाँ इस बात का उल्लेख किया गया है कि जह के ऋचीवन्त नाम के कई पुत्र राज्य करते थे। वे राष्ट्र के लिये परस्पर लड़ रहे थे। उनमें से जहनु-पुत्र विश्वामित्र ने इस चतूरात्र का अनुष्ठान किया और इससे सम्पूर्ण राष्ट्र विश्वामित्र को ही प्राप्त हुआ। जहां पर संघर्ष होता है, वहां राष्ट्र स्थिर नहीं हो पाता। ऋचीवन्त परस्पर संघर्षरत थे, इसलिये वे अपने राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सके। उनका राष्ट्र राष्ट्र न होकर अराष्ट्र बना हुआ था। विश्वामित्र ने इस चतूरात्र कर्म से राष्ट्र को सुव्यवस्थित किया और राष्ट्र की स्थापना की।⁹⁰

याज्ञिक कर्मकाण्ड में विहित अनेक आहुतियों, स्तोमों आदि के सम्पादन में वैदिक यज्ञवेत्ताओं की राष्ट्रविषयक चिन्तनधारा के अवलोकन से यह बात स्पष्ट होती है कि इन विधियों के सम्पादन में कोई संकुचित स्वार्थ की भावना नहीं, बल्कि एक अखण्ड राष्ट्र की प्रतिष्ठा को कायम रखना उनका अभीष्ट है। ब्रह्म, क्षत्र और विश्व तीनों के सामंजस्य से ही राष्ट्र प्रतिष्ठित होता है। यही वैदिक ऋषियों का सर्वमान्य सिद्धान्त है। इसलिये विविध कर्मकाण्डगत विधियों के विधान में उनकी यही दृष्टि सदा जागरूक रही है।

⁸⁹ तां. ब्रा. १९.१७.५-६

⁹⁰ तां. ब्रा. २१.१२.१-३

तृतीय अध्याय

वैदिक राष्ट्र का स्वरूप

वेद सभी प्रकार के ज्ञान से ओतप्रोत हैं। मानव समाज की उन्नति लिये जितने ज्ञान की आवश्यकता है उसका सर्वांगीण रूप वेद मंत्रों के रूप में हमें प्राप्त है। राष्ट्र भी इस का अपवाद नहीं क्योंकि सभ्यता की चरम परिणति एक उन्नत व समृद्ध राष्ट्र में ही संभव है। भौतिक व आध्यात्मिक सुख शांति का आधार सुव्यवस्थित सुशासित राष्ट्र ही हो सकता है अतः वेदों के शब्दशः मंत्रों में राष्ट्र की उन्नति के आधारभूत अंगों पर बहुत ही उत्तमता से प्रकाश डाला गया है। मानव समाज वेदज्ञान के पथ प्रदर्शन को अंगीकार कर के ही सुखी व सम्पन्न राष्ट्र की आधारशिला रखने में समर्थ हो सकता है।

3.1 वेद में राष्ट्र का स्वरूप—

मध्यकालीन युग में वेद मंत्रों को कर्मकाण्ड तक ही सीमित कर दिया गया था फलतः मानव समाज वेद ज्ञान से वंचित होता चला गया किंतु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों को ज्ञान कर्म उपासना तीनों का भण्डार सिद्ध करते हुए मानव समाज को एक नई दिशा प्रदान की। स्वतंत्रता प्राप्ति की अर्द्ध शताब्दी से भी पूर्व अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में राज-प्रजा धर्म विषय लिखकर वेद द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था की ओर चिंतकों का ध्यान आकृष्ट किया। प्रजातंत्र के सच्चे स्वरूप को इंगित करते हुए ऋग्वेद के मंत्र में कहा कि तीन प्रकार की सभा को ही राजा मानना चाहिए एक मनुज्य को कभी नहीं। राज्य प्रबंध के लिये आर्य राज्य सभा (कार्यपालिका और विधायिका), धर्म प्रचार और अधर्म की हानि के लिये आर्यधर्म सभा (न्यायपालिका), सब प्रकार की विद्याओं के प्रचारार्थ आर्य विद्या सभा (यू. जी. सी. व शिक्षा बोर्ड इन तीन सभाओं से युद्ध में सब शत्रु को जीत कर नाना प्रकार के सुखों से विश्व को परिपूर्ण करना चाहिए।

राष्ट्र सुखी कैसे हो सकता है? जिस देश में उत्तम विद्वान् ब्राह्मण, विद्या सभा और राज्यसभा, विद्वान् शूर वीर क्षत्रिय लोग ये सब मिलके राजकार्यों को सिद्ध करते हैं वहीं देश धर्म और शुभ क्रियाओं से संयुक्त होके सुख को प्राप्त होता है। जिस देश में परमेश्वर की आज्ञा का पालन और अग्निहोत्रादि सक्रियाओं से वर्तमान

होते हैं वहीं देश सब उपद्रवों से रहित होकर अखण्ड सुख को नित्य भोगता है। जो श्रेष्ठ प्रजा के पालन में तत्पर, रोगों के तुल्य शत्रु का विनाश करने वाले न्यायकारी राजपुरुष हैं, वे ही सब को सुख प्रदान करने वाले हैं। राजा जब सब ओर से उत्तम विद्वानों से घिरा हुआ, सुशिक्षित सेना का रक्षक और न्याय से प्रजा का पालन करता है¹ तभी बसे सुख प्राप्त होता है। यदि इसके विरुद्ध आचरण करता है तो सुख कहाँ? क्योंकि मूर्ख जिसके सहायक हैं वह सुख से नहीं बढ़ता, अतः राजा को चाहिए कि विद्या, धर्म और आप्त जनों के सहाय से राज्य की रक्षा करे। जिस की सभा में मिथ्यावादी, व्यभिचारी, अजितेन्द्रिय, कठोर वचन बोलने वाले, अन्यायकारी, चोर और डाकू नहीं होते, वही राज्य उन्नत हो सकता है।

सभा समिति आदि का विधान वेदों में स्पष्ट रूप से मिलता है, अंग्रेजी के Com+M+Ittee शब्द का सही उच्चारण समिति ही है। अनेक विद्वान् बुद्धिमान् व बलवान् व्यक्ति मिलकर राज्य का शासन चलाने में समर्थ हो सकते हैं। एक व्यक्ति सर्वगुण सम्पन्न नहीं हो सकता। वेद का प्रजातंत्र आज के भीड़तंत्र या पार्टीतंत्र न होकर सभ्यतंत्र है, जिसे अपनाकर ही राज्य व्यवस्था सुचारु रूप से चल सकता है। ऋषि ने राजा या सभापति को एक ही अर्थ में ग्रहण किया है।

वेद के शब्दशः मंत्रों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग पाया जाता है, किंतु निबंध की सीमाओं को ध्यान में रखकर हमने यजुर्वेद के नवम व दशम अध्याय के कुछ मंत्रों तक ही अपने विचारों को सीमित किया है क्योंकि वेद के मंत्रों में आए हुए राष्ट्र का स्वरूप व्याख्यायित करना बृहत् ग्रंथ की अपेक्षा करता है।

राज् दीप्तौ इस धातु से राष्ट्र शब्द बनता है। महर्षि स्वामी दयानन्द ने राष्ट्र शब्द का अर्थ राज्य के रूप में ही ग्रहण किया है, क्योंकि भौगोलिक सीमाओं में राष्ट्र को बांधना संभव नहीं। भौगोलिक सीमाएं प्राकृतिक या भौतिक संपदा के कारण घटती बढ़ती रहती हैं। राज्य छोटा हो या बड़ा, शासन के मापदण्ड समान ही रहते हैं, अतः इन मंत्रों पर विचार करते समय स्व राज्य अथवा स्व-राष्ट्र के बारे में चिन्तन प्रस्तुत करेंगे। आज सारा विश्व अनेक राष्ट्रों में बंटा हुआ है। राष्ट्र एक व्यापक अर्थ को प्रतिध्वनित करता है, पर आज का राष्ट्रवाद संकुचित व संकीर्ण

¹ यजुर्वेद ९.२६

अर्थ में प्रयुक्त होकर भाषा विज्ञान की दृष्टि से अर्थ संकोच का उदाहरण बन गया है। वेद का राष्ट्रवाद पूरे मानव समाज को अपने में समेटे हुए है और वेद में प्रतिपादित राष्ट्र का स्वरूप सभी राष्ट्रों की कसौटी को निर्धारित करने में सक्षम है। राष्ट्र का अर्थ राज्य शासन करके महर्षि ने अपने दिव्य दृष्टि का ही परिचय दिया है। प्रजा की उन्नति, सहायता, रक्षा व न्याय के लिये राज्य की परिकल्पना की गई है।

राजा कैसा हो—

यजुर्वेद के नवम अध्याय के बहुत से मंत्रों में राजा को इन्द्र नाम से संबोधित कर राजा के कर्तव्य कर्मों की ओर इंगित किया गया है। नवम अध्याय के अंतिम मंत्र का अर्थ इस प्रकार है 'जो, विदुषी माता व विद्वान् पिता से सुशिक्षित, कुलीन, महान् गुण कर्म स्वभाव वाला, जितेन्द्रियता आदि गुणों से युक्त, अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन से विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त, शरीरबल और आत्मबल से परिपूर्ण प्रजापालन में प्रीतिमान् विद्वान् है बसे सभाध्यक्ष राजा बनाकर साम्राज्य का सेवन करना चाहिए।'

राजा शब्द अपने आप में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का द्योतक है। यह शब्द भी आज कल रुढ़ि अर्थ में संकुचित हो गया है। इस मंत्र में राजा का अर्थ सभाध्यक्ष किया गया है। जो राष्ट्र का संचालक व राष्ट्र का प्रमुख नेता हो बसे कुलीन तथा विशिष्ट गुण कर्म स्वभाव वाला होना चाहिए। जो धार्मिक विद्वान् व सच्चरित्र माता पिता की संतान हो बसे कुलीन कहा जाता है। जिस में शारीरिक व आत्मिक बल हो वही राजा होने के योग्य है। उसी की दीप्ति चहुं ओर फैलेगी जो जितेन्द्रिय हो, विलासी न हो। प्रजा से प्रीति पूर्वक व्यवहार करके अपने व्यवहार व गुणों से राज्य में सुख शान्ति की वृद्धि करने में वहीं समर्थ हो सकेगा।

जो व्यक्ति उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला एवं राज्य की रक्षा करने में समर्थ हो बसे सभाध्यक्ष बना कर आप्त नीति से राज्य करना चाहिए।

ईश्वर प्रेमी, बल वीर्य और पुष्टि से युक्त, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, प्रजा पालन में समर्थ विद्वान् को परीक्षा पूर्वक सभा का अधिष्ठाता अभिषिक्त करके राजधर्म की उन्नति करें।

दशम अध्याय के दूसरे मंत्र में राजा के विशिष्ट गुण कर्म स्वभाव पर प्रकाश डाला गया है। मंत्र का अर्थ इस प्रकार है। इस मंत्र में यह भाव परिलक्षित होता है कि प्रजा में सुख की वर्षा करने का पहला साधन ज्ञान—विज्ञान है। प्रजा में ज्ञान—विज्ञान की वृद्धि करना राजा का प्रथम कर्तव्य है। दूसरा कर्तव्य है न्याय की उत्तम व्यवस्था। सत्य और न्याय का **चोली ऊर्मिरुराष्ट्रदा असिः** दमन का साथ है। पक्षपात रहित न्याय प्रजा को सुखी करने का अमोघ अस्त्र है। बिना न्याय के राज्य में सुख शान्ति की कल्पना ख पुष्प के समान है। आज हमारे देश की न्याय व्यवस्था चरमरा गई है। न्यायपालिका भ्रष्टाचार में आकंठ डूबी हुई है। **सत्यमेव जयते** का आदर्श वाक्य कागजों में और दीवारों पर ही चिपक कर रह गया है। न्यायालयों के भ्रष्टाचार से जनता त्राहि—त्राहि कर रही है। हमें इन न्यायालयों को वास्तविक न्यायालय बनाने का प्रयत्न करना होगा। तीसरा कर्म है बलवान सेना। जिस की सेना दुष्ट शत्रु के आक्रमण से प्रजा की रक्षा न कर सके उसका राज्य व्यर्थ है। न्याय और सुरक्षा ही राज्य की दो भुजाएं हैं जिससे राजा का पराक्रम प्रकट होता है। आज सारे राष्ट्र आतंकवाद से पीड़ित हैं। निर्दोष प्रजा दुष्ट आतंकवादियों के चंगुल में फंस कर हाहाकार कर रही है। हमारा राष्ट्र दिन प्रतिदिन दिन आतंकवादियों का शिकार बनता जा रहा है। देश का स्वर्ग कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्य इस की चपेट में लहु—लुहान हो रहे हैं। सुरक्षा और न्याय की जर्जरित अवस्था को देखकर आजादी की प्रसन्नता, विषाद में परिणत होती जा रही है।

दशम अध्याय का तीसरा मंत्र प्रजा की आकांक्षा को प्रतिध्वनित करता है, ऐसा राजा लोगों, तुम अर्थ को प्राप्त करने वाले होकर सत्यवाणी से राज्य प्रदान करने वाले हो। मुझे अर्थ से पूरित राज्य प्रदान करो। हे राजा की स्त्रियो! तुम न्याययुक्त नीति से विद्या बल पराक्रम से युक्त राज्य प्रदान करो। प्रिय वाणी से जल और प्राण के समान प्रिय हो हमें जल और प्राणयुक्त राज्य प्रदान करो। आप जल और प्राण के रक्षक पालक हो, हमें जल की तरह शान्त और प्राणों की तरह बलवान राष्ट्र प्रदान करो।

इस मंत्र में अर्थव्यवस्था की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। राज्य की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होनी चाहिए। जिस देश की अर्थव्यवस्था चरमरा जाएगी वह

राष्ट्र कभी समुन्नत नहीं हो सकता। हमारे देश की अर्थ नीति बड़ी ही दुलमुल है। यहां अर्थ कुछ मुट्ठी भर लोगों के हाथ में कैद है। पूरे विश्व में भिक्षा का कटोरा हाथ में लेकर हमारे नेता अपने-अपने राज्य की योजनाओं के लिये विदेशी ऋण का जुगाड़ करते घूम रहे हैं। अर्थ के बिना सब कुछ व्यर्थ है। अर्थ न हो तो अनर्थ होता ही रहता है। देश में गरीबी बढ़ रही है। नेता लोग गरीबी का कारण जनसंख्या वृद्धि बतलाते हैं, पर वास्तव में हमारी विनम्र दृष्टि में हमारी वितरण प्रणाली भ्रष्ट है, इसी से आए दिन कई घोटालों का पर्दाफाश होता जा रहा है। भ्रष्टाचार का घुन सभी योजनाओं को निष्फल बना रहा है। कल्याणकारी योजनाएं भी भ्रष्ट व्यक्तियों के हाथों पड़कर फाइलों में दबी कागजों की शोभा बढ़ा रही हैं। लाभ आम जनता तक न पहुंच कर कुछ चालाक व्यक्तियों तक ही सीमित होता जा रहा है।

दूसरी बात इस मंत्र में स्त्रियों को ओजस्वती होने की कही गई है। जिस राष्ट्र में स्त्रियों की दुर्दशा होती है वह राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। आये दिन समाचार पत्रों में स्त्रियों पर अत्याचार व बलात्कार की घटनायें पढ़ सुन कर सिर लज्जा से नत हो जाता है। नारियां ओजस्वती बनकर ही राज्य में सुरक्षित रह सकती हैं।

जल के भण्डारों की सुरक्षा ही राष्ट्र को समृद्ध बनाती है। शस्य श्यामला धरती जल की सिंचाई के बिना मरू भूमि बन जाती है। हमारा राष्ट्र बड़ी-बड़ी नदियों से आप्लावित है। पर पीने के पानी की समस्या व नदी जल के बंटवारे की समस्या भी पचास वर्षों में हल नहीं हो पाई है। जल से ही राष्ट्र और प्रजा का स्वास्थ्य व समृद्धि स्थाई हो सकती है। देश में जल की कमी न हो और प्रीति की कमी न हो। ऋषि इस मंत्र में भावार्थ में लिखते हैं— जो राजा लोग और राजाओं की स्त्रियां होवें वे अपनी उन्नति के लिये दूसरों की उन्नति को सहन करें तथा सब मनुष्यों को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके राज्य के सेवक और सेविका बनें।

ईष्या एक ऐसी आग है जो अंदर ही अंदर राष्ट्र की प्रगति को भस्म कर देती है। इसी ईष्या की आग ने महाभारत के समय पूरे राष्ट्र को पतन के कगार पर ला खड़ा कर दिया था। आज हमारा राष्ट्र दिलों की दलदल में फंस कर ईष्या व द्वेष की अग्नि में झुलस गया है। न्यायपालिका का सारा समय इन ईष्या वादियों

ने घेर रखा है। गरीब न्याय की प्रतीक्षा में खड़ा अपने जीवन के अंतिम छोर पर पहुंच रहा है।

किसी भी राष्ट्र की उन्नति वहां के निवासियों के वैचारिक स्तर पर आधारित होती है। वेद के पवित्र विचार जीवन को प्रकाशित करते हैं इसीलिये ऋषि ने वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना, परम धर्म के रूप में निर्दिष्ट किया है।

दशम अध्याय का चौथा मंत्र बहुत बड़ा है जो अपने आप में बहुत गहन विचारों को संजोकर एक राष्ट्र को महान् बनाने का उपाय प्रस्तुत कर रहा है। इस मंत्र का भावार्थ इस प्रकार है— जो मनुष्यों सूर्य के समान न्याय प्रकाशक और सूर्य के समान विद्या के दीपक, सब को आनन्द देने वाले गौ आदि पशुओं के रक्षक, शुभ गुणों से कामना के योग्य, बलवान, गुणों के सदृश स्त्री वाले, विश्व का धारण पोषण करने वाले और स्वाधीन हैं वे दूसरों को राज्य दे सकते हैं और राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं, अन्य नहीं, ऐसा तुम समझो।

सूर्य के समान तेजस्वी नेता ही राष्ट्र को प्रकाशमान कर सकता है। आज राष्ट्र नेताओं से विहीन होता चला जा रहा है। स्वतंत्रता संग्राम तेजस्वी नेताओं के नेतृत्व में लड़ा गया था, इसीलिए वह सफल हो सका। आज तेजस्वी नेता की प्रतीक्षा है जो सूर्य के समान अपने न्याय से पूरे राष्ट्र को प्रकाशित कर सके। वेद मंत्र कहता है कि विद्या और सत्य व्यवहार ही राष्ट्र को प्रकाशित करते हैं, जितनी विद्या बढ़ेगी उतनी ही बल व तेज की वृद्धि होगी।

मंत्र में दूसरी बात कही गई है कि प्रजा को आनन्दित करना राज्य का कर्तव्य होना चाहिए, किन्तु आज हमारे राष्ट्र में प्रजा हाहाकार कर रही है। न अर्थ की दृष्टि से राष्ट्र सम्पन्न है, न ही न्याय के क्षेत्र में उस की पुकार सुनी जा रही है। उसका रुदन अरण्य रोदन सिद्ध हो रहा है।

मंत्र में तीसरी बात पशुपालन की है। गौ आदि पशुओं की हिंसा व वनों का संहार राष्ट्र को खोखला बना रहा है। ऋषि ने लिखा है कि गौ आदि पशुओं के नाश से राजा और प्रजा का नाश हो जाता है। हम अपने राष्ट्र को विनाश के मुंह में जाता हुआ देख रहे हैं। महात्मा गांधी ने कहा था कि स्वतंत्रता के बाद एक कलम से गौ हत्या बंद कर दी जाएगी, पर गांधी की हत्या के बाद वह कलम कहां चली गई, यह किसी को पता नहीं। आज भी करोड़ों पशुओं का वध कर के उसे

विदेशों में निर्यात किया जाता है और विलसिता के द्रव्य बनाये जाते हैं, जिन वस्तुओं का उपभोग करके राष्ट्र अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। यह आत्मघाती कदम पता नहीं हम सब को किस दुःख सागर में डुबा कर मारेगा। नवम अध्याय के बारहवें मंत्र में राजा को वनों का रक्षक कह कर संबोधित किया गया है।

चौथी बात मंत्र में कही गई है कि पुरुष और स्त्रियां शक्तिशाली हों। जब आहार अनुकूल न हो तो शक्ति कहां से आयेगी? ब्रह्मचर्य और पौष्टिक आहार दो। तो साधन हैं शक्ति के। पर आज हमारे देश की प्रजा दोनों से ही वंचित होती जा रही है। वासना और हिंसा से भरे हुए हमारे चलचित्र मनुष्य की मानसिक शक्ति को क्रूरता में परिवर्तित कर रहे हैं। राष्ट्र के इस पतन को हम सब उसी प्रकार मूक होकर देख रहे हैं जैसे कि भीष्म पितामह न द्रोणाचार्य ने कौरवों की सभा में द्रौपदी का चीरहरण होते देखा था।

मंत्र में **जनभृतः और विश्वभृतः** कह कर प्रजा की समृद्धि की ओर इंगित किया है। प्रजा का भरण पोषण करना ही राष्ट्र का प्रथम कर्तव्य है, पर आज हमारे राष्ट्र कर्णधार स्वार्थी होकर अपने और अपने परिवार के ही भरण पोषण में लगे हुए हैं। राष्ट्र की प्रजा की ओर उनका ध्यान है ही नहीं।

अंतिम बात मंत्र में कही गई है कि विद्या और धर्म को बढ़ाकर ही राष्ट्र की सेवा की जा सकती है। जिस राष्ट्र के नर नारी विद्या और धर्म से दूर हो जाते हैं वह राष्ट्र उन्नत देशों में कभी परिगणित नहीं हो सकता। जब राष्ट्र अधर्माचरण में लिप्त हो जा जाता है, तो राष्ट्र सुखी और समृद्ध कैसे हो सकता है? अधर्म करना ही जिसका धर्म बन गया है, वह देश स्वर्ण जयन्ती मनाने का अधिकारी कैसे हो सकता है? मंत्र सूर्य के समान राष्ट्र को प्रकाशित करने की ओर संकेत कर रहा है। तेज, बल, विद्या, अर्थ और धर्म ये पांच चीजें ही राष्ट्र को सबल, तेजस्वी और महान् राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत कर सकती हैं।

राजा प्रजा से कर कैसे और क्यों ग्रहण करे—

रघुवंश काव्य में कालिदास ने प्रजा से कर लेने के लिये सूर्य का दृष्टान्त दिया है। सूर्य जैसे जलाशयों से पानी खींच कर फिर बसे बड़ा कर मेघ के रूप में

बरसा देता है, उसी तरह राजा को चाहिए कि वह प्रजा को पीड़ित न करता हुआ कर ग्रहण करे और बसे प्रजा की भलाई में व्यय कर दे।

नवम अध्याय का सत्रहवां मंत्र कहता है कि 'जो राजपुरुष प्रजा से कर ग्रहण करते हैं वे निरंतर प्रजा की रक्षा करें अन्यथा कर ग्रहण न करें और प्रजा भी उन्हें कर न देवे।। अतः प्रजा की रक्षा के लिये तथा दुष्ट शत्रु के साथ युद्ध करने के लिये ही कर दिया जाता है अन्य कार्य के लिये नहीं यह निश्चय है।'

जो कर देने वाले से कर दिलावें वह मंत्री बनने योग्य है, जो शत्रु को वश में करने में समर्थ है बसे सेनापति तथा जो विद्वान् धार्मिक हो बसे न्यायाधीश वा कोषाध्यक्ष बनाओ।²

नवम अध्याय के तेईसवें मंत्र का अंश है— 'वयं राष्ट्र जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा।'

वयं हम मंत्री आदि सेवक लोग, स्वाहा सत्य आचरण से पुरोहित हितकारी, राष्ट्र राज्य में सदा, जाग्रयाम पुरुषार्थी होकर बर्ताव करे।

जब राष्ट्र के सेवक जागःक होकर पुरुषार्थ करते हैं तभी राष्ट्र आगे बढ़ता है। राष्ट्र का हित इसी में है कि सभी हितकरी मार्ग पर आगे बढ़ें। निबन्ध का डपसंहार करते हुए वेद मंत्र के माध्यम से प्रार्थना करते हैं कि हमारी स्वतंत्रता की शताब्दी तक हमारा राष्ट्र सब प्रकार के सुखों से भरपूर हो। प्रार्थना का तात्पर्य यही है कि उसी दिशा में हम प्रवृत्त हों।

ओं आ ब्रह्मन् ब्रह्मवर्चसी जायताम् आराष्ट्र राज्यन्यः शूर इषव्योति व्याधि महारथो जायताम् दोग्धिर्धनुर्वोढान् ड्वानाशुः सप्ति पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्टाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्।³

हमारे राष्ट्र में पूर्ण विद्वान् तेजस्वी ब्रह्मज्ञानी बढें, क्षात्र धर्म में निष्णात शूर वीर कुशल योद्धा उत्पन्न हों, दुधाः गौएं और भार वाहक पशुओं की वृद्धि हो। बुद्धिमती स्त्रियां और सभ्य नव युवक राष्ट्र की शोभा बढाएं। समय—समय पर वर्षा

² यजुर्वेद २४.९

³ यजुर्वेद २२.२२

होती रहे, शस्य श्यामला धरती भरपूर अन्नादि औषधियां उत्पन्न करे और हमारे राष्ट्र का योगक्षेम (वैभव) बढ़ता जाए।

3.2 राष्ट्र शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग—

राष्ट्र शब्द प्रकाश अथवा शासन अर्थ का वाचक है, राज धातु तथा ष्ट्रन प्रत्यय युग से निष्पक्ष होकर राज्य राष्ट्र प्रजा देश साम्राज्य आदि का वाचक माना जाता है— सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्।⁴ अगर धातु के अनुसार देखें तो राष्ट्र शब्द का अर्थ है दीप्तिमान प्रकाशमान राष्ट्र शब्द का अर्थ है, ऋग्वेद में राष्ट्री युयोष नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः।⁵ क्रिया पद का प्रयोग इसी अर्थ के समर्थन में किया जाता है। जो वस्तु दीप्तिमान या प्रकाशमान होती है, वही सबसे उत्तम होती है, श्रेष्ठ होती है, तथा सब में अत्यंत शोभायमान होती है, जिप्सी का अर्थ केवल प्रकाश ही नहीं है, इति का अर्थ शारीरिक एवं चारित्रिक शक्ति एवं सौंदर्य है, किसी भी श्रेष्ठ कर्म करने के लिए शारीरिक एवं चारित्रिक शक्ति सौंदर्य संपन्न व्यक्ति का चयन किया जाता है, इसीलिए वह सम्राट या राजा कहलाता है— अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।⁶ ऋग्वेद में अनेक रूपों में प्रकाशमान वाक्य को ही राष्ट्री कहा गया है।

व्यक्ति जहां रहता है वहां स्थान प्रभाव युक्त होना चाहिए यहां पर अगर हम दीप्तिमान का अर्थ देखें तो प्राकृतिक साधन संपन्नता एवं सर्व सुख है, जहां मानव के लिए उपयोग साधन नहीं है उसके रहने के लिए घर खाने के लिए अनाज पीने के लिए पानी नहीं है एवं अन्य जीवन उपयोगी साधन नहीं है, वह स्थान दीप्तिमान नहीं कहा जा सकता, वह स्थान प्रकाशमान नहीं कहा जा सकता इसीलिए सर्व सुखी युक्त स्थान के लिए राष्ट्र शब्द का प्रयोग किया जाता है और उसके लिए देखा जाता है कि वह स्थान मनुष्य की आजीविका के लिए सही है या नहीं उन वस्तुओं में भी जल सबसे महत्वपूर्ण है अगर मनुष्य के जीवन उपयोगी वस्तुएं जिस स्थान पर होती हैं उसी स्थान को राष्ट्र कहते हैं, इसी लिए उस स्थान को 'राष्ट्रदा'

⁴ सिद्धांत कौमदि उणादि प्रकरण ४.१५.८

⁵ ऋग्वेद १.१०४.४

⁶ ऋग्वेद १.१२५.३

कहां गया है जो हमारे वैदिक ऋषि हैं, वह जल को भी राष्ट्रदा कहते हैं अर्थात्— बसे राष्ट्र प्रदान करने वाला कहते हैं। एवं जल के अनेकों नाम का उल्लेख हमें देखने को मिलता है जहां पर जल को राष्ट्रीदा कहा गया है, वही होने अन्य नामों से भी जाना गया है जैसे— स्वराज, मान्दा, वाशी, शक्वरी, व्रजझीतः, सूर्यत्वचसः, विसवभृतः, जनभृतः, तथा मधुमतीः, आदि नामों से भी जल को जाना गया है और इन सब से राष्ट्र प्रदान करने की कामना की गई है।⁷

वास्तव में वह राष्ट्र सबसे सर्वश्रेष्ठ है, जिन राष्ट्रों के ऊपर ब्रह्म शक्ति और क्षत्र शक्ति का आशीर्वाद हो वह राष्ट्र हमेशा सुसंपन्न राष्ट्र रहता है। हमें यजुर्वेद में भी ऐसा उल्लेख देखने को मिलता है कि जहां पर जल नहीं होता वहां मानव का निवास नहीं होता और जहां मानव का निवास नहीं होता, वहां प्रकाश रोशनी नहीं होती और जहां प्रकाश नहीं ऐसे स्थान को राष्ट्र कहना योग्य नहीं होता और वह स्थान राष्ट्र नहीं होता है।

वैदिक ऋषि भी प्रजा को ही राष्ट्र कहते हैं। **राष्ट्र प्रजाः**⁸ एवं वहां पर भी राष्ट्र शब्द के अंदर प्रकाश अर्थ स्थापित होता है, यहां पर देखा जाए तो प्रकाश का मूल अर्थ एक विशेष संस्कृति संपन्नता से है, तैत्तरीय ब्राह्मण में तो पशु को ही राष्ट्र कहा गया है। **राष्ट्रं पशवः**⁹ और थाना से ही राष्ट्र प्रकाशमान होता है, ऐसा उल्लेख हमें तैत्तरीय संहिता में देखने को मिलता है, अगर राष्ट्र के पास धन नहीं है, वह राष्ट्र निर्धन है, तो उस राष्ट्र का आत्म सम्मान आत्म गौरव नहीं रह जाता है एवं वह कुछ ही समय में ही धन के अभाव के कारण नष्ट हो जाता है इस लिए एक संपूर्ण सुख की राशि बसे कहा गया है जिसमें धन का कोई अभाव ना हो पशुओं का कोई अभाव ना हो एवं मनुष्य के जीवन उपयोग की सभी वस्तुओं सुख सुविधाएं हो वहां पर जल की कोई कमी ना हो वही राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र कहा जाता है।

‘रासन्ते चारु शब्दं कुर्वते जनायस्मिन् प्रदेशविशेषे तद् राष्ट्रम्’ ।

⁷ यजुर्वेद ४.१०.३

⁸ तैत्तरीय संहिता ३.४.८.२

⁹ तैत्तरीय संहिता ३.४.८.२

अर्थात्— एक विशेष भाषा के द्वारा जिस राष्ट्र प्रदेश विशेष में वहां के रहने वाले सुख पूर्वक बिना किसी प्रयास के स्वाभाविक रूप से विचार विनिमय करते हैं वह प्रदेश राष्ट्र कहलाता है।

यहां पर हमें अंग्रेजी भाषा में भी राष्ट्र के लिए नेशन शब्द का प्रयोग किया गया है, अंग्रेजों एवं राजनीतिज्ञों ने मिलकर सब की सहमति से राष्ट्र शब्द के लिए नेशन शब्द का प्रयोग किया है, भाषा वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि यह शब्द लैटिन भाषा के नेटस शब्द से विकसित हुआ है, जिसका अर्थ ऐसी जाती किंवा लोग जन होता है, जिसमें सभी जातियों के लिए समानता होती है, इसलिए राजनीति शास्त्र में राष्ट्र शब्द को नेशन शब्द का अर्थ मानव पूंजी समझा गया है, जो किसी भी जन्म या जाति को बढ़ावा नहीं देता वह सभी को एक दृष्टि से एकता की भावना रखता है।¹⁰

यहां पर हमें ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार देखें तो नेशन सभी के लिए एक समान भाषा एक समान वंश एक समान इतिहास से एक दूसरे के साथ संबंध है जो लोगों का एक बहुत बड़ा समूह है, जो एक विशेष प्रकार की जाति का रूप धारण कर चुका है एवं जिसने एक निश्चित भूखंड को अपने अधिकार में कर अपना ही एक अलग स्वतंत्र राजनीति इकाई का रूप ग्रहण कर लिया है।¹¹ विश्व में राजनीति चेतना जैसे-जैसे विकसित हुई है वैसे-वैसे राजनीति शास्त्र के और दूसरे शब्दों के अर्थ की भांति ही जो राष्ट्र शब्द है उसके अर्थ पर भी विचार होता रहा है।

¹⁰ Etymologically. Nation and Nationality mean the same thing. They are both derived from the Latin word natus(born) implying common ethnic origin...

गुरनाम निहाल सिंह, 'फण्डामेंटल्स ऑफ पॉलिटिकल साइन्स एण्ड आर्गनाइजेशन', पृ. 44

¹¹ A Nation is an extensive aggregate of persons so closely associated with each other by common descent, language, or history as to form a distinct race or people, usually organised as a separate political state and occupying a definite territory.

(आक्सफोर्ड डिक्शनरी, 'नेशन' शब्द के अन्तर्गत।)

जेडब्ल्यू गारनर का ऐसा मत है कि मनुष्य जाति के उस समुदाय को राष्ट्र कहते हैं जो संस्कृति संबंधी समान हो और वह स्वयं अपने आध्यात्मिक जीवन की एकता एवं अभिव्यक्ति के प्रति सतर्क एवं संकल्पित हो, ऐसा जेडब्ल्यू गारनर का मत है।

वर्गस का ऐसा मानना है जहां पर मनुष्य समुदाय जिसकी भाषा और साहित्य एवं रीति-रिवाज और न्याय-अन्याय की चेतना समान हो और जो भूगोल संबंधी एकता युक्त प्रदेश में रहता हो वही राष्ट्र कहलाता है, ऐसा मत वर्गस का है।¹²

जर्मनी विद्वान ब्लन्टसिली के मत के अनुसार उनका ऐसा मानना है कि जो राष्ट्र है वह राज्य की स्वजन की एकता से अच्छी तरह अपेक्षा ना रखने वाला विभिन्न व्यवसाय एवं सामाजिक स्तर के मनुष्यों का समूह होता है जो कि अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त परंपरा एवं संस्कारों और भावनाओं वाले एक समाज में रहता है, वहां रहने वाला हर एक सदस्य भाषा तथा अपने आचार विचारों पर अपने समूह के अनेक लोगों से अपनी एकता एवं विदेशी लोगों से अपनी प्रशस्ता का अनुभव करता है।¹³

स्टालिन के मत के अनुसार राष्ट्रीय समुदाय है जो इतिहास के संबंध रखने वाला विकसित और हमेशा रहने के साथ सर्वमान्य भाषा और भूखंड एवं आर्थिक

¹² 'A population, having a common language and literature, common customs and common consciousness of right and wrong, inhabiting a territory of geographical unity.' वर्गस, ('पालिटिकल साइन्स एण्ड कन्स्टीट्यूशनलता', भाग १, पृ. १)

¹³ A union of masses of men of different occupations and social strata in a hereditary society of common spirit, feeling and race, found together, especially by language and customs in a common civilization which gives them a sense of unity and distinction from all foreigners quite apart from the land of the state. ('ब्लन्टसिली, 'थिअरी आव् द मॉडर्न स्टेट', तृतीय संस्करण, पृ. २०)

जीवन और संस्कृति को अच्छी तरह देख कर विशिष्ट मनोवैज्ञानिक संरचना से युक्त है।¹⁴

हक्सले का ऐसा मानना है कि बहुत सी मानव गतिविधियां एवं बड़ा बनने की आकांक्षा और भावनाएं प्राकृतिक या फिर बनावटी रूप से परस्पर मिलकर डस बड़े से बड़े समुदाय का निर्माण करते हैं जिसे हम सब राष्ट्र शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं एवं भाषा विधान धर्म कला आहार वेशभूषा आचरण खेलकूद आदि का भी राष्ट्र में अपना ही बहुत महत्वपूर्ण योगदान है।¹⁵

जे एस मिल के मत के अनुसार उनका ऐसा मानना है कि जो एक समान सरकार के अधीन जो लोग रहने की इच्छा रखने वाले अनेक लोगों से कहीं अधिक अपने लोग अगर जुड़े हो तो बसे ही किसी भी मानव जाति के भूभाग को राष्ट्र कहते हैं।¹⁶

इसलिए राष्ट्र ऐसे मनुष्यों का समूह है जो कुछ निश्चित समानताओं से एक दूसरे के साथ बना हुआ होने में अपने आप को सहज समझते हैं और यह समानताएं बहुत ही मजबूत होती हैं और वास्तविक होती हैं कि वह से जोड़कर वह लोग बहुत ही प्रसन्नता पूर्वक रहते हैं और अगर उन लोगों को अलग अलग कर दिया जाए तो वह लोग असंतुष्ट हो जाते हैं और यह लोग उनके लिए भी लोगों के

¹⁴ 'A Nation is a historically evolved stable community of language, territory, economic life, and psychological makeup manifested in a community of culture.'

(स्टालिन, 'मासिज्म एण्ड द क्वेश्चन ऑफ़ नेशनलिटीज' पृ. ६)

¹⁵ 'Very many human activities, aspirations and emotions have contributed, either naturally or artificially to build up the great synthesis that we term a 'nation', language, religion, art, law, even food, gesture, table-manners, clothing and sports all play their part.' (हक्सले, जे., 'रेस इन योरोप' पृ. ३)

¹⁶ मिल, जेएस., 'रिप्रेजेन्टेटिव गवर्नमेण्ट' अध्याय के अन्तर्गत।

साथ रहना पसंद नहीं करते जो उन लोगों के रीति रिवाज से या उन लोगों के समाज से कोई रिश्ता नहीं रखते।¹⁷

राष्ट्र लोगों के समूह के अस्तित्व में होने वाली एकता की विशिष्ट भावना का नाम है, जो इस मनुष्य समुदाय को साथ में रखने और किसी भी बाहरी के बस में ना होने का प्रतिरोध करने के लिए प्रेरणा देती है।¹⁸

एक मानव समूह अनेक तत्वों के आधार पर एकता बनाए रखने की भावना से बंधक होकर राष्ट्रीयता का वह निर्माण करता है जब यह राष्ट्रीयता की भावना ही उस मानव समूह को राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करती है या फिर बसे उस दिशा में जाने के लिए प्रेरित करती है तो वह एक राष्ट्र कहलाता है।¹⁹

लेकिन एक निश्चित भूभाग में निवास तथा वर्षों से चली आ रही परंपरा एकता ही राष्ट्र के निर्माण कार्य तत्व नहीं है, इनके साथ साथ संस्कृति धर्म इतिहास भाषा साहित्य आदि की एकता होना बहुत आवश्यक है क्योंकि वह किसी मानव समूह के एक राष्ट्र के रूप में एकत्रित होने की भावना को प्रदर्शित करती है। जब वैदिक राष्ट्र के स्वरूप पर विचार किया जाता है तो पता चलता है की यह सभी विशेषताएं वैदिक राष्ट्र के स्वरूप पर सही प्रकार घटित होती हैं वैदिक लोगों के समान भाषा समान वंश एवं समान इतिहास आदि से इस प्रकार संबंध थे कि उन लोगों ने एक विशेष आर्य जाति की ज़पाधि ले ली थी एवं एक भूखंड को निश्चित कर अपना राजनीतिक प्रभुता स्थापित कर ली थी जिस भूभाग पर आर्य लोगों ने अपना राज्य स्थापित किया था। वह राज्य सत्य सिंधु प्रदेश या आर्य देश या फिर आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। पहले वैदिक काल के समय में वही सिंधु प्रदेश राष्ट्र के स्वरूप में बसे जाना जाता था उत्तर वैदिक काल में सारे लोगों के देश की सीमा बढ़ती चली गई और धीरे-धीरे आर्य देश के अंतर्गत भरत वंश को मानने वाले लोगों की राजनीतिक प्रवृत्ता व्यापक होने लगी इसके व्यापक

¹⁷ 'संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना' डॉ. हरिनारायण दीक्षित, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, पृ.?

¹⁸ पुखराज जैन, ' (राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त', द्वितीय खण्ड, पृ. ११ .)

¹⁹ डॉ. जी. डी. तिवारी ('आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ', पृ. ४७ .)

होने के कारण सिंधु से लेकर बंगाल पर्यंत एवं हिमालय से लेकर कन्याकुमारी पर्यंत तक समस्त पूरा देश भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ वैदिक आर्यों की एक उपशाखा है जिसे भरतों²⁰ के नाम से जाना जाता है।

उसी भरतों उपशाखा की राजनीति प्रभु सत्ता के कारण ही इस देश का भारत नाम पड़ा। दुष्यंत के पुत्र का नाम भरत था उसी के नाम के साथ देश का नाम भारत पड़ा और आर यस यस जगह रहते थे उसको भारत के रूप में राष्ट्र मानते थे एवं ऋग्वेद में हमें स्पष्ट रूप से भारत में लोगों का उल्लेख हमें देखने को मिलता है।²¹

राजनीतिज्ञ के द्वारा निर्धारण की गई राष्ट्र शब्द की समस्त परिभाषाओं के अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है किस समय के परिवर्तन होने के साथ-साथ राष्ट्र के स्वरूप की भी कल्पना में कुछ न कुछ परिवर्तन होता गया है शुरुआत में किसी मानव समूह की जातिगत एकता संस्कृति एकता आध्यात्मिक एकता एवं अभिव्यक्ति के प्रति सचेत रहना तथा किसी अखंड भूभाग में निवास करना ही राष्ट्र स्वरूपाधायक तत्व माने जाते हैं परंतु मानव जाति में जैसे-जैसे राजनीतिक चेतना का आदर बढ़ा उसी प्रकार राष्ट्र के स्वरूपाधायक तब तो मैं भी राज नीतियों का प्रवेश होता चला गया इसलिए किसी भी राष्ट्र के राष्ट्रत्व को सिद्ध करने के लिए यह जानना बहुत आवश्यक होता है कि उसमें रहने वाले राष्ट्र के अन्य पदार्थों के साथ-साथ राजनीतिक स्वतंत्रता भी आवश्यक है। लेकिन अगर लेकिन राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं है। तो कम से कम स्वतंत्रता प्राप्त करने की उस राष्ट्र के पास अभिलाषा हिम्मत होना बहुत जरूरी है क्योंकि आज के युग के समय अगर किसी राष्ट्र के पास राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं है चाहे भले ही उस राष्ट्र के पास अपना स्वयं का सांस्कृतिक जातीय भौगोलिक आध्यात्मिक ज्ञान उसके पास भले ही बना

²⁰ ऋग्वेद में भरतों का उल्लेख मिलता है। विश्वामित्र ने भरतों के साथ विपाट तथाशुतुद्री के संगम को पार किया था। भरतों का सम्बन्ध तृत्सु राजा सुदास के साथ था। यही तृत्सु-भरत कुरुपांचाल के नाम से प्रसिद्ध हुए। द्रष्टव्य डॉ. ब्रजबिहारी चौबे, ('हिस्टॉरिकल एकाउण्ट्स आफ द तृत्सुज', विश्वेश्वरानन्द इण्डालोजिकल जर्नल।)

²¹ विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्। (ऋग्वेद ॥ ३॥)

रहे लेकिन अगर राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं हो तो उस राज्य के व्यक्ति स्वतंत्र नहीं हैं। तुम राज्य के व्यक्ति स्वतंत्र कैसे कहे जा सकते हैं इसलिए आज विश्व में राजनीतिक स्वतंत्रता ही सर्वोपरि मानी जाती है।

3.3 राष्ट्र का स्वरूप—

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहर्षिद्वयास्थन् मृधो अभयं ते अभूत् ।

तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहातामिह शक्वरीभिः ।²²

राष्ट्र की उत्पत्ति के बारे में ऐसा कहा गया है कि यह जो राष्ट्र की उत्पत्ति हुई है वह परमात्मा के द्वारा ही हुई है उस परमात्मा ने ही सर्वप्रथम राष्ट्रीय भावना दी और जैसे ही राष्ट्रीय भावना आई तुरंत शत्रु को नष्ट कर दिया गया और शत्रु को नष्ट करने के बाद राष्ट्र में निर्भयता का भाव जागा और पृथ्वी और द्युलोक दोनों को परमात्मा ने अपनी शक्ति से उपयोगी बना कर धन धान्य से परिपूर्ण कर दिया गया।

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीत्यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।

यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।

सा नौभूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ।।

अथर्ववेद में अपने राष्ट्र को सर्वोत्तम बनाने का उल्लेख भी है जिसके लिए आवश्यक है राष्ट्र में तेज और बल की सत्ता सर्वोत्तम राज्य तब ही बन सकता है जब वहां की जनता तेजस्वी और बलवान होगी।²³

परि त्वा धात्सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।

सर्वा अरातीरवक्रामन् एहीदं राष्ट्रमकरः सुनृतावत् ।²⁴

अगर किसी राष्ट्र को उत्तम बनाना है तो उस राष्ट्र में सुख और समृद्धि का होना बहुत जरूरी है।

वि रोहितो अमृशद्विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।

²² अथर्ववेद १३.१.५

²³ अथर्ववेद १२.१.८

²⁴ अथर्ववेद १३.१.२०

दिवंरूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ।।²⁵

जिस राष्ट्र में घी दूध एवं अन्य सुख सुविधाओं से भरपूर राष्ट्र हो वह राष्ट्र उत्तम राष्ट्र की श्रेणी में आने लगता है। राष्ट्र में जो भी रहता है वह सब पृथ्वी के पुत्र माने जाते हैं इसलिए इन सब को समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए

राष्ट्र में सभी प्रकार के व्यक्ति होते हैं उच्च कोटि और निम्न कोटि यह सब राष्ट्र में ही निवास करते हैं इसलिए इनमें ऊंच नीच का भेदभाव ना होकर मित्रता की भावना होनी चाहिए छोटे लोग और बड़े लोग इन सब को समान अधिकार होना चाहिए और इन सब को मिलकर देश की रक्षा करनी चाहिए हर किसी राज्य में जनता सभी प्रकार की होती है परंतु फिर भी पृथ्वी उन सब को धारण करती है उसी प्रकार राष्ट्र में भी हर प्रकार के भले बुरे सभी प्रकार के लोग होते हैं उन सभी लोगों का ध्यान रखना एक राजा का परम कर्तव्य है।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नौदधातु ।।²⁶

राष्ट्र का जो स्वरूप है वह भूमि जन्म और उसकी अनेक संस्कृति से मिलकर बनता है जिसमें देव गण की भूमि के निर्माण कर्ता होते हैं देव गण ही भूमि की देख रेख करते हैं यही पृथ्वी पर वर्षा करते हैं उससे ही हरियाली व अन्य नए पौधे पुष्प का जन्म होता है पृथ्वी के अंदर बहुत ही अमूल्य वस्तुएं भरी पड़ी हैं जो कि उनके नाम इस प्रकार हैं, सागर नदियां रत्न पर्वत आदि पृथ्वी के अंदर ही समाहित हैं। पृथ्वी पर समुत्पन्न जनसमुदाय वास करता है।

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीत्यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।

यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।

सा नौभूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ।।²⁷

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।

सा नौमधु प्रियं दुहामथो ङक्षतु वर्चसा ।।

²⁵ अथर्ववेद १३.१.८

²⁶ अथर्ववेद १२.१.६

²⁷ अथर्ववेद १२.१.८

पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ और हम पृथ्वी को माता मानकर इस राष्ट्र पर विचरण करते हैं।²⁸ और राष्ट्र का जो मुख्य तत्व है वह है संस्कृति यही संस्कृति हमारे जन कल्याण का स्वरूप है यही संस्कृति हमारे जन कल्याण का भविष्य है जिस प्रकार नदियाँ एकत्र होकर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार राष्ट्र भी संस्कृति में जाकर मिल जाता है, एकत्र हो जाता है फिर चाहे वह साहित्य हो कला हो नृत्य हो या आमोद-प्रमोद हो इन सब विविध संस्कृति में राष्ट्रीय जन अपने मानसिक भावों को प्रकट करके आत्मा के आनंद के भाव को प्रकट करते हैं। राष्ट्र राजनीतिक संप्रभुता को जैसे का तैसा बनाए रखने का प्रतीक है।²⁹ अर्थात्— हम पुरोहित राष्ट्र को जागृत एवं जीवित बनाए रखेंगे पुरोहित का अर्थ है जो इस राष्ट्र का हित करता हूँ जो राष्ट्रीय चरित्र राष्ट्रीय गौरव राष्ट्रीय मर्यादा राष्ट्रीय आत्मीयता राष्ट्रीय समृद्धि आदि का ध्यान रखते हो उसकी व्यवस्था करते हो उन्हें पुरोहित कहते हैं।³⁰

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ्ग्विशां पतिरेकराट्त्वं वि राज ।

सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो हव्यन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्त्रियाभिः ।

अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद्राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावदिशामुदीची कृणवन् नौअग्रम् ।

पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥

उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।

यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥

अथर्ववेद में जो राष्ट्र है वह अनेक जगह उसका उल्लेख किया गया है।³¹

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भं ब्रह्मणस्पतिम् ।

त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥

²⁸ अथर्ववेद १२.१.७

²⁹ मनुस्मृति १.२५६

³⁰ यजुर्वेद ९.२३

³¹ अथर्ववेद ३.४.१ , अथर्ववेद ३.८.१ , अथर्ववेद १२.३.१० , अथर्ववेद १३.१.१

एक स्थान पर तो 'राष्ट्रणि' के द्वारा अनेक राष्ट्रों का संकेत दिया गया है और जो दर्थमणि है उसको अनेक राष्ट्रों का रक्षक बताया गया है।³²

राजा के कर्तव्य राज्य अभिषेक के साथ ही राजा को उसके कर्तव्यों को उस को सूचित कर दिया जाता है राजा से कहा जाता है कि तुम को राष्ट्रीय दिया जाता है तुम दृढता पूर्वक इस राष्ट्र के दायित्व को संभालो यह जो राष्ट्र तुम्हें दिया जा रहा है वह राष्ट्र की व्यवस्था व मजबूती बनाए रखने के लिए तुम्हें दिया जा रहा है यह भाव सारे मंत्रों में भी दिए गए हैं।

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व।

इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः।³³

अथर्ववेद का एक कथन है कि राष्ट्र को व्यवस्थित व मजबूत बनाओ और कल्याण की ओर ले जाओ।

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।

प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृषस्व।³⁴

राष्ट्र की व्यवस्था से ही आर्थिक सांसारिक समृद्धि की प्राप्ति होगी।

3.4 वैदिक राष्ट्र का भौगोलिक स्वरूप—

ऋषियों ने मानव जीवन के पहलुओं की पर्याप्त मीमांसा प्रस्तुत की है उन उनकी दृष्टि मनुष्य के केवल आर्थिक सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक पक्षों का ही मूल्यांकन नहीं करती है देश प्रेम स्वदेश भक्ति स्वदेश प्रेम राष्ट्रप्रेम के भावों को भी उजागर करती है और वैदिक ऋषि यों को यह तथ्य भली-भांति पता था ही कि अपनी धरती की तन मन धन से सामूहिक सम्मान पूर्ण सत्ता बनाए रखने के लिए सुरक्षा करना बहुत आवश्यक है और यह सब तभी संभव हो सकता है जब हम अपनी-अपनी धरती एवं जन्म भूमि अपने देश और अपने राष्ट्र भूमि के प्रती हमेशा वफादार एवं निष्ठावान रहे एवं उसकी उन्नति के लिए सदैव हमेशा क्रिया वान बने। एवं उसके सम्मान एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए हमेशा संगठित रहें एवं जागरुक

³² अथर्ववेद १९.३०.३

³³ अथर्ववेद ७.३५.१

³⁴ अथर्ववेद १३.१.३४

रहें वह इसलिए कि अगर हम अपने राष्ट्र के लिए सतर्क ना रहे तो उसके अन्ना जल और धन धान्य समृद्धि से भरपूर इस देश को दूसरे देश के निवासी अवश्य ही आक्रमण कर डालेंगे और यहां पर रहने वाले लोग अपनी ही जन्मभूमि से अभावग्रस्त हो जाएंगे तब उन लोगों की स्थिति उसी समान हो जाएगी जिसकी माता का स्तन्य बसे धकेल कर किसी दूसरे शिशु को पीने दिया जाए यही सब सोचकर वैदिक ऋषि यों ने यहां के मनुष्यों को राष्ट्रप्रेम किंवा देश प्रेम जी भावना उनके अंदर भरने के लिए वेदों में अनेक स्थानों पर अपने देश किंवा अपनी मातृभूमि की उन्मुक्त होकर प्रशंसा की है।

जिसे सुनकर या पढ़कर अपने देश के लिए हमारे हृदय में गौरव का भाव पनपता है अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त १२.१ अथर्व ऋषि ने अपने राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति का बहुत सुंदर ढंग से वर्णन किया है उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपने राष्ट्र का परिचय दिया है उन्होंने कहा है कि जो मनुष्य के निवास में कभी रुकावट नहीं होती है और जिस में बहुत अधिक खाई।

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या ङद्वतः प्रवतः समं बहु।

नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।³⁵

पर्वतीय एवं वह अनेक प्रकार की शक्तिशाली औषधियों को उत्पन्न करने वाली हो वही हमारी राष्ट्र भूमि विस्तृत हो और हमें समृद्धशाली बनाये।

यस्यां समुद्र इत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नौभूमिः पूर्वपेये दधातु।³⁶

जिस में समुद्र नदियां तथा अनेक प्रकार के जल स्रोत हैं जिस पर लोग खेती करके अनाज उत्पन्न करते हैं वह राष्ट्र भूमि हमें अन्य जल पशु से सदा प्रतिष्ठित रखें।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नौदधातु।³⁷

³⁵ अथर्ववेद १३.१.२

³⁶ अथर्ववेद १२.१.३

³⁷ अथर्ववेद १२.१.५

जिस भूमि पर हमारे पूर्वजों ने अनेक पराक्रम के कार्य किए हो अनेक आजादी के लिए लड़ाइयां लड़ी हूं संघार किया हो जो भूमि गाय घोड़े आदि पशुओं तथा पक्षियों का निवास स्थान हो वही हमारी राष्ट्र भूमि हमें सौभाग्य तथा वर्चस्व प्रदान करें।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।

सा नौभूमिभूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।।³⁸

जिस भूमि पर जल समान रूप से हमेशा दिन—रात बिना रुकावट के प्रभावित होता रहता है और वह राष्ट्र भूमि अनेक धाराओं से अपने आने वाला जल हमें सदा प्रदान करती है ताकि हमारे राष्ट्र में जल किसी भी प्रकार की कमी ना होने पाए।

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।

इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।

सा नौभूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ।।³⁹

जिस भूमि को अश्विनी कुमारों ने नापा था और जिस भूमि पर विष्णु ने तीन कदम रखे थे और शचीपति इंद्र ने जिसको अपने लिए इसे शत्रु से रहित किया था वही राष्ट्र भूमि सदा हमारे लिए जल प्रदान करती है जैसे— माता पुत्र के लिए अपने स्तनों से दूध पिलाया करती है। उसी प्रकार यह राष्ट्र हमें सारी सुविधाएं प्रदान करता है।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।

बभ्रं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।

अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ।।⁴⁰

जिस भूमि पर हमें छोटी—छोटी पहाड़ियां देखने को मिलती हैं और जिस पर हमेशा हिमाच्छादित पर्वत हैं और उन पर्वतों पर अनेक वन संपदा है एवं उन्हीं पर्वतों पर लाल काली भूरी एवं अनेक प्रकार की मिट्टी है उस राष्ट्र की भूमि मैं

³⁸ अथर्ववेद १२.१.९

³⁹ अथर्ववेद १२.१.१०

⁴⁰ अथर्ववेद १२.१.११

किसी प्रकार के द्वारा ना जीता जाऊं और ना ही किसी के द्वारा हिंसित होता हुआ पाया जाऊं और ना ही किसी प्रकार बाधित ना हो पाऊँ मैं हमेशा उस राष्ट्र की भूमि में सदा प्रतिष्ठित रहूँ।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां तन्वते विश्वकर्माणः।

यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्धवाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।

सा नौभूमिर्वर्धयद् वर्धमाना।⁴¹

जस भूमि पर देवों के उपासक लोग यज्ञ वेदी का निर्माण करते हैं एवं अनेक यज्ञ का संपादन करते हैं और जिस भूमि पर यज्ञ की लकड़ियां गाड़ी जाती हैं वह हमारी राष्ट्रीय स्वयं ही प्रवृद्ध होती है और हमें भी प्रवृद्ध करती है। जिस उगंली पर उत्पन्न हुए लोग उसी भूमि पर रहते हैं

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मास्त्वं बिभर्षि द्विपदश्चतुष्पदः।

तवेमे पृथिवी पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्येभ्यः

उद्यन्त्सूर्योरश्मिभिरातनोति।⁴²

जिस भूमि के तरु, पुरु, अनु, दुह्यु तथा यदु नाम के पांच लोग रहते हैं जिन लोगों के लिए उगता हुआ सूर्य अपनी रोशनी से प्रकाश फैलाता है। वही हमारी मातृभूमि है। जिस भूमि पर मनुष्य हवन आदि करके अग्नि को हमेशा के लिए प्रज्वलित करते हैं।⁴³ और जिस भूमि पर देवी देवताओं के लिए अलंकृत हवन के द्वारा आहुति प्रदान की जाती है ऐसी हमारी राष्ट्र भूमि हमारे हृदय में दीर्घायु प्रदान करावे।

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।⁴⁴

यस्यां सदो हविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते।

ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यग्निः साम्ना यजुर्विदः।

युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे।⁴⁵

⁴¹ अथर्ववेद १२.१.१३

⁴² अथर्ववेद १२.१.१५

⁴³ अथर्ववेद २०.१.१२

⁴⁴ अथर्ववेद. १२.२२.१

⁴⁵ अथर्ववेद १२.१.३८

जिस भूमि पर यज्ञ मंडल में पूर्व वेदी तथा उत्तर वेदी के बीच का स्थान जहां पर ऋत्विज बैठते हैं और जिस भूमि पर यज्ञ की लकड़ियां गाड़ी जाती हैं और जिस भूमि पर होता अध्वर्यु और ब्रह्मा मंत्रों का गाना एवं उच्चारण करते हैं और जहां पर यज्ञ में सोम प्रदान करने के लिए इंद्र के लिए ऋत्विज नियुक्त किए जाते हैं।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।

सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह।।⁴⁶

वही वैदिक ऋषि की श्रेष्ठ राष्ट्र भूमि है जिस भूमि पर हमारे पूर्वज सात ऋषि यों ने सत्य तप तथा यज्ञ से गौ रूपी पृथ्वी की प्रार्थना की थी और बसे प्रसन्न किया था वहीं राष्ट्र भूमि हमें धन प्रदान करती है जिसकी हम कामना करते हैं। और जिस भूमि पर लोग एकजुट होकर गाते हैं एवं नाचते हैं।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः।

युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।

सा नौभूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु।।⁴⁷

जिस राष्ट्र भूमि की रक्षा के लिए युद्ध करते हैं और युद्ध के समय दुंदु भी बजती है वही वैदिक ऋषियों की राष्ट्र भूमि है।

यस्यामन्नं ग्रीहियवौ यस्या इमा पञ्च कृष्टयः।

भूम्यै पर्जन्यपत्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।⁴⁸

जिस भूमि पर जौ और धान की पैदावार होती है और जिस भूमि पर पंच जन, अनु, पुरु, यदु, द्रुह्यु और तरु निवास करते हो वही हमारी श्रेष्ठ वैदिक राष्ट्र भूमि है।

कुछ विद्वानों का तो ऐसा मत है कि जो भूमि सूक्त है उसमें वर्णित भूमि शब्द वैदिक राष्ट्र भूमि का वाचक नहीं है वह तो सामान्य पृथ्वी का वाचक है, लेकिन यहां पर यह मत सही नहीं है क्योंकि भूमि सूक्त में प्रयुक्त भूमि शब्द सामान्य पृथ्वी का वाचक होते हुए भी वह वैदिक राष्ट्र भूमि का द्योतक है। यह कथन इस

⁴⁶ अथर्ववेद १२.१.३९

⁴⁷ अथर्ववेद १२.१.४१

⁴⁸ अथर्ववेद १२.१.४२

बात से ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषि भूमि के लिए हम हमारी भूमि (स नौभूमिः) वाक्य का प्रयोग किया करते थे स नौभूमिः वाक्यांश का प्रयोग हमें अथर्ववेद के सूक्त १२-१ के अनेक मंत्रों में यहां देखने को मिलता है।

3.5 वेदों में राष्ट्र का भौगोलिक स्वरूप—

(१) समुद्र (२) नदी (३) पर्वत (४) नगर

(१) समुद्र—

ऋग्वेद के समय के जो आर्य थे वह समुद्र से अपना परिचय रखते थे या नहीं इस पर अनेक विद्वानों के अपने-अपने मत हैं।

कित्य और मैकडॉनल्ड—

इन दोनों विद्वानों का ऐसा कथन है कि पतवारों को छोड़कर अन्य किसी बातों का जैसे मस्तूल और खेने का कहीं भी वेदों में उल्लेख नहीं है।

जिम्मर—

जिम्मर का कहना है कि समुद्र का उल्लेख मूर्ति के लक्षण के रूप में वेदों में हमें वर्णन मिलता है और समुद्री नाव और उसके अंतर्गत व्यापार का उस काल में बहुत ही कमी देखने को मिलती है किंतु ऋग्वेद में सरस्वती के समुद्र में जाकर लोप होने का वर्णन हमें प्राप्त होता है।⁴⁹

आसमुद्रातु वै पूर्वादासयुद्रातु पश्चिमात् ।

तयोरेवान्तर गिर्योरायार्वर्त विदुबुधाः ।।⁵⁰

और हमें दूसरी कई जगह भी ऋग्वेद में पूर्व और पश्चिम में दो समुद्रों का वर्णन हमें मिलता है। मनुस्मृति में भी पूर्व और पश्चिम के समुद्र को आर्यावर्त कहा गया है।

(२) नदी—

वेदों में नदियों का वर्णन हमें कई जगह प्राप्त होता है और ऋग्वेद और अथर्ववेद में तो नदियों का वर्णन अनेक जगह हमें प्राप्त होता है इन दोनों वेदों में सप्त सिंधु व अर्थात्— सात नदियों का दोनों वेदों में अनेक बार उल्लेख हमें देखने

⁴⁹ ऋग्वेद ६.६१.२

⁵⁰ मनुस्मृति २.२२

को मिलता है और यहां तक की अथर्ववेद में तो यह भी कहा गया है कि यह नदिया सिंधु में मिलती हैं। हिमालय से निकलकर और इन्हें सिंधु की रानी एवं पत्नी भी कहा गया है इन सात में से पांच नदियां पंजाब की हैं। (१) सतलज (२) प्याज (३) रावी (४) चिनाब (५) झेलम एवं इससे अलग दो और हैं। (१) सिंधु (२) सरस्वती। यह सात नदियां मिलकर इन्हें सप्त सिंधु कहा जाता है।

ऋग्वेद में सरस्वती के बारे में कहा गया है कि सरस्वती नदी पर्वत से निकलकर समुद्र में जाकर मिलती है। ऋग्वेद में सरस्वती नदी की बहुत ही महिमा बताई गई है, इसे माता एवं देवी के तुल्य बताया गया है एवं ऋग्वेद का १०/७५ सूक्त को नदी सूक्त ही कहा जाता है एवं इस सूक्त में एक साथ अनेक नदियों का वर्णन हमें प्राप्त होता है।⁵¹ तुष्टामासुसर्तु रसा कुभा गोमती श्रोती मैहलू और इस सब नदियों के अलावा भी अन्य नदियों का वर्णन हमें मिलता है। सुवास्तु, सरयू, विदारा, आपाया, दुषद्वती, सदानीरा अंशमति आदि नदियों का उल्लेख हमें ऋग्वेद के अंदर देखने को मिलता है।⁵²

ऋग्वेद और अथर्ववेद में लगभग ६० या ६६ नदियों का वर्णन हमें देखने को मिलता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसको नव्या अर्थात्— नौका की योग्य इन नदियों को बताया गया है। और ऋग्वेद और अथर्ववेद में हमें दो—तीन और कहीं चार नदियों का वर्णन भी हमें मिलता है।

(३) पर्वत—

वेदों में पर्वतों के बारे में ऐसा कहा गया है कि जो पर्वत हैं, वह शुद्ध वायु प्रदान करते हैं और सभी को निरोगी रखते हैं और वेदों में स्वास्थ्य लाभ के लिए पर्वतों पर जाने की भी बात कही गई है कहा गया है कि पर्वत पर जाने से शुद्ध वायु एवं शुद्ध वातावरण हमें प्राप्त होता है बसे मनुष्य निरोगी रहता है उससे मानव कभी बीमार नहीं होता। भौगोलिक स्थिति की चर्चा करें तो हमें इस बात का अवश्य

⁵¹ ऋग्वेद १०.७५.०५

⁵² ऋग्वेद १०.७५.०६

ध्यान देना चाहिए की जो नदियां हैं वह प्रवाह मार्ग से विचलित होने पर ही पर्वतों का होना सच है पर्वतों में भी सबसे जो विशेष है।⁵³

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि।

यातूँश्च सर्वाञ्जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः।।⁵⁴

वह है हिमालय इसके अलावा हिमालय का वर्णन हमें अथर्ववेद में भी देखने को मिलता है। पर्वत शब्द ऋग्वेद में कई जगह हमें देखने को मिलता है।⁵⁵

पर्वतों के होने के कारण ही वर्षा होती है धीरे-धीरे पर्वत नष्ट होते जा रहे हैं वर्षा की भी मात्रा बहुत कम होती जा रही है ऋग्वेद में ऐसा वर्णन है कि इन पर्वतों से ही हमें कई प्रकार की जड़ी बूटियां हमें प्राप्त होती हैं जो कि हमें निरोगी बनाए रखने में बहुत ही सहायक होती हैं मनुष्य की उन वनस्पतियों को पाकर परम आनंद को प्राप्त करते हैं।⁵⁶ यजुर्वेद में कहा गया है कि जो पर्वत हैं वह आध्यात्मिक साधन के सर्वोत्कृष्ट स्थल हैं।⁵⁷

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।

बभरुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।

अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्।।⁵⁸

जो यह पर्वत हैं इन पर्वतों की सुरक्षा के लिए अथर्ववेद में प्रार्थना की गई है। पर्वतों के लिए मनुस्मृति में भी कहा गया है कि यह हिमाचल और विंध्याचल के बीच के भाग को मध्य देश कहा गया है।⁵⁹

(४) नगर

मत्स्यनगर—

⁵³ ऋग्वेद १०.१२१.४

⁵⁴ अथर्ववेद ४.९.९, अथर्ववेद ९.४.२, अथर्ववेद ८.६.२४, अथर्ववेद १९.३९.१

⁵⁵ ऋग्वेद २.१२.११

⁵⁶ ऋग्वेद ३.५४.२०१

⁵⁷ यजुर्वेद २६.१५

⁵⁸ अथर्ववेद १२.१.११

⁵⁹ मनुस्मृति २.२१

मत्स्यनगर का वर्णन हमें ऋग्वेद में मिलता है।⁶⁰ जो कि मत्स्य नगर पूर्वी समुद्र की सीमा पर स्थित था इसके किनारों पर बहुत मात्रा में मछलियों की पैदावार होती थी एवं मत्स्य नगर का वर्णन हमें मनुस्मृति में भी प्राप्त होता है।

गान्धारी—

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।

प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि ददमसि ॥⁶¹

गान्धारी नगर का वर्णन हमें ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों में प्राप्त होता है। और अथर्ववेद के कुछ मंत्र में प्रार्थना की गई है। हे ज्वर तू गांधारी जातियों में जा।

कुरुपंचाल—

कुरुपंचाल नगर का वर्णन हमें शतपथ ब्राह्मण में देखने को मिलता है कुरुपंचाल का पूर्व नाम शतपथ ब्राह्मण में क्रिवी बताया गया है और यहीं पर परीचक्राएवं एकचक्रा नगर का वर्णन मिलता है, जहां राजा पांचाल ने अश्वमेध यज्ञ किया था।⁶² शतपथ ब्राह्मण में पांचाल की राजधानी कल्पिलय का उल्लेख हमें देखने को मिलता है, लेकिन बाद में दोनों की एक हो जाने से इसका नाम कुरुपंचाल रखा गया।

काशी—

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।

प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि ददमसि ॥⁶³

अथर्ववेद में हमें काशी का वर्णन देखने को मिलता है। काशीनगर को वर्तमान में काशी ही माना जाता है जो काशी का राजा धृतराष्ट्र थे उन्हें शतानीक ने युद्ध में पराजित किया था और वेद और बृहदारण्यक उपनिषद में भी अजात शत्रु को ही काशी नरेश बताया गया है।⁶⁴ और काशी एवं विदेह का एकत्र रूप में वर्णन कौषतकि उपनिषद में भी हमें देखने को मिलता है।

⁶⁰ ऋग्वेद-७.१८.६

⁶¹ अथर्ववेद ५.२२.१४

⁶² शतपथ ब्राह्मण १३.५.४.७

⁶³ अथर्ववेद ५.२२.१४

⁶⁴ बृहदारण्यक उपनिषद ३.८.२

कौशल—

कौशल प्रदेश का वर्णन हमें शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है जो कि कौशल देश का वर्णन बहुत ही विस्तार पूर्वक शतपथ ब्राह्मण में किया गया है। जो कौशल नगर है, उसका विदेह नगर के साथ सम्मिलित नाम मिलता है।

मगध—

अथर्ववेद में भी हमें देखने को मिलता है, अंग देश जैसा ही मगध देश में भी ज्वर के जाने की ईश्वर से प्रार्थना की गई है।⁶⁵

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि।

चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि।।⁶⁶

अथर्ववेद में हमें एक जगह ऐसा भी लिखा हुआ मिलता है कि जो मगध देश है, वह व्रात्यका मित्र है। और हमें मगध देश का मित्र व्रात्यलाटलायन श्रोत सूत्र में भी स्वीकार किया गया है।⁶⁷ इससे यही अनुमान लगता है कि मगध की जो संस्कृति एवं सभ्यता थी वह निकृष्ट कोटि की थी लेकिन यही भूमि अपमानित लोगों के लिए नियत समय के बाद श्रेष्ठ भूमि बनी और मगध देश का संगीत बहुत ही लोकप्रिय है और यजुर्वेद में हमें ऐसा बताया गया है कि मगध को पुरुष मेघ बली सूची में जोड़ा गया है।⁶⁸

अङ्ग—

अथर्ववेद में हमें ऐसा वर्णन देखने को मिलता है कि अंग देश का वर्णन हमें मगध देश के साथ मिलता है।⁶⁹

3.6 राष्ट्र के निवासी—

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।

एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः।।⁷⁰

⁶⁵ अथर्ववेद ५.२२.१४

⁶⁶ अथर्ववेद ५.२.५

⁶⁷ लाटायन श्रोतसूत्र ८.६.२७

⁶⁸ यजुर्वेद ३०.२२

⁶⁹ अथर्ववेद ५.२२.१४

राष्ट्र के निवासी कैसे होने चाहिए राष्ट्र के निवासी जो व्यक्ति हैं उनमें तेज और सत्य का व्यवहार होना चाहिए और जो राष्ट्र के निवासी हैं उनका जीवन भरोसा करने लायक होना चाहिए और वह खेती आदि करके उससे अपना रोजगार चलाएं और जो राष्ट्र की प्रजा है वह फिर होनी चाहिए जिससे कि राष्ट्र में कभी संकट आए तो उस संकट का सामना राष्ट्र की प्रजा कर सके और राष्ट्र की प्रजा को शास्त्र बनाना भी आना चाहिए जिससे कि समय आने पर वह उत्तम शास्त्र बना सके।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।

तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो
रश्मिभिरातनोति ।।⁷¹

श्रेष्ठ राष्ट्र वही है जहां धर्मात्मा सज्जन सच्चरित्र और आशीर्वाद व्यक्तियों का निवास रहता है ऐसे व्यक्तियों के रहने से राष्ट्र में प्रवेश करने योग्य एवं रहने की योग्य हो जाता है उस राष्ट्र में कहीं कोई भी व्यक्ति आकर निवास करना बहुत ही उचित समझते हैं अगर श्रेष्ठ व्यक्ति किसी राष्ट्र में निवास कर रहे हो तो ऐसा विशाल और कीर्ति वाला वह राष्ट्र हो जाता है और अगर जिस राष्ट्र का राजा प्रजा की उन्नति करता है तो वह राष्ट्र प्रतिदिन उन्नति करता है दिन पर दिन वह राज्य सुख समृद्धि से भरपूर होता जाता है इसलिए अथर्व वेद में कहा गया है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रजा की उन्नति बहुत ही आवश्यक होती है।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।

सा नौमधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।।⁷²

जनता में आपस में फूट ना हो उसके लिए अथर्ववेद में संगठन और सामंजस्य की बहुत विस्तार पूर्वक व्याख्या की गई है, उसमें कहा गया है कि सब के विचार आपस में मिले सब एक दूसरे से मिले संपर्क बढ़ाएं और सबके मन एक समान हो सभी के मन में मंत्रणाएँ, सभाएं एवं चित सब के समान हो और सब एक

⁷⁰ अथर्ववेद ३.१९.५

⁷¹ अथर्ववेद १२.१.१५

⁷² अथर्ववेद १२.१.७

मत एवं एक विचार होकर कार्य करें सबके जो भी संकल्प हैं विचार हैं वह सब समान हो इसलिए देवता बहुत ही सावधानी पूर्वक इस पृथ्वी की रक्षा करते हैं उसी प्रकार पृथ्वी पर रहने वाली जनता का भी पूरा कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र की पूर्ण रूप से सावधानी से रक्षा करें।

राष्ट्रीय एकता ही एक ऐसी अग्नि है जो कि सदैव जलती रहना चाहिए राष्ट्रीय एकता के लिए बहुत आवश्यक है कि जो विरोध वाली बातें होती हैं वह ना हो और ना ही कहीं जाएं और यह जो राष्ट्र की अग्नि को हित की भावना से ही इसको जलने दे राष्ट्र के हित के लिए सब के मन कर्म विचार समान होना चाहिए और जो राष्ट्र या हम से संतुष्ट नहीं है उन्हें प्रेम प्यार से राष्ट्र के हित में लाना चाहिए सभी को परस्पर प्रेम भाव से रहें और विवाह आदि के द्वारा परस्पर संबंध होना चाहिए एवं राष्ट्र की उन्नति के लिए शत्रु अपना हो या दूसरे का देश का हो या विदेश का सब को नष्ट कर देना ही राष्ट्र की उन्नति है। वैदिक साहित्य में ऋषियों ने प्रजापति सुजल आदि को ही राष्ट्र कहा है लेकिन उसका मतलब यह नहीं है की वैदिक ऋषियों को केवल इन पदार्थों में ही राष्ट्रत्व की कल्पना की है उन्होंने इस प्रकार के राष्ट्र के हर तत्व पर विचार किया है कि वह जो राष्ट्र का स्वरूप है वह किसी विशिष्ट सीमित भूभाग या फिर देश पर ही लागू ना होकर वह एक आदर्श राष्ट्र की प्रतिमा के रूप ऋषियों ने माना है।

चतुर्थ अध्याय

वैदिक राष्ट्र के धारक गुण

अथर्ववेद के भूमि सूक्त में जहाँ वैदिक ऋषियों की राष्ट्र विषयक धारणा का बोध होता है, वहीं पर हमें राष्ट्र विषयक अनेक तत्त्वों का भी ज्ञान होता है। भूमि सूक्त के प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही मातृभूमि को धारण करने वाले अनेक तत्त्व हैं, उनका यहां हमें स्पष्ट उल्लेख है। सभी लोग अपने राष्ट्र को धारण नहीं कर सकते, और न ही इतने बड़े राष्ट्र का पोषण कर सकते हैं। जो लोग विशेष एवं अनेक गुणों से युक्त हैं, वे ही लोग राष्ट्र की उन्नति कर सकते हैं। दूसरे लोग तो सिर्फ संख्या बढ़ाने के लिए कारण मात्र हैं। राष्ट्र को धारण करने के लिए मनुष्य में अनेक गुण होने चाहिए। इसका उल्लेख हमें भूमि सूक्त के प्रथम मंत्र में देखने को मिलता है। मन्त्र में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।¹

बृहत् सत्य, ऋत, उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्म, और यज्ञ तत्त्व आदि ही राष्ट्र को धारण करते हैं।

4.1 वेदों में राष्ट्र के धारक गुण—

(9) राष्ट्र को धारण करने वाला सर्वप्रथम गुण—

राष्ट्र को धारण करने वाला सर्वप्रथम गुण 'ब्रह्म सत्य' है। जिन मनुष्यों में सत्य संकल्प एवं सत्यप्रियता, सत्यपालन में आत्मसर्वस्व—समर्पण करने की तत्परता है, वे ही राष्ट्र का उद्धार कर सकते हैं। सूक्त का आरम्भ ही सत्य शब्द से होता है। वैदिक राष्ट्रियता की अवधारणा में सत्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण गुण है।

सत्य ही परमेश्वर का स्वरूप है। सत्य ही स्वयंभू प्रजापति है। उसी सत्य रूप स्वयंभू प्रजापति में आपः रूप परमेष्ठी प्रतिष्ठित हैं। आपः सत्ये (प्रतिष्ठिताः)² शतपथ ब्राह्मण का स्पष्ट रूप से कथन है कि जो विद्वान् सदा सत्य बोलता है, वह कभी समाप्त न होने वाला यश प्राप्त करता है।

¹ अथर्ववेद १२.१.१

² ऐतरेय ब्राह्मण ३.६. गोपथ ब्राह्मण २.३.२

एक ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव, तस्मादेषां जितमनपजय्यं
तस्माद्यश एवं ह वा अस्य जितमनपजय्यमेवं यशो भवति य एवं विद्वान्
सत्यं वदति।³

इसलिये जिस राष्ट्र में सत्यवादी लोग होते हैं, वे ही राष्ट्र को यशस्वी बनाते हैं। उनका राष्ट्र कभी किसी शत्रु के द्वारा पराजित नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति सदा सत्य बोलता है, उसका तेज उत्तरोत्तर इसी प्रकार बढ़ता है, जिस प्रकार समिद्ध अग्नि में घृत डालने से अग्नि का तेज अधिकाधिक बढ़ता जाता है। किन्तु जो व्यक्ति असत्य बोलते हैं, उनका तेज उत्तरोत्तर उसी प्रकार क्षीण होता जाता है, जिस प्रकार समिद्ध अग्नि जल डालने पर निस्तेज हो जाता है और धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है।

स यः सत्यं वदति यथाग्निं समिद्धं तं घृतेनाभिषिञ्चेदेवं हैनं स
उद्दीपयति तस्य भूयो भूय एव तेजो भवति श्वःश्वः श्रेयान्भवति।

अथ योऽनृतं वदति यथाग्निं समिद्धं तमुदकेनाभिषिञ्चेदेवं हैनं स
जासयति तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति। श्वः श्वः
पापीयान्भवति तस्मादु सत्यमेव वदेत्।⁴

जिस राष्ट्र में सत्यवादियों की संख्या बढ़नेवाली होगी वह राष्ट्र उत्तरोत्तर तेजस्वी और शक्तिशाली होता जायेगा। किन्तु जहाँ अनृतभाषियों की संख्या बढ़ने वाली होगी वह राष्ट्र धीरे धीरे नष्ट हो जाता है। इसलिए अथर्ववेद के ऋषि ने सत्य को राष्ट्र के धारक तत्त्वों में सर्वप्रथम स्थान दिया। मुण्डकोपनिषद् के ऋषि ने इसीलिये 'सत्यमेव जयते नानृतम्' का उद्घोष किया है।

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।

येनाक्रमन्त्यायो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।⁵

जिसे भारत ने आज भी उसको अपना राष्ट्र आदर्शवचन माना है। सत्य राष्ट्र को धारण करने वाला प्रथम तत्त्व है, इसलिये वैदिक राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक में सत्यभाषण को विकसित करने तथा उसको अपने जीवन का अंग बनाने में विशेष

³ शतपथ ब्राह्मण ३.४.२.८

⁴ शतपथ ब्राह्मण २.२.२१९

⁵ मुण्डकोपनिषद् ३६.०१

आग्रह दिखाया गया है। क्या राजनीतिक, क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या आर्थिक, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य को स्वीकार किया गया है।

शिक्षा प्रदान करते समय शिष्य को **सत्यं वद⁶** का उपदेश, गृहस्थ को यज्ञ प्रारम्भ करते समय **‘इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि’** अर्थात् अनृत भाषण या अनृत-आचरण से उठकर सत्य भाषण तथा सत्य आचरण का संकल्प आदि राष्ट्र के व्यक्ति के जीवन को सत्यमय बनाने के ही उद्देश्य से थे। धन्य था वह वैदिक राष्ट्र जो **‘सत्यमेव जयते’** के आदर्श आचरण पर प्रतिष्ठित था। सत्याग्रह रूप शस्त्र को निःशस्त्र प्रजा शस्त्रधारी राजा के विरुद्ध काम में ला सकती है। सामाजिक सत्य और राष्ट्रिय सत्य आदि कई भेद हो सकते हैं। सामुदायिक सत्यपालन के अभ्यास से ही सत्याग्रह का मार्ग सफल हो सकता है।

सत्य आचरण से असत्य का विवेक—

(२) राष्ट्र को धारण करने वाला दूसरा गुण।

राष्ट्र को धारण करने वाला दूसरा गुण ऋत अर्थात् औचित्य भाव है। ऋग्वेद का ऋषि राष्ट्र को धारण करने में ऋत का होना अति आवश्यक बताता है। राष्ट्र का अध्यक्ष राजा होता है। उसी पर सम्पूर्ण राष्ट्र की जिम्मेदारी होती है। राष्ट्राध्यक्ष जैसा होगा वैसी ही उस राष्ट्र की जनता होगी। यदि वह श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न होगा और गुणग्राही होगा, उस राष्ट्र की जनता भी श्रेष्ठ गुणों से युक्त और गुणग्राही बनेगी। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट रूप से कहा है कि श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करता है, अन्य व्यक्ति भी वैसा ही आचरण करते हैं, वे उसी के आचरण को प्रमाण मानते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।⁸

यदि राष्ट्राध्यक्ष श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न नहीं हुआ, अथवा वह गुणग्राही नहीं हुआ, तो जनता भी वैसी ही हो जायेगी। ऐसी स्थिति में न कहीं न्याय होगा और न

⁶ तैत्तरीय उपनिषद् १.११.१

⁷ माध्यन्दिन यजुर्वेद १.१

⁸ गीता ३२१

ही गुणग्राहकता की धारणा विकसित होगी। सभी लोग स्वार्थी हो जायेंगे। समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है, लोग भूल जायेंगे। अपना स्वार्थ साधन ही सर्वोपरि दिखाई पड़ेगा। जिस राष्ट्र में यह स्थिति उत्पन्न हो जायेगी, वह राष्ट्र पतन के मुख में गिरेगा। इसीलिये वैदिक ऋषि राष्ट्राध्यक्ष को सचेत करते हैं कि वह अपने अन्दर ऋत-गुण का विकास करें और इसी के द्वारा राष्ट्र का शासन करे। **ऋतेन राजन्नृतं विविञ्चन् मम् राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि।⁹**

अनृत या गलत आचरण को अनृत आचरण से नहीं रोका जा सकता अनृत को ऋत से जीता जा सकता है। ऋत का आचरण करने वाले व्यक्ति के सामने अनृत आचरण वाले ठहर नहीं सकते। ऋत का सत्य के साथ अटूट सम्बन्ध है। ऋत और सत्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। प्रकृति जगत् में जो भी तत्त्व दिखाई पड़ते हैं और उनमें जो कुछ भी व्यवस्था दिखाई पड़ती है, वह सब ऋत और सत्य के कारण हैं। शतपथ ब्राह्मण कहता है की यह अग्नि ऋत है और वह सूर्य सत्य है। यदि वह सूर्य ऋत है तो अग्नि सत्य है। **अयं वा अग्निमसावादित्यः सत्यं यदि वासावृतमयं सत्यमुभयं वैतदयमग्निः।¹⁰** अथवा वह अग्नि ऋत और सत्य दोनों से युक्त है। अन्यत्र उल्लेख है कि यह पृथिवी ही ऋत है।¹¹ अथवा पृथिवी ऋत का ही व्योम अर्थात् विस्तार है।¹² ऋत ही परमेष्ठी का रूप है। ग्रह ही ऋत की योनि हैं। दिशाये ही ऋत के अस्तित्व की द्योतक हैं। **दिशो वा ऋतस्य सत्यम्।¹³** द्यौ ऋत का विशिष्ट धर्म है। **द्यौर्वा ऋतस्य विधर्मः।¹⁴** ब्रह्म ही ऋत है। **मित्रो वा ऋतं ब्रह्म हि मित्रो ब्रह्म हतम्।¹⁵**

ऋग्वेद से ज्ञात होता है की यह गुण राष्ट्राध्यक्ष के लिये अत्यन्त आवश्यक था। हमारा कर्म राष्ट्र के अहित के लिये है और कौन सा कर्म राष्ट्र के अहित के

⁹ ऋग्वेद ५.१२४.१०

¹⁰ शतपथ ब्राह्मण ११०.४.४

¹¹ कठोपनिषद् ५.१९

¹² तैत्तरीय ब्राह्मण ४.५.३.३

¹³ तैत्तरीय ब्राह्मण ४.५.३.३

¹⁴ तैत्तरीय ब्राह्मण ४.५.३.३

¹⁵ शतपथ ब्राह्मण ५.१.४.६

लिये है, इसका विवेक ऋत के द्वारा ही हो सकता है। इस गुण के अभाव में राष्ट्र की रक्षा नहीं हो सकती। राष्ट्र का कोई अधिकारी यदि अनृत आचरण करता था, राजा उसको दण्डित करता था किन्तु क्या ऋत आचरण है तथा क्या अन्नत-आचरण है, इसका निर्णय राष्ट्र का धर्माध्यक्ष ही करता था।

(३) राष्ट्र को धारण करने वाला तीसरा गुण—

राष्ट्र की रक्षा के लिये उग्रता की भावना को धारण करने वाला वह तीसरा गुण है— उग्रता । राष्ट्र की रक्षा शक्ति के द्वारा ही की जा सकती है। यदि शक्ति नहीं तो राष्ट्र रक्षित नहीं हो सकता। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में 'उग्रता' को में इन्द्र से प्रार्थना करते समय कहा गया है कि हे इन्द्र! तुम चूँकि उग्रता से युक्त हो, इसलिये छोटे तथा बड़े हर प्रकार के युद्धों में अपने उग्र संरक्षणों से हमारी रक्षा करो।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।

उग्र उग्राभिरुतिभिः।¹⁶

इन्द्र देवताओं में सबसे बड़ा शासक है। वह राष्ट्राध्यक्ष है, इसलिये उग्रता उसमें कूटकूट कर भरी है। इसी उग्रता के कारण वह अपने शत्रुओं का संहार करता है। इसी उग्रता के कारण अनेक मन्त्रों में उसे वज्रबाहु कहा गया है।

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।

ओजिष्ठेभिर्नृपतिव्रजबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यूनः॥

गिरिन यः स्वतवाँ ऋष्य इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः।

आदता वगं स्थविरं न भीम उदनेव कोशं वसुना न्यृष्टम्।¹⁷

मरुद्गण इन्द्र के सैनिक हैं, इसलिये उनके लिये भी 'उग्राः' विशेषण का प्रयोग किया गया है। य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा।¹⁸ वे मातृभूमि के उग्र प्रहरी हैं। ऋग्वेद २.३३.६ में रुद्र के लिये भी 'उग्र' विशेषण का प्रयोग किया गया है।

¹⁶ ऋग्वेद ४.७.१

¹⁷ ऋग्वेद १.२०.४ ऋग्वेद ६.२०.४

¹⁸ ऋग्वेद १.१९.१

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।

ईशानादस्य भुवनस्य भूरेन वा उ योषद्बुद्रादसुर्यम् ।।¹⁹

इन्द्र, मरुद्गण, रुद्र आदि के लिये जिस प्रकार उग्रता को एक विशिष्ट गुण माना गया है। उसी प्रकार राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्र की रक्षा के लिये उग्रता आवश्यक है।

इस गुण के कारण व्यक्ति अपने जीवन की भी परवाह नहीं करता, मातृभूमि की रक्षा के लिये हंसते-हंसते बलिदान के लिये उद्यत हो जाता है। उग्रता गुण उग्रता नहीं होगी जब वह राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता। दूसरी बात के कारण दूसरे राष्ट्र भी उस पर आक्रमण करने से डरते हैं। जिस राष्ट्र की पहचान इस रूप में हो कि वहां के नागरिक अत्यन्त उग्र हैं, दूसरा राष्ट्र उसकी ओर आँख नहीं उठा सकता। उस पर विदेशी आक्रमण का भय नहीं रहता। इसके विपरीत, दूसरे राष्ट्र हमेशा उससे मित्रता के लिये उत्सुक रहते हैं। एक ऋषि इन्द्र से कहता है कि हे इन्द्र! तुम उग्र हमारे रक्षक बनो, ताकि तुमसे हमारी मित्रता कभी अलग न हो।

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।

न चिद्यथा न सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ।।²⁰

यह बात उल्लेखनीय है कि वैदिक ऋषि उस उग्रता को तो गुण मानता है जो राष्ट्र की रक्षा के उद्देश्य से है। किन्तु यदि उग्रता अदेव मन से अर्थात् किसी पर मात्र आक्रमण करने की दृष्टि से प्रेरित हो, तो वह गुण नहीं। ऐसे उग्र हिंसा को उन्हीं के शस्त्रों से उन्हीं को हिंसित करने के लिये बृहस्पति से प्रार्थना की गई है।

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।

बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ।।²¹

राष्ट्रभक्तों उग्रता राष्ट्र की रक्षा के लिये होती है, किसी अन्य राष्ट्र पर आक्रमण करने के लिये नहीं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में राष्ट्री देवी स्वयं कहती है कि मैं जिसको चाहती हूँ, अर्थात् जिससे प्रेम करती हूँ उसको उग्र बनाती हूँ, उसी को

¹⁹ ऋग्वेद १.३३.२

²⁰ ऋग्वेद २०.१६.४

²¹ ऋग्वेद २.२३.२

ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न करती हूँ, उसी को मन्त्रद्रष्टा ऋषि बनाती हूँ, उसी को सुन्दर मेधा वाला बनाती हूँ।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषि तं सुमेधाम्।²²

इस प्रकार राष्ट्री देवी द्वारा प्रदत्त उग्रता एक श्रेष्ठ गुण है, जो राष्ट्रभक्त धारण करते हैं। अथर्ववेद के भूमिसूक्त में ऋषि स्पष्ट रूप से कहता है कि जो उससे द्वेष करता है, युद्ध करना चाहता है, तथा जो मन अथवा शस्त्र से दबाना चाहता है, उनके प्रति ही उग्रता प्रदर्शित करनी चाहिये।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।

तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि।²³

एक वैदिक पुरोहित के अन्दर राष्ट्ररक्षा के लिये कितनी उग्रभावना है, यह अथर्ववेद के निम्न मन्त्रों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।

संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः।²⁴

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।

इन्द्रस्य वज्रात्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः॥

एषामहमामुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।

एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः।²⁵

(४) राष्ट्र को धारण करने वाला चौथा गुण—

राष्ट्रहित की दीक्षा ही राष्ट्र को धारण करने वाला चौथा गुण है— दीक्षा। दीक्षा का अर्थ है— उत्तम संस्कार जिससे कर्मों में दक्षता प्राप्त होती है। यही कर्मों

²² ऋग्वेद ५.१२५.१०

²³ अथर्ववेद १४.१.१२

²⁴ अथर्ववेद ३.१९.१

²⁵ अथर्ववेद ३.१९.४.५

में दक्षता या कुशलता योग भी कहलाती है। **योगः कर्मसु कौशलम्**।²⁶ यह दक्षता दीक्षा व्रत से प्राप्त होती है। यजुर्वेद का एक ऋषि स्पष्ट रूप से कहता है।

व्रतेन दीक्षामाजोति दीक्षयाजोति दक्षिणाम्।

दक्षिणा श्रद्धामाजोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।²⁷

अर्थात्— व्रत से दीक्षा प्राप्त होती है, दीक्षा से मनुष्य दक्षिणा प्राप्त करता है, दक्षिणा से श्रद्धा प्राप्त होती है तथा श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। जिस दीक्षा से उत्तरोत्तर दक्षिणा, श्रद्धा तथा सत्य की प्राप्ति होती है, उस दीक्षा का आधार व्रत है। व्रत ग्रहण करने से ही व्यक्ति दीक्षित होता है। व्रतग्रहण के अभाव में कोई दीक्षित नहीं हो सकता। व्रत ग्रहण क्या है? राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का जो भी विहित कर्म है, उस कर्म को धर्म मानकर करने का संकल्प ही व्रत है। संकल्प सदा मन से होता है, इसलिये जब व्यक्ति एक बार मन में यह संकल्प कर लेता है कि वह उस विहित कर्म को अवश्य करेगा, तब उसके सम्पन्न करने के लिये आवश्यक साधनों का चिन्तन करता है, और तदन्तर उस कर्म में उसकी प्रवृत्ति होती है। राष्ट्र में चार वेद में राष्ट्र एवं राष्ट्रियता की अवधारणा ही प्रकार की वृत्ति वाले लोग होते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। ब्राह्मणवृत्ति राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति है। यजुर्वेद ब्राह्मण वृत्ति वाले व्यक्तियों के व्रतग्रहण का उल्लेख करता हुआ कहता है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।²⁸

अर्थात्— हे व्रतपति! अग्नि, मैं व्रत करूँगा उस व्रत को धारण करने में मैं समर्थ होऊँ तथा वह मेरा व्रत राष्ट्र को पूर्ण फल देने वाला होवे। चूँकि ब्राह्मणवृत्ति राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति है, ज्ञान की प्रतीक है, इसलिये ब्राह्मणवृत्ति वाले व्यक्ति का जब यह संकल्प होगा कि वह राष्ट्र में ज्ञानसम्पादनरूप व्रत का आचरण करेगा, तब जहाँ जहाँ वह अज्ञानता को देखेगा, उसे दूर करने के लिये सतत सचेष्ट रहेगा। उसका यह व्रत राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति को विकसित करेगा। जिस राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति विकसित होगी, वह राष्ट्र कभी नष्ट नहीं हो सकता। उसकी

²⁶ गीता २५०.

²⁷ यजुर्वेद ३०.१९

²⁸ यजुर्वेद ९.१

आत्मा सदा अमर रहेगी। इसी ब्राह्मणवृत्तिरूप राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति का परिणाम है कि विश्व की अन्य संस्कृतियां मिट गई, किन्तु भारतीय संस्कृति अभी भी कायम है। इसलिये ब्राह्मणवृत्ति वाले व्यक्तियों का सदा यही संकल्प होना चाहिये कि उनके राष्ट्र में अज्ञानता का साम्राज्य न होने पावे। उनका संकल्प होना चाहिये कि अज्ञानता के अन्धकार को वे राष्ट्र में व्याप्त नहीं होने देंगे। जैसे सूर्य के प्रकाशित होने पर अन्धकार नहीं होता, उसी प्रकार ब्राह्मणवृत्ति रहते राष्ट्र में अज्ञान नहीं रह सकता। इसीलिये तो ब्राह्मणवृत्तिधारी वैदिक ऋषि उद्घोष करते हैं।

‘वयं राष्ट्रे जागृत्याम पुरोहिताः’ अर्थात्— ब्राह्मणवृत्तिधारी हम पुरोहित राष्ट्र में ज्ञानप्रसार के लिये सदा जागरूक रहें। क्षात्रवृत्ति राष्ट्र की शारीरिक शक्ति है। क्षात्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के व्रत का उल्लेख करता हुआ ऋषि कहता है।

इन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

अर्थात्— हे व्रतपति! इन्द्र, मैं व्रत का आचरण करूँगा, इस व्रत को धारण करने में मैं समर्थ होऊँ, तथा यह मेरा व्रत राष्ट्र को पूर्ण फल देने वाला हो। चूँकि क्षात्रवृत्ति राष्ट्र की शारीरिक शक्ति है, रक्षा की प्रतीक है, इसलिये क्षात्रवृत्ति वाले व्यक्ति का जब यह संकल्प होगा कि वह राष्ट्र के रक्षारूप व्रत का आचरण करेगा, तब राष्ट्र में जहाँ कहीं भी किसी प्रकार की असुरक्षा दिखाई पड़ेगी, उसे दूर करने के लिए वह सतत सचेष्ट रहेगा। उसका यह संकल्प राष्ट्र की सुरक्षाशक्ति को विकसित करेगा।

जिस राष्ट्र की सुरक्षाशक्ति विकसित होगी, उस राष्ट्र को कोई अपने अधीनस्थ नहीं कर सकता। इन्द्र शक्ति का अधिष्ठाता देव है, इसलिये क्षात्रवृत्ति स्वीकार करने वाले व्यक्तियों के व्रत को पूर्ण करने वाला भी वही है। आज राष्ट्र के सभी सुरक्षाकर्मियों के लिये वैदिक ऋषि का यही अमर संदेश है कि वे देश की सुरक्षा का संकल्प लें, उसके पालन में सतत तत्पर रहें, तभी उनके संकल्प का पूर्ण फल सम्पूर्ण राष्ट्र को प्राप्त होगा। वैश्यवृत्ति राष्ट्र को पोषक शक्ति है। वैश्यवृत्ति वाले व्यक्तियों के व्रत का उल्लेख करता हुआ ऋषि कहता है।

आदित्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।²⁹

²⁹ तैत्तिरेय ब्राह्मण ३.७.४.७

अर्थात्— हे व्रतपति आदित्य, मैं व्रत का आचरण करूँगा। इस व्रत का पालन करने में मैं समर्थ होऊँ तथा यह मेरा व्रत सम्पूर्ण राष्ट्र को पूर्ण फल देने वाला हो। चूंकि वैश्यवृत्ति राष्ट्र की पोषक शक्ति है तथा पोषण की प्रतीक है, इसलिये वैश्यवृत्ति वाले व्यक्ति का जब यह संकल्प होगा कि वह राष्ट्र के पोषणरूप व्रत का आचरण करेगा, तब राष्ट्र में जहाँ कहीं भी अपोषण तत्त्व दिखाई पड़ेगा, उसको दूर करने के लिये वह सतत् सचेष्ट रहेगा। उसका यह संकल्प राष्ट्र के पोषण तत्त्व को विकसित करेगा। उसके रहते किसी वस्तु का अभाव नहीं होने पायेगा। अगर एक स्थान पर कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती, और उसकी वहाँ के निवासियों के लिये आवश्यकता है, वह किसी भी प्रकार से उसे वहाँ पहुँचाएगा। जैसे शरीर की धमनियाँ शुद्ध रक्त को शरीर के प्रत्येक अंग में पहुँचाती हैं, उसी प्रकार वह वैश्यवृत्तिरूप संकल्प वाला व्यक्ति जीवन के लिये आवश्यक सामग्री को राष्ट्र में सर्वत्र उपलब्ध करायेगा। आदित्य पोषण का अधिष्ठाता देवता है। इसलिये वैश्यवृत्ति स्वीकार करने वाले व्यक्तियों के व्रत को भी वही पूर्ण करने वाला है। आज राष्ट्र के सभी व्यवसायियों, व्यापारियों के लिये वैदिक ऋषि का यही संदेश है कि वे राष्ट्र के पोषण का संकल्प लें, उसके पालन में सतत तत्पर रहें, तभी उनके संकल्प का पूर्ण फल राष्ट्र प्राप्त होगा। उनके इस शुभ संकल्प से किसी वस्तु का कृत्रिम अभाव नहीं हो सकता। शूद्रवृत्ति श्रम पर आधारित राष्ट्र की उत्पादक शक्ति है। इसलिये इस वृत्ति वाले व्यक्तियों का यह संकल्प होना चाहिये कि उनके रहते राष्ट्र में उत्पाद्य वस्तुओं के उत्पादन में कमी न आने पाये। अन्न, वस्त्र, ऊर्जा आदि का प्रचुर मात्रा में उत्पादन करें।

जब राष्ट्र का श्रमजीवीवर्ग यह संकल्प लेगा, तब कृषिकर्म, उद्योग, आदि में किसी प्रकार का संकट नहीं आयेगा। श्रमिक के अभाव में कृषि उत्पादन बन्द नहीं होगा फैक्ट्रियों में श्रमिक और मालिकों के संघर्ष में तालाबन्दी नहीं होगी वस्तु के उत्पादन में कमी नहीं होगी। जिस राष्ट्र में वस्तुओं का उत्पादन नहीं होगा वह राष्ट्र दूसरे पर अवलम्बित होगा और न चाहते हुये भी दूसरों की शर्तें माननी पड़ेंगीय अपने स्वाभिमान को बेचना पड़ेगा। फलस्वरूप, राष्ट्र आवश्यक वस्तुओं के पर्याप्त उत्पादन के अभाव में पराधीन हो जायेगा। इसलिये शूद्रवृत्ति वालों को यह संकल्प अवश्य लेना चाहिये कि उनके रहते राष्ट्र में वस्तु के उत्पादन में कमी न

आवे। इस प्रकार राष्ट्र में रहने वाले ब्राह्मणवृत्ति, क्षात्रवृत्ति, वैश्यवृत्ति तथा शूद्रवृत्ति के लोगों को अपनी-अपनी वृत्ति के लिये अपेक्षित योग्यता एवं दक्षता ही दीक्षा है। यह दीक्षा उनकी अपनी-अपनी वृत्ति के सम्यक् आचरण करने के संकल्परूप व्रत से प्राप्त होती है। इसीलिये ऋषि ने कहा कि व्रत से ही दीक्षा प्राप्त होती है। दीक्षा से व्यक्ति को अपनी-अपनी वृत्ति के अनुसार दक्षिणा मिलती है। दक्षिणा भिक्षा या दान नहीं है, बल्कि व्यक्ति की दक्षता या उसके उत्साहपूर्वक कार्य करने का पुरस्कार है। इस प्रकार जब व्यक्ति को उसकी योग्यता के आधार पर दक्षिणा प्राप्त होती है, उसके प्रति श्रद्धाभाव से उसकी समृद्धि की सदा चेष्टा करता है। जिस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा भाव धारण करता है, उसके प्रति कभी अनिष्ट होता नहीं देख सकता। इसी श्रद्धाभाव से सत्य की प्राप्ति होती है, जिसको अथर्ववेद के ऋषि ने राष्ट्र को धारण करने वाला प्रथम तत्त्व माना है। ब्राह्मणग्रन्थों में दीक्षा धारण करने की बड़ी प्रशंसा की गई है। मनुष्य तब तक कोई यज्ञ नहीं कर सकता, जब तक वह दीक्षित नहीं होता। जो व्यक्ति दीक्षा धारण करता है, वह अपने मुख में अग्नीषोम को धारण करता है। अग्नीषोमौ वा एतमन्तर्जम्भ आदधति यो दीक्षते।³⁰ इस मर्त्यलोक से ऊपर उठकर देवलोक को प्राप्त करता है।

उद्गृह्णीते वा एषोऽस्माल्लोकाद् देवलोकमभि यो दीक्षते।

एति वा एषोऽस्माल्लोकाद्यो दीक्षते जनं ह्येति देवलोकमभ्यारोहति।³¹

सभी देवताओं को वह प्रसन्न करता है। सर्वाभ्यो वा एष देवताभ्यो आप्यायते यो दीक्षते।³² दीक्षा धारण करने से मनुष्य विष्णु का स्वरूप बन जाता है। यदहर्दीक्षते तद्विष्णुर्भवति।³³ अन्तरिक्षं दीक्षा। तथा वायुर्दीक्षया दीक्षितः।³⁴ तैत्तरीय ब्राह्मण में अन्तरिक्ष को दीक्षा वायु को उस दीक्षा से दीक्षित जल को दीक्षा वरुण को उस दीक्षा से दीक्षित आपो दीक्षा। तथा वरुणो राजा दीक्षया दीक्षितः।³⁵ दिशाओं को

³⁰ मा.शतपथ ब्राह्मण ३.३.४.२१, ६.३.१९

³¹ मा.शतपथ ब्राह्मण ३.१.४.१ मै.सं. ३.६.१

³² मै.सं. ३.६.७

³³ मा.शतपथ ब्राह्मण ३.२.१.१७

³⁴ तैत्तरीय ब्राह्मण ३.७.७.५

³⁵ तैत्तरीय ब्राह्मण ३.७.७.६

दीक्षा चन्द्रमा को उस दीक्षा से दीक्षित दिशो दीक्षा । तया चन्द्रमा दीक्षया दीक्षितः।³⁶
य ओषधियों को दीक्षा राजा सोम को उस दीक्षा से दीक्षित ओषधयो दीक्षा । तया
सोमो राजा दीक्षया दीक्षितः³⁷ या मन को दीक्षा प्रजापति को उससे दीक्षित

वायुर्दीक्षितोऽन्तरिक्षं दीक्षा ।

आदित्यो दीक्षितो द्यौर्दीक्षा । प्रजापतिर्दीक्षितो मनो दीक्षा।³⁸

द्यौ को दीक्षा तथा आदित्य को उस दीक्षा से दीक्षित द्यौर्दीक्षा । तयाऽदित्यो
दीक्षया दीक्षितः।³⁹ पृथिवी को दीक्षा तथा अग्नि को उस दीक्षा से दीक्षित पृथिवी
दीक्षा । तयाऽग्निर्दीक्षया दीक्षितः⁴⁰ या वाक् को दीक्षा तथा वायु को उस दीक्षा से
दीक्षित वाग् दीक्षा । तया प्राणो दीक्षया दीक्षितः⁴¹ कहा गया है । ऋत और सत्य को
भी दीक्षा कहा गया है । ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा।⁴² दीक्षा से ही मनुष्य अपनी
आत्मा को पवित्र करता है । दीक्षवैवात्मानं पुनीते।⁴³ जब तक आत्मा पवित्र नहीं होती
तब तक व्यक्ति राष्ट्र के प्रति वफादार नहीं हो सकता । इसलिये दीक्षा ही राष्ट्र के
प्रति वफादार होने का साधन है । दीक्षित व्यक्ति राष्ट्र के प्रति घातक नहीं हो
सकता । क्योंकि दीक्षा सत्य में प्रतिष्ठित है । सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठिता भवति।⁴⁴
दीक्षित उसी को कहा जाता है जो सत्य बोलता है । स यः सत्यं वदति स
दीक्षितः।⁴⁵ आज राष्ट्र, प्रान्त, जनपद, ग्राम आदि किसी भी स्तर पर जो सदस्य चुने
जाते हैं, उनका शपथ समारोह राष्ट्र, प्रान्त आदि के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त किये
जाने के लिये किया जाता है । किन्तु इसका स्वरूप वह नहीं, जो वैदिक दीक्षा का
था ।

³⁶ तैत्तरीय ब्राह्मण ३.७.७.६

³⁷ तैत्तरीय ब्राह्मण ३.७.७.७

³⁸ जैमिनीय ब्राह्मण २.५३

³⁹ तैत्तरीय ब्राह्मण ३.७.७.५

⁴⁰ तैत्तरीय ब्राह्मण ३.७.७.४-५

⁴¹ तैत्तरीय ब्राह्मण ३.७.७.७

⁴² ऐतरेय ब्राह्मण १.६, तु. जै.ब्रा. २.२००

⁴³ कठोपनिषद् ३४.४

⁴⁴ मा. शतपथ ब्राह्मण १४.६.२४

⁴⁵ कौषितिकि ब्राह्मण ७.३

(५) राष्ट्र को धारण करने वाला पाँचवा गुण—

राष्ट्र को धारण करने वाला पाँचवा गुण वहाँ के व्यक्तियों का तपोमय जीवन है। शीत—उष्ण, लाभ—हानि, सुख—दुःख, मान—अपमान आदि सब कुछ सहकर भी राष्ट्रहित के लिये कार्य में सदा तत्पर रहना तप है। श्रमहीन जाति या समाज राष्ट्र की वेद में राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की अवधारणा रक्षा नहीं कर सकता। छोटे से लेकर बड़े तक प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रहित में श्रम करना चाहिये। राष्ट्रीय सन्दर्भ में तप का अर्थ है जिसका जो कार्य है उसको नियमित रूप से राष्ट्र का कार्य समझ कर करना। एक अध्यापक यह समझकर कार्य करता है कि उसका कार्य राष्ट्र का है वह तपस्वी है। किन्तु यदि यह समझकर करता है कि उसके बदले उसे वेतन मिल रहा है, मान—सम्मान मिल रहा है, तो यह कार्य स्वार्थयुक्त कहलायेगा। इसमें तप नहीं है। उसका यह कार्य उसे पतित बना सकता है। जिसका जो भी कार्य हो उसे वह अपना व्यक्तिगत कार्य न समझकर राष्ट्र का कार्य समझे, यह तप कहलायेगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से जो यह कहा था कि जो कुछ तुम कर्म कर रहे हो, उसे मेरे लिये समर्पणभाव से करो। राष्ट्रीय सन्दर्भ में उस भाव को यों लेना चाहिये कि मनुष्य जो कुछ करता है, उसका फल राष्ट्र को समर्पित करके करें। वह यह समझे कि जो बुरा कर्म कर रहा है अगर वह भी राष्ट्र का कर्म है तो राष्ट्र को बदनाम करने वाला होगा। इसलिये राष्ट्र को समर्पित करने की भावना से जब वह कार्य करेगा, ऐसा कुछ भी नहीं करेगा जिससे राष्ट्र की बदनामी हो। तप श्रम की महत्ता का द्योतक है। तप और श्रम से ही राष्ट्र महान् बनता है। जिस राष्ट्र के निवासियों ने श्रम के महत्त्व को समझ लिया है, वह राष्ट्र कभी अभावग्रस्त या दुःखी नहीं रह सकता। जीवन का सब सुख उस राष्ट्र के वासियों को प्राप्त होगा। किन्तु यदि व्यक्ति श्रम को हेय दृष्टि से देखने लगता है, समझे कि वह अपने राष्ट्र को पतनोन्मुख बना रहा है। वैदिक ऋषि राष्ट्रनिर्माण में तप के महत्त्व को जानता हुआ यह उद्घोष करता है कि व्यक्ति को कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष की आयु की कामना करनी चाहिये।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।⁴⁶

जो कर्म अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये किया जाता है, वह कर्म मनुष्य को बन्धन में डालने वाला होता है। उस कर्म से समाज का अथवा राष्ट्र का हित नहीं होता, किन्तु कोई कर्म जब अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये न होकर निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म समझकर किया जाता है, वह कर्म राष्ट्रप्राप्ति होता है, और व्यक्ति उस कर्म के बन्धन से बंधता नहीं। इसी का उल्लेख भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में निष्काम कर्मयोग के रूप में किया है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।⁴⁷

मनुष्य को कर्म करने का अधिकार है, फल में नहीं। फल तो कर्म को मिलता है। इसलिये मनुष्य और फल दोनों के बीच कर्म की स्थिति है। मनुष्य को कर्म करने का अधिकार है और फल प्राप्ति कर्म के अधीन है। इस प्रकार मनुष्य को जो फलप्राप्ति होती है, वह उसके कर्म के कारण ही है। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र द्वारा श्रम के महत्त्व का प्रतिपादन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। इन्द्र हरिश्चन्द्रपुत्र रोहित से कहते हैं कि जो व्यक्ति कर्म करता रहता है, वह कभी श्रान्त नहीं होता, उसी के पास श्री रहती है। इन्द्र भी उसी का मित्र है जो कभी प्रान्त नहीं होता। अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्ति भी यदि कर्म नहीं करता, बैठा रहता है, पापी हो जाता है।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम ।

पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति ।⁴⁸

श्रम करते हुये व्यक्ति की जंघायें अभीष्ट फल देने वाली होती हैं। जैसे पुष्पयुक्त वृक्ष की शाखा सुशोभित होती है, उसी प्रकार सदा श्रम करने वाले पुरुष की जंघायें सुशोभित होती हैं। सदा श्रम करने वाले पुरुष की आत्मा वर्धिष्णु तथा फल प्राप्त करने वाली होती है, वह कभी भी रोगी नहीं होता। श्रम करने वाले व्यक्ति के सम्पूर्ण पाप उसके श्रम से नष्ट होकर पड़े रहते हैं। जैसे— सोया हुआ

⁴⁶ ईशवास्योपनिषद् मंत्र २

⁴⁷ गीता २.४७

⁴⁸ ऐतरेय ब्राह्मण ३३.३(१)

पुरुष कृषि, वाणिज्य आदि कार्य करने में असमर्थ होता है, वैसे ही श्रमशील व्यक्ति के पाप अपना प्रभाव उसपर नहीं दिखाते, निश्चेष्ट पड़े रहते हैं।

पुष्पिण्यौ चरतो जो भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।

शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हतश्चरैवेति।⁴⁹

जो व्यक्ति स्थिर बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठा रहता है, कभी बढ़ता नहीं। वृद्धि के लिये उद्योग करना आवश्यक है। जो व्यक्ति बैठा न रहकर उद्योग करने के लिये खड़ा होता है, उसका भाग्य भी खड़ा हो जाता है, अर्थात् वृद्धि के लिये उन्मुख हो जाता है। जो व्यक्ति पृथिवी पर गिरकर सोया रहता है, उसका भाग्य भी सर्वथा नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति निरन्तर चलता रहता है, कभी थकता नहीं, उसका भाग्य भी निरन्तर दिन प्रतिदिन दिन-दूना रात चौगुना बढ़ता जाता है।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।

शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति।⁵⁰

कलि, द्वापर, त्रेता तथा कृतयुग वस्तुतः मनुष्य के कर्तव्य के द्योतक हैं। मनुष्य की चार अवस्थाएँ होती हैं। सोना, जंभाई लेना, खड़ा होना और चलना। व्यक्ति का सोते रहना कलियुग है, निद्रा त्यागकर अंगड़ाई लेना द्वापर है, अंगड़ाई छोड़कर उठ खड़ा होना त्रेता है, और निरन्तर चलते रहना सत्ययुग है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।

उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति।⁵¹

कर्म में लगा हुआ ही मनुष्य अपने कर्म के मधुर और स्वादिष्ट फल को प्राप्त करता है। नित्य तपोमय कर्मशीलता का दृष्टान्त सूर्य है, जो निरन्तर चलता रहता है, कभी भी आलस्य नहीं करता।

चरन्चै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।

सूर्यस्य पश्य माणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति।⁵²

⁴⁹ ऐतरेय ब्राह्मण ३३.३(२)

⁵⁰ ऐतरेय ब्राह्मण ३३.३(३)

⁵¹ ऐतरेय ब्राह्मण ३३.३(४)

⁵² ऐतरेय ब्राह्मण ३३.३(५)

आदित्य तप का प्रतीक है। नित्य कर्म करते रहने की प्रेरणा देने वाला ऐतरेय ब्राह्मण का वचन वास्तव में राष्ट्र के सभी व्यक्तियों का आदर्श वचन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी वृत्ति के लोगों को नित्य चलते रहने का संदेश अमर सन्देश है, अतएव सबके लिये पालनीय है। जिस राष्ट्र के सभी वृत्तियों वाले लोग इस आदर्श का पालन करते हुये नित्य राष्ट्रहित में समर्पित कर्म करते रहते हैं, वह राष्ट्र अभ्युदय की पराकाष्ठा को प्राप्त होता है, उसका कभी भी पतन नहीं होता। इस गुण के अभाव में राष्ट्र कायम नहीं रह सकता। जिस राष्ट्र के लोग आलसी हो जायेंगे, वह राष्ट्र निश्चित ही पतन की ओर जायेगा। इसीलिये वैदिक ऋषि ने राष्ट्र के धारक तत्त्वों में तप को अन्यतम माना है। वैदिक ग्रन्थों में तप की महत्ता का विशेषरूप से प्रतिपादन किया गया है। तप के द्वारा ही ऋषियों ने स्वर्ग को प्राप्त किया। तप से ही मनुष्य अपने शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करता है तप में ही सब प्रतिष्ठित है। इसीलिये तप को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

चरन्वै मधु विन्दति चरन् स्वामुमुदुम्बरम्।

सूर्यस्य पश्य माणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति।⁵³

तप से ही प्रजापति ने प्रजाओं की सृष्टि की। तप से मनुष्य लोकों को जीतते हैं। तप से ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। **तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व।⁵⁴** तप से ही ऋषियों को ऋषित्व प्राप्त हुआ था। तेज तप में ही प्रतिष्ठित है। तप में ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है। **ब्रह्म तपसि प्रतिष्ठितम्।⁵⁵** मौद्गल्य आचार्य का मत है कि स्वाध्याय और प्रवचन ही तप है। **स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः।⁵⁶**

(६) राष्ट्र को धारण करने वाला छठा गुण—

राष्ट्र को धारण करने वाले तत्त्वों में छठा तत्त्व ब्रह्म अर्थात् ज्ञान है। ज्ञान से जिस प्रकार किसी व्यक्ति की आत्मा मुक्त हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञान अथवा बुद्धि से राष्ट्र दूसरों की अधीनता से मुक्त हो जाता है। ज्ञान किंवा बुद्धि से ही वह

⁵³ तैत्तिरीय ब्राह्मण १०.१२.३.१

⁵⁴ तैत्तिरीय आरण्यक ९.२.१

⁵⁵ ऐतरेय ब्राह्मण ३.६, गोपथ ब्राह्मण २.३.२

⁵⁶ तैत्तिरीय आरण्यक ७.९.१.

प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। विशाखदत्त-प्रणीत 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक में चाणक्य के इस कथन का कि 'सभी मित्र राजा शत्रुपक्ष में चले गये तो कोई बात नहीं, किन्तु मेरी बुद्धि मेरे विपरीत न जाय' इसका संकेत इसी ओर है कि बुद्धि के बल पर ही राष्ट्र को धारण किया जा सकता है। यदि बुद्धि विपरीत हो गई तो राष्ट्र धारण नहीं किया जा सकता। कहा भी है 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' अर्थात् जिसके पास बुद्धि है वही बलवान् है। वैदिक ऋषियों के ज्ञान की ही देन है कि यह भारत राष्ट्र जगद्गुरु कहलाया। जिस देश की मनीषा ने वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, वेदांग, पुराण, स्मृति, दर्शन आदि अनेकानेक ज्ञान के भण्डार ग्रन्थों का प्रणयन किया, उस पर किसी भी राष्ट्रभक्त को गर्व हो सकता है। इन ग्रन्थों में निहित ज्ञान किसी एक जाति या वर्ग का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता का है, किन्तु इस बात का गर्व है कि इस राष्ट्र की प्रज्ञा ने सदा विश्व के कल्याण का ही चिन्तन किया है और इस परम्परा का यहाँ के मनीषियों ने पालन तथा संरक्षण किया है। **आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।**⁵⁷ वैदिक ग्रन्थों में राष्ट्र के सन्दर्भ में ब्रह्म शक्ति का भूरिशः विवेचन हुआ है। ब्राह्मण ब्रह्म शक्ति का प्रतीक है। ब्रह्मवर्चस् ही ब्राह्मण की शक्ति है। वैदिक राष्ट्रगीत में यह सर्व प्रथम कामना की गई है कि राष्ट्र में 'ब्रह्मवर्चसी' ब्राह्मण उत्पन्न हों। जिस राष्ट्र में ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण उत्पन्न होते हैं, वह राष्ट्र चहुमुखी विकास करता है। उस राष्ट्र पर शत्रु कभी आक्रमण नहीं कर सकता, क्योंकि उसको उस राष्ट्र की ब्रह्मशक्ति से सदा भय रहता है। विश्वामित्र को अपनी ब्रह्मशक्ति पर पूर्ण विश्वास है। वे घोषणा करते हैं— विश्वामित्र का ब्रह्मवर्चस् 'भारत जन' की सब प्रकार से रक्षा करेगा। **विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्।**⁵⁸ ब्रह्मशक्ति के अभाव में राष्ट्र कमजोर हो जाता है। इसलिये राजा सदा सचेत रहते हैं कि उनके राष्ट्र में किसी भी प्रकार ब्रह्मशक्ति की कमी न होने पावे, ब्रह्मशक्ति सदा प्रसन्न रहे। वहीं राजा अपने पराक्रम से शत्रुओं को जीत कर सुप्रतिष्ठित होता है, जो बृहस्पतिरूप ब्रह्मशक्ति का सदा भरण—पोषण करता है उसकी स्तुति करता है तथा अपने राष्ट्र में ब्रह्मवर्चसी को सर्वप्रथम स्थान देता है।

⁵⁷ माध्यन्दिन यजुर्वेद २२.२२

⁵⁸ ऋग्वेद ३.५३.१२

स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।

बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ।⁵⁹

जिस राष्ट्र में ब्रह्मशक्ति—सम्पन्न ब्राह्मण प्रथम स्थान प्राप्त करता है, वही राष्ट्र प्रतिष्ठित होता है और उस देश का राजा अपने गृह में निर्बाध होकर सुखपूर्वक निवास करता है। राष्ट्रभूमि उसके लिए सर्वदा अन्न—धन से परिपूर्ण रहती है। सम्पूर्ण प्रजा स्वयं ही उस राजा को कर आदि प्रदान करती है। प्रजा के साथ कभी वैमनस्य नहीं होता।

स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इला पिन्वते विश्वदानीम् ।

तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् राजा राजनि पूर्व एति ।⁶⁰

सहायता के इच्छुक ब्राह्मण का जो राजा प्रिय करता है, उसको यथेप्सित धन देकर प्रसन्न करता है, वह राजा अप्रतिहत गतिवाला होकर सम्पूर्ण धन जीतता है। शत्रुओं को तथा अपने जनों को भी अपने वश में रखता है। सबसे बड़ी बात कि देवता उस राजा की सदा रक्षा करते हैं।

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।

अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ।⁶¹

इस प्रकार राजा के रक्षित होने पर राष्ट्र प्रतिष्ठित रहता है। इसी तथ्य को सामने रखकर ऋषि ने यह बात कही थी कि ब्रह्मशक्ति राष्ट्र को धारण करने वाले तत्त्वों में अन्यतम तत्त्व है।

(७) राष्ट्र को धारण करने वाला सतवा गुण—

यज्ञमय जीवन राष्ट्र के धारक तत्त्वों में सातवां तत्त्व यज्ञ है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी सर्जन विषयक प्रक्रिया शाश्वत रूप से चल रही है, वह आधिदैविक यज्ञ है। यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे' के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीव में उसकी सत्ता की कारणभूत जो प्रक्रिया चल रही है, वह अध्यात्म यज्ञ है। ब्रह्माण्डीय आधिदैविक तथा आध्यात्मिक सत्तात्मक प्रक्रिया की अनुकृतिमात्र जो कर्मकाण्डात्मक यज्ञ सम्पादित

⁵⁹ ऋग्वेद ४.५०.७

⁶⁰ ऋग्वेद ४.५०.८

⁶¹ ऋग्वेद ४.५०.९

किया जा रहा है, वह आधिभौतिक यज्ञ है। इन तीनों याज्ञिक प्रक्रियाओं में एक का अन्य की सत्ता के लिये सहयोग या आत्मसमर्पण का भाव कार्य कर रहा है। इन्हीं भावों को राष्ट्र के लिये भी प्रयुक्त किया जाये, तब राष्ट्र उसी प्रकार शाश्वत रूप से चलता रहेगा, जिस प्रकार ब्रह्माण्डीय आधिदैविक एवं आध्यात्मिक प्रक्रियायें चल रही हैं। जिस प्रकार ग्रहमण्डल में प्रत्येक संवत्सर का एक राजा होता है, उसका मन्त्री होता है, पुरोहित होता है, मन्त्रिमण्डल होता है, उसकी सेनायें होती हैं, उसी प्रकार राष्ट्र में भी ये चीजें होती हैं। ब्रह्माण्डीय शासन की अनुकृति ही राष्ट्रिय शासन है। यह सिद्धान्त राष्ट्र का सबसे बड़ा धारक तत्त्व है। इसमें राजतन्त्रात्मक सत्ता हो या गणतन्त्रात्मक सत्ता, सभी का उद्देश्य परस्पर उपकारक—उपकार्य भावना को सदा प्रतिष्ठित रखना होता है। इयही उपकारक—उपकार्य भावना यज्ञ का मूल है। यद्यपि यज्ञ शब्द श्रौत—स्मार्त आदि अनेक प्रकार से सम्पादित होमहवन के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु उसका बड़ा व्यापक अर्थ है।

यज्ञ शब्द में अनेक अर्थ समाये हुये हैं। यज् धातु का अर्थ 'देवयजन', 'संगतिकरण' तथा 'दान' है। इन्हीं अर्थों को ध्यान में रखकर सहस्रों वर्षों से व्यक्तियों के द्वारा भिन्न—भिन्न साधनों एवं सामग्री के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले विशिष्ट कर्मकाण्ड को यज्ञ का नाम दिया गया है, किन्तु उसके साथ—साथ ज्ञानयज्ञ, तपोयज्ञ, दानयज्ञ, जपयज्ञ, भक्तियज्ञ आदि—आदि भी यज्ञ कहलाते हैं। आधुनिक युग में भी इन उद्देश्यों से किये जाने वाले कर्मों की यज्ञ संज्ञा प्रचलित है, जैसे— श्रमयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, भूदानयज्ञ, आदि। भारतीय संस्कृति में यज्ञ किसी न किसी रूप में हर अवस्था में मानवजीवन के साथ ओतप्रोत हो गया है। जीवन की चार अवस्थायें भी उससे प्रक्रान्त हैं। ब्रह्मचारी अवस्था में स्वाध्याय यज्ञ, गृहस्थाश्रम में क्रियामय यज्ञ, वानप्रस्थाश्रम में तपोमय यज्ञ तथा संन्यासाश्रम में मानसयज्ञ चलता रहता है। यज्ञ का आकर्षण केवल मानव जीवन के साथ ही नहीं बल्कि देव, दानव, पशु आदि सबके साथ रहा है। यज्ञ के विषय में कई आख्यान मिलते हैं। गीता में तो स्पष्ट रूप से कहा है कि यज्ञ के साथ ही प्रजापति ने प्रजाओं का निर्माण किया और उनसे कहा कि इसी से सबकी कामनायें पूर्ण होंगी।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।

अनेन प्रसविष्यध्वमेषोऽस्त्वष्टकामधुक् ।।⁶²

देवों तथा असुरों दोनों के द्वारा यज्ञ सम्पादित किये जाने का अनेकशः उल्लेख वैदिक साहित्य में विशेषकर ब्राह्मणों में मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् में मानव जीवन को ही एक यज्ञ बताया गया है। इस उपनिषद् के अनुसार पुरुष का जीवन ११६ वर्षों का माना गया है। उसमें सोमयाग के प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन एवं तृतीय सवन के अनुसार जीवन यज्ञ की तीन अवस्थायें मानी गई हैं।

पुरुष के प्रथम २४ वर्ष प्रातः सवन है।

पुरुषो वाव यज्ञः। तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत् प्रातःसवनम्।
चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री, गायत्रं प्रातःसवनम्। तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः,
प्राणा वाव वसव एते हीदं सर्वं वासयन्ति।⁶³

२४ वर्ष के बाद ४४ वर्ष अर्थात् ६८ वर्ष तक की आयु का समय माध्यन्दिन सवन है।

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनंय
चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्, त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम्।

तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः, प्राणा वाव रुद्रा एते हीदं सर्वं रोदयन्ति।⁶⁴

तथा ६८ के बाद ४८ वर्ष अर्थात् ११६ वर्ष तक की आयु तृतीय सवन है।

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत्तृतीयं सवनम्रू अष्टाचत्वारिंशदक्षरा
जगती, जागतं तृतीयसवनम्।

तदस्यादित्य अन्वायज्ञत्ताः, प्राणा वावादित्याः। एते हीदं सर्वमाददते।⁶⁵

जिस व्यक्ति का जीवन यज्ञमय होता है वह निश्चित रूप से ११६ वर्ष निरोगी होकर जीवित रहता है। छान्दोग्य उपनिषद् स्पष्ट रूप से कहती है कि महिदास ऐतरेय ने अपने सन्निकट आने वाले रोग रूपी शत्रु को दुत्कार कर कहा कि यज्ञमय जीवन व्यतीत करने वाला यह मैं तेरे प्रकोप और प्रहार से नहीं मरूँगा।

⁶² गीता ३.१०

⁶³ छान्दोग्य उपनिषद् ३१६.१.

⁶⁴ छान्दोग्य उपनिषद् ३१६.३.

⁶⁵ छान्दोग्य उपनिषद् ३१६.५.

एतद्व स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः। स किं म एतदुपतपसि
योऽहमनेन न प्रेष्यामीति। स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्। प्र ह षोडशं
वर्षशतं जीवति य एवं वेद।⁶⁶

इस प्रकार वह महिदास एक—सौ—सोलह वर्ष जीवित रहे। ऐसे ही यज्ञमय जीवन व्यतीत करने वाले पुरुष राष्ट्र को धारण करते हैं। इसी को लक्ष्यकर अथर्वा ऋषि ने यज्ञ को राष्ट्र को धारण करने वाला कहा है।

जिस प्रकार व्यक्ति का जीवन यज्ञमय कहा गया है उसी प्रकार मानव शरीर के हर अंग—प्रत्यंग के साथ यज्ञ जुड़ा हुआ है। तैत्तिरीय आरण्यक में कहा है कि ज्ञानी पुरुष का शरीर नित्य प्रज्वलित रहने वाला यज्ञ है। इस यज्ञ का यजमान उसका आत्मा है, श्रद्धा उसकी पत्नी है, शरीर इध्म है, छाती वेदी है, केश दर्भ हैं, शिखा दर्भमुष्टि है, हृदय यूप है, इच्छा आज्य है क्रोध पशु है, तप अग्नि है, दमरूपी शान्तवृत्ति दक्षिणा है, वाणी होता है, प्राण उद्गाता है, चक्षु अध्वर्यु है, मन ब्रह्मा है, कान आग्नीध्र है, यावज्जीवन दीक्षा है, जो भोजन है वही हविः है, जो पान है, यज्ञ का सोमपान है, चलना—फिरना उपसद इष्टि है, उठना बैठना प्रवर्ग्य है, मुख आहनीय है, व्याहृतियों का उच्चारण आहुति है, व्याहृति का ज्ञान होम है, सायं, प्रातःकालीन भोजन समिधा है, प्रातः, मध्यन्दिन तथा सायं तीन सवन हैं, रात्रि और दिवस उसके दर्शपूर्णमास हैं, पक्ष और महीना चातुर्मास्य हैं, ऋतु पशुयाग है, संवत्सर—परिवत्सर आदि अहर्गण हैं, मृत्यु जीवन यज्ञ का अवभृथ है। ऐसा ही जन्म से मृत्युपर्यन्त जीवन अग्निहोत्रसत्र कहा गया है।

ऐसा ही यज्ञमय जीवन धारण करने वाले व्यक्ति राष्ट्र को धारण करते हैं। जिस राष्ट्र के निवासियों का जीवन इस प्रकार यज्ञमय होगा वह राष्ट्र कभी अवनति को प्राप्त नहीं कर सकता। इस यज्ञ का दर्शन उन बलिदानियों के जीवन में भी देखा जा सकता है, जिन्होंने राष्ट्र वेदि पर भारत माता को स्वतन्त्र कराने के लिये अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। द्रव्य देवता और त्याग ये तीनों यज्ञ के लक्षण माने गये हैं। **द्रव्यं देवता त्यागः।**⁶⁷ भौतिक यज्ञ—अग्नि में इन्द्रादि देवता के निमित्त

⁶⁶ छन्दोग्य उपनिषद ३१६.७.

⁶⁷ काश्रौ.तसू.त्र २१.२

घृत, पुरोडाश आदि की हवि: तो यज्ञ कहलाती ही है, राष्ट्रवेदि पर भारतमाता देवता के प्रीत्यर्थ अपने शरीर की आहुति भी यज्ञ है। पृथिवी सूक्त के सन्दर्भ में जिस यज्ञ की चर्चा की गई है, वह यज्ञ निश्चित रूप से इस भाव को भी अपने अन्दर समाविष्ट किये हुए हैं।

वैदिक साहित्य में यज्ञ को राष्ट्र का वर्धक मानने के अनेक उद्धरण मिलते हैं। राष्ट्र की रक्षा के लिये बल अत्यन्त आवश्यक है। एक स्थल पर कहा गया है कि यज्ञ ने इन्द्र को वीर्य प्रदान किया **यज्ञो वावास्मै (इन्द्राय) तद् (वीर्य) प्रायच्छत्**।⁶⁸ जिससे राष्ट्र की रक्षा होती है। यज्ञ से ही शत्रुओं को दूर किया जा सकता है। **यज्ञेन भ्रातृव्यमपनुदते**।⁶⁹

अथर्ववेद के भूमिसूक्ति में राष्ट्र के धारक जिन गुणों का विवेचन किया गया है, वे गुण वैदिक काल में यहां के देशवासियों में कूट-कूट कर भरे थे। इन्हीं गुणों के कारण एक विशाल आर्य साम्राज्य की स्थापना हुई और उसका विस्तार हुआ। सप्त सिन्धु प्रदेश में विकसित आर्य-संस्कृति विश्व के अन्य भूखण्डों में फैली और वहां-वहां इन राष्ट्रधारक गुणों को विकसित किया। इसीलिये ये गुण किसी एक राष्ट्रविशेष के लिये ही न होकर सामान्य बन गये। ये गुण जिस किसी भी राष्ट्र के निवासियों में होंगे, वह राष्ट्र निश्चित ही सुरक्षित रहेगा। हमें इस बात का गर्व है कि इस प्रकार की राष्ट्रिय चेतना का उद्गम स्रोत वैदिक संस्कृति ही रही है।

4.2 वेदों में राष्ट्र की परिकल्पना और उसके धारक तत्त्व—

संस्कृत भाषा के व्याकरण की प्रकृति एवं प्रक्रिया के अनुसार विचार करने से स्पष्ट होता है कि 'राष्ट्र' शब्द की निष्पत्ति दीप्त्यर्थक 'राज्' धातु से हुई है जिसमें औणादिक ष्ट्रन् प्रत्यय जोड़ा गया है।

कोशकारों⁷⁰ की दृष्टि में इस शब्द के निम्नलिखित अनेक अर्थ हैं—

(१) जनपद

(२) जनपद विषय

⁶⁸ कठोपनिषद् १२३

⁶⁹ कपि ५.३९

⁷⁰ वाचस्पत्यम् शब्दकल्पद्रुम का चतुर्थ काण्ड - पृ १५८: ए.संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ८७९: . बृहत् हिन्दी कोश, पृ-११५२ तथा मानक हिन्दी .कोश, पृ५०५ .

(३) Kingdom (One of the 5 Prakritis of the state), Realm, Empire, Dominion, District, Country, People, Nation site Subject.

(४) देश , राज्य, जाति ।

(५) राज्य , देश 'किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग जिनकी एक भाषा, एक से रीति-रिवाज तथा एक सी विचारधारा होती है, तथा किसी एक शासन में रहने वाले सब लोगों का समूह। राजनीतिशास्त्रियों⁷¹ की दृष्टि में 'राष्ट्र' एक अतिमहत्त्वपूर्ण शब्द है। यही कारण है कि इस शब्द का अर्थ समझने एवं समझाने के लिये इन्होंने इसके सभी पहलुओं पर विचार-विमर्श किया है। कोश ग्रन्थकारों की भांति 'एक शब्दनिष्ठ पर्यायवाचिका शैली' को न अपनाकर तथा इस शब्द की अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार निम्न प्रकार परिभाषाएं दी हैं

१. जातीय एकता में आबद्ध उस जनता को राष्ट्र कहते हैं, जो किसी अखण्ड भौगोलिक क्षेत्र में निवास करती है।

२. मानव समाज के उस समूह को राष्ट्र कहते हैं, जो सांस्कृतिक दृष्टि से समान हो, और जो अपने आध्यात्मिक जीवन की एकता एवम् अभिव्यक्ति के प्रति जागरुक तथा दृढसंकल्प हो।

३. एक जनसमूह अनेक तत्त्वों के आधार पर एकता की भावना से आबद्ध होकर राष्ट्रीयता का निर्माण करता है। जब यह राष्ट्रीयता की भावना उस जनसमूह को राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान कर देती है या उसे इस दिशा में प्रेरित करती है तो वह एक राष्ट्र कहलाता है।

राष्ट्र के तत्त्व—

- स्वरूपाधायक तत्त्व
- सहायक तत्त्व

⁷¹ संस्कृत-साहित्य में राष्ट्रीय भावना :, हरिनारायण दीक्षित, पृ७. अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेद पीठ रिसर्च जर्नल

उपरोक्त वर्णन से संक्षेप में यही निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्र के उदय एवं विकास के लिये उपरोक्त तत्त्व अपेक्षित हैं

4.3 वेदों में राष्ट्र की परिकल्पना—

वेद हमारे अति प्राचीन चिन्तनधारा के कोश हैं। हमारे ऋषियों ने इनमें जहां मानवजीवन के विविध पहलुओं की पर्याप्त मीमांसा प्रस्तुत की है, वहीं राष्ट्र की भी परिकल्पना की है। हमारे ऋषिराज यज्ञ करते समय राष्ट्रप्राप्ति की कामना से विभिन्न देवताओं को भावभीनी आहुतियां दिया करते थे, यह उनका 'राष्ट्रप्राप्तियज्ञ' कहा जा सकता है। वे अपने अभीष्ट देवताओं से अपने नायक की संरक्षकता में अपने राष्ट्र की आशंसा किया करते थे। अपने मनोनीत नायक के मस्तक पर राष्ट्रतिलक करते समय भी वे अपने राष्ट्रलाभ की हार्दिक कामनाएं किया करते थे।⁷² वे राजाओं को उपदेश दिया करते थे कि वे उपलब्ध अपने राष्ट्र की सर्वात्मना सुरक्षा करें, सभी प्रजाजनों का पालन करें, सब को समान लाभ प्रदान करें, तेजस्वी बनायें और ऐसा आचरण करें कि विभिन्न प्रकार की उनकी प्रजाएं उनकी हार्दिक प्रशंसा करें।⁷³

ऋषियों द्वारा राष्ट्रनायकों से अपेक्षा की जाती थी कि वे दृढता एवं स्थिरता से राष्ट्र की रक्षा करें और प्रजाजनों को श्रद्धा प्राप्त करें।⁷⁴ तत्कालीन राष्ट्रनायक भी अपने राष्ट्र को अपना ही शरीर मानते थे, और उसकी रक्षा हेतु सदैव अपनी भुजाओं में बल के बने रहने की कामना किया करते थे।⁷⁵ उनकी इच्छा रहती थी कि वे अपने राष्ट्र के 'अपने' बनकर ही रहें। वे लोग राष्ट्र के सभी वर्गों के प्रतिनिधियों को अपने समीप रखते थे, ताकि राष्ट्र की सर्वतोमुखी प्रगति पर विचार हो सके। ऋषियों की दृष्टि में विशाल एवं प्रजा में प्रसन्नताधायक राष्ट्र प्रशंसनीय था। तत्कालीन ऋषि यज्ञ जैसे परम धार्मिक कार्यों तक में भी अपने राष्ट्र की समृद्धि के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते थे कि उनके राष्ट्र में ब्राह्मण ज्ञानसम्पन्न हों, राष्ट्ररक्षक क्षत्रिय शूरवीर शस्त्रास्य—कलाकुशल, शत्रुनाशक तथा महारथी हों,

⁷² यजुर्वेद १०.११४, अथर्ववेद ५४.६

⁷³ अथर्ववेद ४.३

⁷⁴ ऋग्वेद १०.१३.१

⁷⁵ यजुर्वेद ७.२०

गौएं पयस्विनी हों, बैल बली हों, अश्व द्रुतगामी हों, स्त्रियां सर्वगुणसम्पन्न हों, रथी यौद्धाओं में विजय प्राप्त करने की इच्छा बलवती हों, युवक निर्भीक एवं सुशील हों, मेघ आवश्यकतानुसार वृष्टि करें, औषधियां फूले-फलें, अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती रहे, और प्राप्त वस्तुएं सुरक्षित बनी रहें।⁷⁶ नवदम्पति को आशीर्वाद देते समय भी उन्हें अपने राष्ट्र का ध्यान रहता था। फलस्वरूप वर-वधु को अपने राष्ट्र की समृद्धि करते रहने का आशीर्वाद दिया करते थे।

अभिवद्धतां पयसाभिराष्ट्रेण वर्धताम् । रय्या सहसवर्चसैनौ स्तामनुपक्षितौ।⁷⁷

4.4 राष्ट्र के धारक तत्त्व—

वेदों में राष्ट्र की न केवल परिकल्पना ही वर्णित है, बल्कि उसके आधारभूत तत्त्व, उपयोगिता, महत्ता तथा उसके प्रति लोगों के दायित्वों एवं कर्तव्यों का भी भली-भाँति उपदेश दिया गया है, जो निश्चय ही उनकी हार्दिक राष्ट्रीय भावना का द्योतक है। उन्होंने अपनी मातृभूमि को तेज और बल से परिपूर्ण उत्तम राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है, और वे उसे सदैव सर्वश्रेष्ठ बनाए रखना चाहते रहे हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपने राष्ट्र का विशेषण 'उत्तम' दिया है। राष्ट्र को उत्तमतापूर्वक सुरक्षित बनाए रखने के लिये हमारे वैदिककालीन ऋषि ने यह भी उद्घोष किया था कि—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युहं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।

अर्थात्— सत्य, बृहत् (विकास), ऋत (निश्चित नियम), उग्रता (दुर्धर्ष शक्ति), दीक्षा (दक्षता तथा अनुशासन), तप (कर्तव्य के प्रति कठोर परिश्रम एवं लगन), ब्रह्म (ज्ञान) तथा यज्ञ (पवित्र क्रियाएं) ही अपनी मातृभूमि को किंवा अपनी राष्ट्र की रक्षा हेतु तथा उसके गुणात्मक विकास हेतु इन गुणों को अपनाएं। यह मानने योग्य तथ्य है कि जिस देश के नागरिक सत्य के प्रति निष्ठावान् होंगे, देश के सर्वतोमुखी विकास में लगे होंगे, नियमानुकूल आचरण करेंगे, अदम्य शक्ति से सम्पन्न होंगे, अनुशासनप्रिय होंगे, कार्यकुशल होंगे, कठोर परिश्रम करते हुए अपने कर्तव्य का

⁷⁶ यजुर्वेद २२.२२

⁷⁷ अथर्ववेद २.२७.६

लगन से पालन करेंगे, सुशिक्षित होंगे और क्रियाशील होंगे, तो वह देश अवश्य ही समृद्धिशाली होगा और विश्व में प्रशंसनीय प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा।

अथर्ववेद के उपर्युक्त मन्त्र में सत्य आदि चीजों को भूमि अर्थात्— राष्ट्र का धारण करने वाला बताया गया है। यदि किसी राष्ट्र में ये सात बातें रहेंगी तो वह स्थिर रहेगा। उसका पतन नहीं होगा। जिस राष्ट्र में ये सात चीजें न रहेंगी वह स्थिर नहीं रहेगा। उसका पतन हो जायेगा। इन सात बातों का संक्षिप्त स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

(१) सत्यम्—

राष्ट्र के अधिकारियों को सत्यप्रिय होना चाहिए। उन्हें असत्य से द्वेष होना चाहिए। सत्य क्या है? यह जानने के लिये उन्हें सदा तत्पर रहना चाहिए। सत्य तक पहुंचने के लिये जिस शान्त, गम्भीर, अध्यवसायी, सहानुभूतिपूर्ण और कष्ट—सहिष्णुवृत्ति तथा घटनाओं की तह तक जाने वाली सूक्ष्मबुद्धि की आवश्यकता है, वह उनमें होनी चाहिए। और जब सत्य क्या है, यह उन्हें पता लग जाये तो उसके अनुसार मन, वचन और कर्म से आचरण करने वाला होना चाहिए। प्रस्तुत मंत्र में सत्य के साथ शब्दों का विशेषण दिया गया है। 'बहुत' का अर्थ होता है— महान्। इस विशेषण का भाव यह है कि राष्ट्र के अधिकारियों में महान् सत्य रहना चाहिए। उनके जीवन में कोई भी क्षण ऐसा नहीं रहना चाहिए। जिसमें वे सत्य से परे हो जायें। सत्य का आचरण उनके जीवन का अंग होना चाहिए।

(२) ऋतम्—

ऋत का अर्थ होता है सत्य ज्ञान अपने सामान्य प्रयोग में सत्य और ऋत ये दोनों शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते हैं परन्तु इनमें भेद है। जैसा मेरा ज्ञान है, उसके अनुसार आचरण करने को सत्य कहते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि मेरा आचरण सत्य होगा तो मेरा ज्ञान भी अवश्य सत्य होगा। किसी बात का मेरा ज्ञान अशुद्ध भी हो सकता है। परन्तु मैं अपने अशुद्ध ज्ञान को ही ठीक समझता हुआ उसके अनुसार आचरण कर सकता हूँ। इस आचरण में जहां तक मेरी वृत्ति का संबंध है वहां तक मैं सत्य पर हूँ, परन्तु मेरा वह ज्ञान वास्तव में ठीक नहीं है। इसलिये वह ऋत नहीं है, और इसलिये उस गलत ज्ञान का आश्रित मेरा आचरण

भी ऋत नहीं है। मेरा ज्ञान अनृत है और अनृत पर टिका होने के कारण मेरा आचरण भी अनृत ही है। सत्य यह बताता है कि किसी बात को मैंने ठीक समझा है और जैसा मैंने समझा है वैसा ही मैंने आचरण भी किया है। परन्तु मेरे ठीक समझने से ही तो कोई बात ठीक नहीं हो सकती। ऋत यह बताता है कि मैंने किसी चीज को जैसा समझा है वह वास्तव में है भी वैसी ही। ऋत इस प्रकार ज्ञान की सत्यता को द्योतित करता है। वेद में यह शब्द सत्य ज्ञान का बोधक होता हुआ। जगत् के सत्य नियमों का बोधक भी हो जाता है, क्योंकि जगत् में चल रहे सत्य नियमों के सही बोध पर ही हमारे ज्ञान की सत्यता अवलम्बित होती है। फलतः ऋत विश्व में चल रहे सत्य नियमों का, उसके सत्य, ज्ञान का और तदनुसार सत्य आचरण का द्योतक हो जाता है। राष्ट्र के लोगों में ऋत होना चाहिए इस कथन का भाव यह है कि उन्हें विश्व-ब्रह्माण्ड में काम कर रहे भौतिक और आत्मिक नियमों का सच्चा ज्ञान होना चाहिए, उन्हें भौतिक और आत्मिक विद्याओं का पण्डित होना चाहिए, और इस ज्ञान एवं इन विद्याओं के अनुकूल उनके आचरण होने चाहिए। मन्त्र में 'बृहत्' शब्द सत्य और ऋत दोनों के मध्य में पठित है। इस लिये यह दोनों के साथ प्रयुक्त होगा। पं. प्रियव्रत वेदवाचस्पति के अनुसार राष्ट्र निवासियों में महान् ऋत रहना चाहिए। उन्हें भौतिक और आध्यात्मिक विद्याओं का आविष्कार और ज्ञान प्राप्त करने में बहुत प्रयत्नशील होना चाहिए तथा इस ज्ञान के अनुसार आचरण करने में भी उन्हें पूर्ण तत्पर रहना चाहिए।

(३) उग्रम्—

उग्र शब्द उद्गूर्ण शक्ति और तेज वाले क्षत्रिय का वाचक है। यहाँ यह नपुंसक लिंग में प्रयुक्त हुआ है और क्षत्रिय के तेज और शक्ति को द्योतित करता है। राष्ट्र के लोगों में उग्रता रहनी चाहिए। उनमें तेज और बल रहना चाहिए। सामान्य प्रजा में भी उग्रता होनी चाहिए और उग्रता के विशेष धनी उग्र अर्थात् क्षत्रिय लोग भी राष्ट्र में बड़ी संख्या में रहने चाहिए।

(४) दीक्षा—

किसी कार्य को दृढ संकल्पपूर्वक हाथ में लेने को दीक्षा कहते हैं। राष्ट्र के लोगों में दीक्षा होनी चाहिए। उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए— उनके शरीरों और

मनों की साधना ऐसी होनी चाहिए कि जब वे भली-भांति, सोच विचार कर किसी काम को हाथ में ले लें तो फिर उसे पूर्ण करके विश्राम लें। विघ्न बाधाओं से घबराकर अपने संकल्पित कार्यों को वे बीच में ही छोड़ देने वाले न हों। एक बार किसी कार्य को करने का संकल्प कर लेने के पश्चात् वे न तो किसी कष्ट और विपत्ति से विचलित हों और न ही किसी प्रकार के लोभ और लालच से डगमगायें। जिस दृढ़ निश्चय, श्रद्धा और पवित्रता की भावना से यजमान यज्ञ में दीक्षित होता है, उसी भावना से राष्ट्रनिवासियों को अपन सब कार्य करने चाहिए। दीक्षा के अभाव में यजमान जैसे अपने आपको पापासक्त अनुभव करता है वैसे ही राष्ट्रनिवासियों को अपने प्रारम्भ किये कार्यों को बीच में ही छोड़ देने पर अपने आपको पापिष्ठ अनुभव करना चाहिए।

(५) तप—

जीवन में कष्ट—सहिष्णुता और सरलता—सादगी की वृत्ति को तप कहते हैं। राष्ट्र के लोगों में तप रहना चाहिए। उनका जीवन सरल और सादा रहना चाहिए। उन्हें बीच-बीच में भांति-भांति के कष्टों के सहने का स्वैच्छापूर्वक अभ्यास करते रहना चाहिए। सरल और सादा जीवन रखने तथा बीच-बीच में कष्टों के सहने का अभ्यास करते रहने का परिणाम यह होगा कि जब कभी उन्हें वैयक्तिक अथवा सामाजिक कर्तव्यों का पालन करते हुए कष्टों का सामना करने का अवसर प्राप्त होगा तो वे उन कष्टों से घबरायेंगे नहीं। वे उनको वीरता से सहन करेंगे। जिनके जीवन में सरलता सादगी और कष्ट सहने का अभ्यास नहीं होता, जो लोग ठाठ-बाट, तनाव, साज-सिंगार और विलास के जीवन में रहते हैं, वे लोग कर्तव्यपालन में कष्टों का सामना आ पड़ने पर उनको सहन नहीं कर सकते। वे अभ्यास न होने के कारण कष्टों से घबराकर कर्तव्य से च्युत हो जाते हैं। इसलिए राष्ट्र के लोगों का जीवन तपस्वी जीवन होना चाहिए।

(६) ब्रह्म⁷⁸—

⁷⁸ शतपथ ब्राह्मण २.६.५.११

सर्वाणि विद्याविज्ञानानि ब्रह्मपदेन गृह्यन्ते। शतपथ ब्राह्मणे
विविधशास्त्राणां, स्वाध्यायोऽपि ब्रह्म यज्ञपदेन निगद्यते। स्वाध्यायो वै
ब्रह्म यज्ञः।

ब्रह्म ब्राह्मण को कहते हैं। ब्रह्म वेद को भी कहते हैं और भौति-भौति के विद्या-विज्ञानों को भी कहते हैं। वेद और विद्या-विज्ञानों को पढते रहने के कारण ही ब्राह्मण को ब्रह्म कहते हैं। राष्ट्र में ब्रह्म रहना चाहिए। उसमें वेद का प्रचार रहना चाहिए और वेदोपलक्षित भौति-भौति के विद्या विज्ञानों के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था रहनी चाहिए। सारी प्रजा में ही वेद और विद्या विज्ञानों का भरपूर प्रचार रहना चाहिए। परन्तु इसके साथ ही राष्ट्र में ब्राह्मण नाम के विशेष व्यक्तियों की भी यथेष्ट संख्या रहनी चाहिए। जैसा शास्त्र में अन्यत्र अनेक स्थानों में कहा गया है। इन ब्राह्मणों के जीवन का वेद और भौति-भौति के विद्या-विज्ञानों का अध्ययन और अध्यापन का विशेष उद्देश्य होता है। ये त्यागी, तपस्वी, संयमी, परोपकार-प्रिय और आत्मज्ञानी लोग होते हैं। इन तत्त्वदर्शी लोगों के जीवन का एकमात्र उद्देश्य अपनी विद्या और संयम की ज्योति को सर्वसाधारण प्रजा में निःस्वार्थ भाव से फैलाते रहना होता है। ऐसे ब्राह्मण लोग राष्ट्र में सदा बड़ी संख्या में रह सकें। उसका पूर्ण प्रबंध होना चाहिए।

(७) यज्ञ—

‘शतपथ ब्राह्मण’ के भाष्य में पं. बुद्धदेव विद्यालङ्कार ने लिखा है—
‘सामुदायिकं योगक्षेममुद्दिश्य समुदायागतया क्रियमाणं कर्मयज्ञः’। अर्थात्— जब हम किसी समुदाय के योग क्षेम को, कल्याण को, लक्ष्य में रखकर उस समुदाय का अंग होकर किसी कार्य को करने लगते हैं, तो हमारा वह कार्य यज्ञ कहलाता है। यज्ञ शब्द ‘यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु’ धातु से निष्पन्न होता है, जिसका एक अर्थ संगतिकरण होता है। हमारे कार्य जो संगत होकर, मिलकर किये जाते हैं, वे सब यज्ञ कहलाते हैं। राष्ट्र के लोगों में यज्ञ होना चाहिए। उनमें यज्ञशीलता की वृत्ति रहनी चाहिए। उन्हें राष्ट्र के कल्याण ही भावना से परस्पर मिलकर काम करने की आदत होनी चाहिए। राष्ट्र के लाभ और भलाई के लिये यदि उन्हें अपना वैयक्तिक लाभ-सुख छोड़ना पड़े तो वे उसके लिए भी तैयार रहें। उस परोपकारमयी भावना

से काम करने की वृत्ति को यज्ञ की वृत्ति कहते हैं। राष्ट्र के लोगों में यह यज्ञ की भावना सदा स्थिर रखनी चाहिए। जब राष्ट्र के लोगों में ये सातों महाशक्तियां विद्यमान रहेंगी, जिस राष्ट्र के लोगों में ये सातों गुण जीवन का अंग बन जायेंगे वह राष्ट्र सदा धारित स्थिर रहेगा। वेद कहता है कि उस राष्ट्र का कभी पतन नहीं हो सकता। उसकी सदा उन्नति होती रहेगी। वह सदा ऊंचा उठता चला जायेगा और उसकी महिमा, गौरव और श्रीवृद्धि का कोई अन्त नहीं रहेगा। वास्तव में ये सातों गुण राष्ट्रों की उन्नति के विशाल भवन का मूल धार हैं।

पञ्चम अध्याय

राष्ट्रीयता की भावना एवं उसका स्वरूप

राष्ट्रीयता का स्वरूप अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवनदर्शन आदि के प्रति लोगों के मन में जो एक नैसर्गिक स्वाभिमान हुआ करता है, उसे ही हम राष्ट्रीय भावनाश की संज्ञा देते हैं। यही वह भावना है जिसके वशीभूत हो कर लोग अपने राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व भी न्यौछावर कर देते हैं। यदि राष्ट्र परतन्त्र हुआ तो उसे स्वतन्त्र कराने के लिये लोग सीने पर गोली या फांसी के फंदे की जरा भी परवाह नहीं करते और जब तक राष्ट्र को विदेशी शासकों के चंगुल से आजाद नहीं करा लेते तब तक चौन की नींद नहीं सोते। इस बलिदान के पीछे जो एक प्रबल भावना काम करती है, वह राष्ट्रीय भावना ही होती है। इसी प्रकार अपने स्वतन्त्र राष्ट्र पर यदि कोई दूसरा राष्ट्र आक्रमण करता है तो अपने राष्ट्र की रक्षा के लिये समूचा राष्ट्र तन-मन-धन से संनद्ध हो जाता है। उस समय आबालवृद्ध नर-नारियों में अपने राष्ट्र अपने देश किंवा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये एक अदम्य भावना उमड़ने लगती है। वे अपने पारस्परिक मतभेदों को भुलाकर सर्वात्मना एकजुट होकर राष्ट्र के शत्रु का डटकर प्रतिरोध करते हैं। वृद्ध माता-पिता अपने बुढ़ापे के सहारे की आशा त्याग कर अपने तरुण पुत्रों को युद्धक्षेत्र में भेज देते हैं। पत्नियाँ अपने सिन्दूर की परवाह न करके अपने प्राणप्रिय पतियों को मातृभूमि की रक्षा के लिये युद्धभूमि में विदा करती हैं और बहनें अपनी राखी को खतरे में डालकर अपने सहोदर भाइयों को देश की रक्षा के लिये भावभीनी विदाई देती हैं।

5.1 राष्ट्रीयता का स्वरूप—

अपने देश की अखण्डता और मान-मर्यादा की रक्षा के लिये ये बहादुर सैनिक सपूत अपने प्राणों की भी बाजी लगा देते हैं। साथ ही देश के कोने-कोने में अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये सभी प्रकार के प्रयत्न होने लगते हैं। अपनी सेनाओं का मनोबल ऊँचा बनाये रखने के लिये राष्ट्र के सभी वर्गों के लोग उनके साहस एवं शौर्य के गीत गाते नहीं थकते। अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए

जोशीली आवाजें गूंजने लगती हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र सिंहनाद कर उठता है और स्वाभिमान से भर जाता है। लोग स्वार्थ की संकीर्ण सीमाओं को तोड़कर अपने राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा हेतु एक अभेद्य एकता को अपना लेते हैं।

राष्ट्र के लिये आत्मोत्सर्ग के इस वातावरण की सर्जना के पीछे जिस प्रबल भावना की प्रेरणा हुआ करती है, वह राष्ट्रीय भावना ही होती है। असंख्य राष्ट्रप्रेमी महापुरुषों द्वारा किए गए आत्म-बलिदानों में उनकी अदम्य राष्ट्रीय भावना ही एकमात्र प्रेरिका रही है। यह एक ऐसी बलवती भावना है, जिससे अभिभूत होकर मनुष्य अपने व्यक्तिगत हितों को तिलांजलि देकर अपने देश अपनी मातृभूमि और अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा की रक्षा में मर मिटते हैं।

उस समय वे अपने राष्ट्र की ठीक उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जिस प्रकार शत्रुओं द्वारा प्रताड़ित की जा रही अपनी माता की रक्षा उसके पुत्र करते हैं। यही कारण है कि राष्ट्रभक्ति और मातृभक्ति में समानता मानी गई है। जिसकी प्रबल प्रेरणा से अपने राष्ट्र की भौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा की रक्षा हेतु एक अदम्य एवं क्रियाशील भाव सदैव जागरूक रहता है तथा जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र अनेकता में भी एकता की एक अद्भुत अनुभूति करता रहता है, जिससे प्रेरित हो कर लोग अपने को स्वर्ग से भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं, और उसकी उपमा माता से देते हैं, वह निश्चित रूप से 'राष्ट्रिय भावना' ही है। शुद्ध राष्ट्रिय भावना लोगों में जहां अपने राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान की भावना भरती है और अपने राष्ट्र की रक्षा के लिये आत्म-बलिदान तक की प्रेरणा देती है, वहाँ वह किसी अन्य राष्ट्र का अपमान करने की प्रेरणा स्वप्न में भी नहीं देती। इस प्रकार की शुद्ध राष्ट्रीय भावना अन्तराष्ट्रिय भावना की भी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है। यदि किसी राष्ट्रीय भावना में दूसरे राष्ट्र के लिए हीनता, हेयता और घृणा के दुर्भाव अन्तर्निहित हो जाते हैं वह न केवल अपने राष्ट्र के लिए अपितु विश्वमानव समुदाय के लिये संकट उत्पन्न कर देती है। अतः ऐसी राष्ट्र भावना जो अन्य राष्ट्रों के प्रति हीनता और घृणा के संकीर्ण तथा अमानवीय दुर्भावों को प्रोत्साहित करें सर्वथा निन्दनीय एवं त्याज्य मानी गई हैं। जिस राष्ट्र में हमारी एक सुदीर्घ परम्परा विकसित होती आ रही है, उसके बौद्धिक विकास, उसकी सुरक्षा तथा उसकी समृद्धि के लिये नित्य जागरूक रहना ही

राष्ट्रीय चेतना अथवा राष्ट्रीय भावना है। यह राष्ट्रीय चेतना सांस्कृतिक चेतना का एक अनिवार्य अंग है। सौन्दर्य चेतना , नैतिक चेतना ,आदि के साथ ही राष्ट्रीय भौतिकता के धरातल से ऊपर है राष्ट्र के प्रति कर्तव्याकर्तव्य की व्यवस्था में पुण्यपाप की चेतना भौतिक नहीं। जिस राष्ट्र में मैं रहता हूँ, उसके प्रति स्नेह नहीं करता हूँ तो मैं मार डाला जाऊँगा और उसका हित करता हूँ तो मुझे उच्च पद की प्राप्ति होगी, यह सोचकर यदि राष्ट्रीय चेतना का प्रार्दुभाव होता है तो यह चेतना भौतिकता तथा उपयोगिता के धरातल पर प्रतिष्ठित कही जाएगी। जो चेतना भौतिकता तथा उपयोगिता के धरातल से जितनी ही ऊपर होगी, वह उतनी ही बढ़िया होगी।

5.2 राष्ट्रीयता का अर्थ—

आज कोई भी व्यक्ति जब किसी देश में बस जाता है तब कुछ निर्धारित अवधि के बाद वहाँ का नागरिक बन जाता है। नागरिकता प्राप्त हो जाने के बाद उसे मतदान का भी अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस नागरिकता को ही राष्ट्रीयता में माना जाता है। किन्तु नागरिकता और राष्ट्रीयता में बहुत अन्तर है। नागरिकता किसी देश में रहने का एक राजनीतिक अधिकार है, जो उस देश की सरकार के द्वारा व्यक्ति को प्रदान किया जाता है, किन्तु राष्ट्रीयता इससे भिन्न है। राष्ट्र केवल भूखण्ड नहीं, बल्कि उस भूखण्ड पर विकसित संस्कृति तथा भाषा को भी आत्मसात् किया होता है। इसलिये जिस राष्ट्र में हम रहते हैं, उस राष्ट्र की हर वस्तु से, चाहे वह वहाँ की मिट्टी हो, पर्वत हो, नदियाँ हों, जंगल हों, पशु हों अथवा वहाँ की संस्कृति हो, परम्परा हो, रीतिरिवाज हों जन मानस हो अथवा वहाँ की भाषा से प्रेम हो, उसको अपना समझना तथा उसके विकास और वृद्धि के लिए अपने अपने कर्म के अनुसार सतत प्रयत्नशील रहना 'राष्ट्रीयता' है। राष्ट्रीयता की अन्वर्थता तभी होगी जब व्यक्ति उस राष्ट्र की भूमि से प्यार करे, वहाँ की संस्कृति से प्यार करे तथा वहाँ की भाषा से प्यार करे। इस प्रकार राष्ट्रभूमि, राष्ट्रीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय भाषा से प्यार एवं ममत्व की भावना ही राष्ट्रीयता है। राजनीतिशास्त्री राष्ट्रीयता को एक भावात्मक राजनैतिक धारणा बतलाते हैं, जो राज्य की वैयक्तिकता का सम्मान करती है, कानून और शासन की विविधता को मान्यता प्रदान करती है और सामान्य

आदर्शों एवं विश्वासों के आधार पर एक समूह को दूसरे समूह से पृथक् करती है। राष्ट्रियता एक आध्यात्मिक भावना है, जिसका प्रादुर्भाव ऐसे मनुष्यों में होता है जो साधारणतया एकजाति के होते हैं, एक ही भूभाग पर निवास करते हैं, जिनकी एक सर्वसामान्य भाषा होती है, एक धर्म होता है, की भावनाएँ भी समान होती हैं। इतिहास तथा परम्पराएँ मिलती जुलती हैं, समान हित होते हैं और राजनैतिक एकता राजनीतिशास्त्र के मनीषियों ने राष्ट्रीय भावना के लिए अंग्रेजी भाषा में 'नेशनलिज्म' और हिन्दी भाषा में 'राष्ट्रवाद' का प्रयोग किया है। किन्तु 'नेशनलिज्म' शब्द के 'इज्म' अंश और राष्ट्रवाद शब्द के 'वाद' अंश में दूसरे राष्ट्रों की राष्ट्रिय भावनाओं को आघात पहुंचाने की तथा अपने से तुलना करके उन्हें हीन सिद्ध करने की दुर्भावना का हल्का सा आभास बुद्धिगोचर होता है। 'राष्ट्रीयता' शब्द राष्ट्र शब्द की भाववाचक संज्ञा है जिसका अर्थ है— जनसमुदाय की समूह-चेतना। इसके अन्तर्गत कई तत्त्व शामिल हैं, जैसे एक जनसमूह का होना, उस जनसमूह के मध्य भौगोलिक एकता तथा सामूहिक सुरक्षा की भावना का होना, तथा समूह के सब व्यक्तियों में विचार-साम्य होना। इस प्रकार की एकता की भावना से युक्त जनसमुदाय की सामूहिक चेतना राष्ट्रियता कहलाती है। जब कोई जन समूह अपनी सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक व्यवस्था, भौगोलिक उपलब्धियों, ऐतिहासिक घटनाओं, धार्मिक आस्थाओं, दार्शनिक विचारधाराओं, साहित्यिक अभिरूचियों आदि की एकता के कारण आपस में एक आभ्यन्तरिक एकता आत्मीयता की अनुभूति करता हो तथा संवेदनशील रहता हो, वही जनसमूह अपने आप में एक राष्ट्रियता की भावना से युक्त होता है। यह भावना स्वतः सम्भूत होती है। इसके लिये कोई संवैधानिक संगठन नहीं होते हैं। इसकी आधारशिला अन्तरात्मा की आवाज होती है। यदि यह नहीं हो तो कोई भी जनसमूह कभी भी न तो राष्ट्र बन सकता है और न ही सम्प्रभुतासम्पन्न राज्य। राष्ट्र का शिलान्यास राष्ट्रियता की ही भूमि पर होता है।

5.3 राष्ट्रीयता की भावना—

वैदिक साहित्य में राष्ट्रियता की यह भावना भरपूर मात्रा में मिलती है। राष्ट्रियता की यह अनिवार्य शर्त है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण अंग माने अथर्ववेद के एक मंत्र में यह धारणा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति हुई है। ऋषि

कहता है कि राष्ट्र की जनता में मैं उत्तम निज अर्थात् अपना हो। **अहं राष्ट्रस्याभिर्वर्गे निजो भूयासमुत्तमः।¹** राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह सरकार में हो अथवा जनता में हो अपने को राष्ट्र का उत्तम निज समझे। उसे कभी भी अपने को राष्ट्र से अलग नहीं समझना चाहिये। यदि कोई अपने को उस राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग मानता है तो उसकी राष्ट्रियता में सन्देह है। वह राष्ट्र के लिये खतरनाक सिद्ध हो सकता है। अथर्ववेद की राष्ट्र के प्रति एक 'उत्तम निज' होने की भावना का एक विशेष महत्त्व है। 'निज' और 'उत्तम निज' की धारणा में बहुत अन्तर है। कोई भी व्यक्ति अपने को किसी का निज या किसी को अपना निज कह सकता है। किन्तु मात्र 'निज' की भावना में राष्ट्रियता नहीं। शिकारी शिकार को अपना शिकार कहता है, कोई व्यक्ति अपनी रखैल को अपनी कहता है। इस्लाम का जब यहाँ आक्रमण हुआ मुसलमानों ने भी इसी भूमि को अपनी लोलुपता और स्वार्थ सिद्धि के लिये अपना कहाय अंग्रेजों ने इसको अपने अधिकार में करने का जब प्रयास किया तब इन्होंने अंग्रेजों से लड़ाई भी की। अंग्रेजों ने जब भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया, भारत का अपना उपनिवेश कहना शुरू किया। किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सब में जो 'निज' समझने की भावना है, उसके पीछे स्वार्थ और लोभ की भावना छिपी है, राष्ट्रियता की भावना नहीं। इसीलिये वैदिक ऋषि इस बात के लिये आग्रह करता है कि राष्ट्रियता के लिये 'उत्तम निज' भावना आवश्यक है। अब प्रश्न है कि उत्तम निज की भावना क्या है ?

उत्तम निज की भावना राष्ट्रभूमि, राष्ट्रसंस्कृति तथा राष्ट्र भाषा के प्रति मातृत्व की भावना है, जो व्यक्ति उस देश की राष्ट्रभूमि, राष्ट्रिय संस्कृति तथा राष्ट्रभाषा के प्रति मातृत्व की भावना रखता है, वही व्यक्ति अपने को उस राष्ट्र का उत्तम निज कह सकता है। अथवा अपने को उत्तम निज कहने वाले के अन्दर राष्ट्रभूमि, राष्ट्रसंस्कृति तथा राष्ट्रभाषा के प्रति मातृत्व की भावना स्वाभाविक रूप से होती है। धन अथवा पद के लोभ में वह अपने राष्ट्रधर्म को नहीं छोड़ सकता। यदि सभी व्यक्ति उत्तम निजभाव से रहेंगे, राष्ट्र का जो हित और अहित है, वह मेरा हित-अहित है, इस दृष्टि से व्यवहार करेंगे, उनसे राष्ट्र का अहित नहीं होगा। जो

¹ अथर्ववेद २.५.३

राष्ट्र के कर्मचारी हैं, यदि वे ऊपरी या पराए भाव से राष्ट्र में रहने लगे तो राष्ट्र का कितना नुकसान होगा, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वेद का यह दृष्टिकोण बहुत ही उच्च और राष्ट्रहित की दृष्टि से अति आवश्यक है। उत्तम निजभाव से रहने के कारण विदेशी लोग भी स्वदेशी के समान राष्ट्रहित करने वाले बनेंगे और उत्तम निजभाव न रखने वाले स्वदेशी लोग भी परदेशी लोगों के समान राष्ट्रहित का घात करने वाले होंगे। वेदों में यह सन्देश भी दिया गया है कि अपने अखण्ड राष्ट्र की रक्षा हेतु यहाँ लोगों में परस्पर एकता, संगठन और समानता की भावना भी परम आवश्यक है। क्योंकि ऊँचनीच तथा छुआछूत की भावना से राष्ट्र का पतन अवश्यम्भावी है। इस राष्ट्रोपयोगिनी एकता के लिये वेदों में ईशवन्दना भी की गई है और सभी नागरिक जनों से एकता लाने और उसे रखने के लिए जोरदार अपील भी की गई है। राष्ट्रियता सांस्कृतिक परम्परा पर गर्व की भावना राष्ट्रियता की दूसरी शर्त है— जिस राष्ट्र में व्यक्ति ने जन्म लिया है उसके लिये गर्व महसूस करे। यदि अपने राष्ट्र के प्रति व्यक्ति के अन्दर गर्व की भावना नहीं है तो निश्चित ही उसके अन्दर राष्ट्रिय भावना की कमी कही जायेगी। ऐसी स्थिति में यदि कोई अन्य देशवासी अपनी समृद्धि और विकास का उल्लेख करने लगे तब अपने देश के अन्दर उन चीजों को न देखकर व्यक्ति अपने अन्दर हीन—ग्रन्थि विकसित करने लग जाता है। कुछ दिन के बाद वह व्यक्ति हीन—ग्रन्थि का इतना शिकार हो जाता है कि वह स्वयं दूसरे उन्नत देश की प्रशंसा करने लगता है और अपने देश की बात—बात में निन्दा करने लगता है।

जब कोई देश, जाति या समाज अपनी हर प्राचीन वस्तु से, परम्परा से, मान्यता से, आचार—व्यवहार से घृणा करने लगता है, यह स्थिति मानसिक गुलामी की पराकाष्ठा होती है। उस मानसिक स्थिति को पहुँचा हुआ व्यक्ति राष्ट्रियता की उदात्त भावना से च्युत ही समझा जाता है। आज भारत में भी इस प्रकार की स्थिति दुर्भाग्य से विकसित होती जा रही है। तथाकथित पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित आज के अधिकांश लोगों में यह भावना विकसित होती दिखाई पड़ रही है कि विदेशों की शिक्षापद्धति अच्छी है, उन लोगों का आचार—व्यवहार अच्छा है, उनका धर्म अच्छा है, आदि—आदि। उनकी तुलना में हमारी शिक्षा पद्धति त्रुटि है, हमारी आचार—व्यवस्था ठीक नहीं, वे नाना प्रकार के दोषों की उसमें परिकल्पना करते हैं। यह स्थिति

राष्ट्रियता के लिये अत्यन्त खतरनाक है। अपने राष्ट्र में कहीं ऐसी स्थिति न आने पावे, कोई भी राष्ट्र राष्ट्रियता के श्रेष्ठ मानक तत्त्वों से रहित न हो जाये, इसीलिये वैदिक ऋषियों ने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की थी कि व्यक्ति अपने राष्ट्र को उत्तम समझे। उसकी परम्परा के प्रति गर्व की भावना रखे। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी इसी का संकेत करते हुए कहा है कि गुणरहित भी अपना धर्म दूसरे से श्रेष्ठ है तथा गुणयुक्त भी दूसरे का धर्म श्रेयस्कर नहीं। अपने धर्म में मरना भी अच्छा है, किन्तु दूसरे का धर्म भयावह है।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।²

वैदिक मन्त्रों में अनेक स्थलों पर इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें स्पष्ट रूप से अपने राष्ट्र को उत्तम राष्ट्र कहा गया है। अपने राष्ट्र के साथ उत्तम विशेषण का प्रयोग व्यक्ति की उदात्त राष्ट्रीयता का ही परिणाम है। जो व्यक्ति अपने राष्ट्र को उत्तम मानता है वह कभी भी उसके प्रति गद्दार नहीं हो सकता। उसके अहित की बात वह न सुन सकता है और न कभी सोच सकता है। जहाँ भी जायेगा, जिस किसी भी स्थिति में रहेगा, अपने राष्ट्र के सम्मान को सदा ध्यान में रखेगा। अपने राष्ट्र को कभी गिरवी नहीं रख सकता। वह सतत उसकी वृद्धि और ऐश्वर्य के लिये जागरूक रहेगा। अपने देवी देवताओं से भी अपने राष्ट्र की समृद्धि के लिये याचना करेगा। वैदिक ऋषि सदा यही प्रार्थना करता है कि सभी देवता उसके उत्तम राष्ट्र में सभी प्रकार का धन, वैभव प्रदान करें। **सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूतमे।³** एक मन्त्र में वैदिक ऋषि अपने राष्ट्र में उत्पन्न होने का गर्व करता है और जोर देकर कहता है कि मैं इस राष्ट्र में पैदा हुआ हूँ, परमात्मा मेरे राष्ट्र को कीर्ति और वृद्धि प्रदान करें। **प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिं वृद्धिं दधातु मे।⁴** राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना ने ही पुराणकाल में देवताओं द्वारा भी भारत में जन्म धारण करने की अभिलाषा व्यक्त कराई है। जिस भूमि पर कृष्ण ने विचरण

² गीता ३५.३

³ अथर्ववेद ८.१.१२

⁴ आश्वसं ५.८८.७ .

किया था, वह साधारण भूमि नहीं है। उस भूमि पर तो भाग्यशाली व्यक्ति ही पैदा होते हैं। यही मात्र कर्मभूमि है, बाकी तो सभी भोग भूमि है ।

गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।

यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः ।।⁵

यही भारतभूमि स्वर्ग और अपवर्ग प्रदान करने वाली है। इस प्रकार के जो अनेक भाव भारतभूमि के प्रति व्यक्त किये गये हैं। वे सब अपनी राष्ट्रभूमि के प्रति गर्व की भावना के कारण ही है। इसी राष्ट्रभूमि के प्रति गर्व की भावना मनु ने भी व्यक्त की है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।⁶

जिस राष्ट्र में अहमुत्तरोऽहमुत्तरः की भावना से लोग कार्य करते हैं वह राष्ट्र विकास करता है। जिस राष्ट्र में श्रेष्ठ आचार वाले लोग अपने कर्म में आगे रहते हैं और उन्हें अपने प्रचार की सुविधा प्राप्त होती है, वह राष्ट्र श्रेष्ठ होता है और उसी को 'संवेश्य राष्ट्र' कहते हैं। संवेश्य राष्ट्र का अर्थ है— ऐसा राष्ट्र जो प्रवेश करके रहने योग्य हो। ऐसा न हो कि जिसमें प्रवेश करने पर घुटन सी महसूस हो। इस प्रकार का राष्ट्र देवताओं की कृपा से ही प्राप्त होता है।

आयातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन्पृथिवीमुनियाभिः ।

अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्वृहद्राष्ट्र संवेश्यं ददातु ।।⁷

राष्ट्र की सभा—समितियों में मुख्य स्थान में बैठने योग्य में होऊँ, यह भावना सबके अन्दर होनी चाहिये। इस भावना से सभी लोग अपने पुरुषार्थ से अपनी उन्नति का साधन करेंगे और सब मिलकर अपने राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जाएँगे। इस उत्तरत्व की स्पर्धा में परस्पर का घात नहीं होता प्रत्युत स्वयं के व्यक्तित्व का जहाँ विकास होता है, वहाँ राष्ट्र की उन्नति होती है। कभी आपस में

⁵ ब्रम्हपु २५.१९ , ब्रम्हपु २३.१९

⁶ मनुस्मृति २०.२

⁷ अथर्ववेद ३.८.१

विरोध का भाषण न करने वाले स्वजातियों के द्वारा प्रदीप्त एक राष्ट्रियता की अग्नि बहुत दीर्घकाल तक प्रज्वलित रहे, कभी शान्त न हो। **अयमग्निर्दीदयद्दीर्घमेव सजातैरिद्धो प्रति बरुवद्भिः।^८**

सभी सत्य विद्याओं एवं जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है, तथा 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है', इन मान्यताओं पर किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। जिन दार्शनिक परम्पराओं में आदि सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है, उनमें यह मानना आवश्यक हो जाता है कि सृष्टि के आदि में समस्त आवश्यक ज्ञान सृष्टिकर्ता द्वारा मनुष्य को दिये जायें अन्यथा अबोध मनुष्य तत्त्वचिन्तन की कौन कहे, आहार—विहार की सामान्य क्रियाओं को और उसके लिये अपेक्षित पदार्थों को भी जान—पहचान नहीं सकेगा। मनुष्य सर्वेन्द्रिय सम्पन्न प्राणी है, अतः उसके लिये आहार—विहार एवं सामान्य जीवन—यात्रा का ज्ञान मात्र पर्याप्त नहीं है। उसे तो अपनी ज्ञानशक्ति, इच्छा शक्ति और क्रिया—शक्ति का प्रयोग करने के लिये विविध विद्याओं का ज्ञान चाहिए। इसलिये यह अत्यन्त स्वाभाविक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है कि उसे परम प्रभु द्वारा सर्वविध विद्याओं का बोध सृष्टि के आदि में दिया जाए। परम प्रभु द्वारा सृष्टि के आदि में मानव के लिये दिया हुआ यह ज्ञान ही वेद चतुष्टयी के रूप में हमारे बीच विद्यमान है, यह स्वीकरणीय होता है।

वेदों में शिक्षा की व्यवस्था की सम्भावना काल्पनिक नहीं है। वहां शिक्षा व्यवस्था और उससे सम्बन्धित सभी पहलुओं की चर्चा विस्तार से हुई है। शिक्षा कैसी हो, कब हो, शिक्षार्थी का जीवन और उसकी जीवन—चर्या कैसी हो, शिक्षक का सम्बन्ध शिक्षार्थी के साथ क्या हो, इत्यादि विविध विषयों पर वेदों में सविस्तार से चर्चा हुई है।

भारतीय संस्कृति में अथवा वैदिक कालीन शिक्षा—व्यवस्था राज्य के अधीन कभी नहीं रही है। शिक्षा यदि राज्य शासन के अधीन होती है, तो राजा अथवा राज्यव्यवस्था के अधिकारी अपने संकीर्ण स्वार्थ की सिद्धि के लिये शिक्षा के विषयों के उद्देश्य का निर्धारण सुप्रशस्त नहीं करते। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था इसका उदाहरण है। गम्भीर चिन्तन करने वाले ब्रह्मविद् ऋषियों मुनियों के अधीन जब

^८ अथर्ववेद ३.८.३

शिक्षा—व्यवस्था होती है, तो वे सुदूर भविष्य का दर्शन करके शिक्षा की योजना बनाते हैं एवं उसे कार्यान्वित करते हैं। यही कारण है कि वेदों के निर्देश के अनुसार प्राचीनकाल में गुरुकुलों (शिक्षा संस्थाओं) की स्थिति जंगलों में हुआ करती थी। राजा—महाराजा और सर्वसामान्य दोनों की ही सन्तानें भेदभाव भूलकर साथ—साथ अध्ययन करती थीं।

राज्य, शिक्षा और उनके सम्बन्ध का अध्ययन करने के लिये भी हमें ऊह की आवश्यकता होगी। वेदों में वर्णाश्रम व्यवस्था का सुस्पष्ट विधान है। वेदों के तात्पर्य को समझकर मनु आदि आचार्यों ने अध्ययन—अध्यापन अर्थात् शिक्षा का प्रसार ब्राह्मण का धर्म लिखा है। अतः शिक्षा ब्राह्मणों के अधीन थी, राज्यसत्ता के नहीं, यह मानना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण में हमें एक ऐसा संकेत अवश्य मिलता है, जिससे यह मानना उचित होगा कि शिक्षा के प्रसंग में भटकाव आ जाने पर राज्य शासन हस्तक्षेप भी करता था। अन्यथा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप के बिना गुरुकुलों में रह रहे आचार्य और ब्रह्मचारी की रक्षा करना अर्थात् उन पर किसी प्रकार के कष्ट न आने पायें, इसका ध्यान रखना ही उनके कार्यक्षेत्र में रहा है।

सम्पूर्ण शिक्षा—व्यवस्था गुरुकुलों में कुलपति, आचार्य और उपाध्यायों के अधीन अथवा उनकी व्यवस्था में चलती थी। वेदों में प्राप्त संकेतों के अनुसार उनमें शिक्षा का माध्यम (शिक्षण की शैली) उपदेश शैली, प्रश्नोत्तर शैली, श्लिष्ट प्रश्नोत्तर शैली, प्रतीकोपदेश शैली और अनुसंधान शैली आदि रहा है। राज्यशासन द्वारा शिक्षा के प्रतिबन्धित होने का केवल एक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण के एक कथानक में मिलता है। इस कथानक में अग्नि पद को शिक्षा का प्रतीक मानकर कहा गया है कि राजा ने अग्नि को अपने मुख में बंद कर लिया था अर्थात् शिक्षा को प्रतिबन्धित कर दिया था।

वेद के अनुसार राज्य में शिक्षा का स्वरूप किस प्रकार होना चाहिए, इस सन्दर्भ में आज की वेदगोष्ठी में विचार करने से पूर्व, वेद व राष्ट्र विषय पर संक्षिप्त रूप से विचार कर लेना आवश्यक है। वेद शब्द संस्कृत भाषा की विद् धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ आचार्य पाणिनि के अनुसार **विदज्ञाने, विदविचारणे, विदसत्तायाम् एवं विद् ललाभे** है। अर्थात् वेद शब्द का अर्थ हुआ ज्ञानपूर्वक विचार करके सत्ता का लाभ प्राप्त करना। विश्व साहित्य में वेदों को संसार के पुस्तकालय

में प्राचीनतम ग्रन्थ स्वीकार किया गया है।⁹ महर्षि मनु ने भी 'वेदश्चक्षु-सनातनम्'¹⁰ कहा है। वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान का आकार है। वेदे सर्वज्ञानमयो हि स।¹¹ सृष्टि के आदि में मानव मात्र के कल्याणार्थ गुरुओं के गुरु परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य एवं अङ्गिरा आदि ऋषियों को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद का ज्ञान प्रदान किया। महर्षि कणाद की सम्मति में वेद कोई साधारण ग्रन्थ नहीं हैं, वेदों के प्रत्येक वाक्य की रचना बुद्धि पूर्वक है— बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।¹² आचार्य कपिल के अनुसार 'वेद पौरुषेय नहीं हैं' क्योंकि उसका बनाने वाला कोई पुरुष नहीं हो सकता। न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्या भावात्।¹³ परिणामतः नित्य और अपौरुषेय वेद परमात्मा की अपनी निज शक्ति से प्रकट होता है अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।¹⁴ इसलिये वेद स्वतः प्रमाण है। निजशक्तयभिव्यक्ते स्वतः प्रामाण्यम्।¹⁵ महर्षि पतञ्जलि अपने ग्रन्थ महाभाष्य में वेद के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है 'वेद का एक शब्द भी भलीभांति समझ लिया जाये और समझकर उसके अनुसार आचरण किया जाये तो वह हमारे इस संसार को स्वर्ग बनाने की शक्ति रखता है तथा हमारे लिये कामधेनु बन जाता है। एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग भवति।'¹⁶

महर्षि स्वामी दयानन्द की दृष्टि में— 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना, सब आर्यों का परम धर्म है।'¹⁷ वेद सारी मनुष्य जाति को अमर परमात्मा का पुत्र मानता है— शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।¹⁸

⁹ Veda is the oldest book in the library of the world. Max muller

¹⁰ मनुस्मृति १४.१२

¹¹ मनुस्मृति ७.२

¹² वैशेषिक दर्शन ६१.१

¹³ सांख्य दर्शन ५४६

¹⁴ महाभारत श्लोक २३.१४

¹⁵ सांख्य दर्शन ५१.५

¹⁶ महाभाष्य ६.११८४

¹⁷ आर्य समाज ३ नियम।

¹⁸ ऋग्वेद १.१३१.१०

और मनुष्यों को परस्पर किसी से द्वेष नहीं करना चाहिए— अविद्वेष कृणोमि वः¹⁹
सबको सबसे मित्रता रखनी चाहिए। मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।²⁰

वेद में मनुष्यों को भोग—विलास के जीवन से पृथक् रहकर तप, सरलता, संयम एवं सादगीपूर्ण जीवन बिताने का निर्देश है— ‘ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमपाहनत’।²¹ वेद में मनुष्य को सौ साल की लम्बी आयु प्राप्त करने एवं उत्तमोत्तम कर्म करने के लिए कहा गया है। ‘कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा’।²² वेद सब मानव जीवन की लोकयात्रा को सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है उसमें मनुष्योपयोगी सब ज्ञानों का मूल विद्यमान है— शिक्षा, आचार विद्या, गणित, ज्योतिष विद्या, उद्गीथ विद्या, भूतविद्या, आयुर्वेद, नौविमान विद्या, सृष्टि विद्या, विविध प्रकार की कलाएं, उद्योग धंधे, व्यापार, देशाटन, काव्य शैलियां आदि कितने ही विषय वेद में समाविष्ट हैं। स्वामी दयानन्द का कथन है कि वेद के चार विषय हैं— विज्ञान, कर्म, उपासना एवं ज्ञान, इनमें भी विज्ञान मुख्य है। क्योंकि ‘वेदों में ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्यन्त, सब पदार्थों का यथावत् ज्ञान है’— ऐसा मानते हैं, यही सिद्धान्त ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों का है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष वेद के अंग हैं और इसीलिये ये वेदांग कहलाते हैं। वेद का अध्ययन अंगोपाङ्ग सहित ही यथावत् करना चाहिए। महर्षि पतञ्जलि ने स्पष्ट लिखा है।

‘ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदाध्येयोज्ञेयश्च’।²³

परन्तु मध्यकाल में वेदों के सन्दर्भ में कुछ लोगों ने अविद्या के कारण दुष्प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। यथा— ‘वेद गडरियों के गीत हैं इसमें जादुटोने एवं अन्धविश्वास से युक्त विचार भरे पड़े हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का १९वीं शती में जब प्रादुर्भाव हुआ तो उन्होंने आर्ष परम्परा से वेदों का अध्ययन किया तथा वेदों के बारे में जो मिथ्या

¹⁹ अथर्ववेद १९.३०.३

²⁰ यजुर्वेद ३६.१८

²¹ अथर्ववेद १९.५.११

²² यजुर्वेद ४०.२

²³ महाभाष्य १.१.१

प्रचार किया जा रहा था उसका खण्डन किया। क्योंकि वेदों के अन्तर्गत निहित जो सच्चाईयां हैं वह तक²⁴ एवं विज्ञान के अनुकूल हैं। स्वामीजी ने वेद को ऋचा का प्रमाण देकर बतलाया कि — वेदों के अध्ययन का मानव मात्र को अधिकार है।

यथेमां वाचं कल्याणी मा वदानि जनेप्यः।

ब्रह्मराजन्याभ्यर्थं शूद्राय चार्याय च स्वाय चाराणाय।।²⁵

पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर ने अपने ग्रन्थ— **'India: What can It Teach Us** में लिखा है कि वेद सत्य और प्रकाश की किरणों से जगमगा रहे हैं।

वेदों के अनन्य भक्त श्री बर्नूफ भी एक ऐसे विद्वान् थे जो मानते थे कि वेद मानव जाति के लिये अत्यन्त कल्याणकारी उपदेशों, आदेशों और शिक्षाओं से ओत-प्रोत हैं।

वेद में राष्ट्र से संबंधित अनेक शब्द आते हैं। राज्य, साम्राज्य, स्वराज्य, महाराज्य आदि वैदिक साहित्य की देन है। राष्ट्र शब्द का वेद में बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में राष्ट्र शब्द अनेक बार आया है। अपने राष्ट्र के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा है।

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पति।

ध्रुवं ते इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्र धारयतां ध्रुवम्।।²⁶

अर्थात्— वरुण राष्ट्र को अविचल करे, बृहस्पति राष्ट्र को स्थिर करे, इन्द्र राष्ट्र को सुदृढ करे, और अग्निदेव राष्ट्र को निश्चय रूप से धारण करे। आर्यों की एक मात्र कामना थी

‘आ राष्ट्र राजन्यः शूर इपत्योऽति व्याधी महारथो जायतामे’।²⁷

अर्थात्— हमारे राष्ट्र में क्षत्रिय वीर, धनुर्धर और महारथी हो, उनकी उत्कट उत्कंठा थी। **वयं राष्ट्र जागृत्याम् पुरोहिताः।²⁸** अपने राष्ट्र में नेता बनकर जागरणशील रहें। आर्यों का दृढ विश्वास था। **ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्र**

²⁴ वस्तुकेणानु संधते सधर्म वेद नेतरः। १२ १०६/१५.

²⁵ यजुर्वेद, २६१२

²⁶ ऋग्वेद ५.७१.१.१०

²⁷ यजुर्वेद २२.२२

²⁸ यजुर्वेद २२.२२

विरक्षित।²⁹ ब्रह्मचर्यरूप तप के ही बल से राजा राष्ट्र की रक्षा कर सकता है। वेद में राष्ट्रवासियों के लिये शिक्षा है—

जनं बिभ्रती बहुधाविवाचसं, नाना धर्माणं पृथ्वी यथौकसम्।

सहस्रं धारा द्रविणस्य में दुहां, ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।³⁰

अर्थात्— अनेक प्रकार की भाषा बोलने वाले अथवा विविध विचारों को धारण करने वाले, अनेक प्रकार के धर्मों को मानने वाले, विविध प्रकार के कर्तव्य करने वाले मनुष्यों को यह एक घर परिवार के समान हमारी मातृभूमि पालन करती है। इसका भाव भाषावाद, प्रांतीयता क्षेत्रीयता आदि के संकुचित भावों को दूरकर मातृभूमि को अखण्डित करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब राष्ट्र में वेद के अनुसार शिक्षा प्रचलित हो। शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है नहीं तो वह निरा पशु रह जाता है।

हम यहां पर वेद के अनुसार राज्य में शिक्षा का स्वरूप किस प्रकार का होना चाहिए, इस विषय पर अपने विचार रखने का प्रयास करेंगे। वैदिक परम्परानुसार बालक शैशव अवस्था पारकर, मातृमान् और पितृमान बन, आचार्यवान्³¹ होने के लिये गुरुकुल में प्रविष्ट होता है तथा आचार्यरूप अग्नि में अपने आपको समिधा बनाकर ज्ञान ज्योति से प्रदीप्त हो जाता है। प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा का आश्रम है। वेदों का अध्ययन करने से पता चलता है कि उनमें शिक्षा से सम्बन्धित अनेक सूत्र हैं।

शिक्षा का महत्त्व—

महर्षि दयानन्द ने वेद भाष्य करते समय अनेक मंत्रों का शिक्षापरक भाष्य करके शिक्षा के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। प्रमाण स्वरूप यजु. १२/४५ मंत्र का भावार्थ उद्धृत है— माता, पिता और आचार्य का यही परम धर्म है जो संतानों के लिये अच्छी विद्या और अच्छी शिक्षा की प्राप्ति कराना।'

²⁹ अथर्ववेद ६.९.५

³⁰ अथर्ववेद ४५.१२

³¹ मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषोवेद।

महर्षि दयानन्द यजुर्वेद १८/३६ मंत्र के भाष्य में लिखते हैं— 'विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य यही है कि जो पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी सुन्दरशीलयुक्त नित्य किया करें।'

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में शिक्षा को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। महर्षि के शब्दों में 'सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों को धारण करना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है।' स.प्र.३ समु.।

शिक्षा प्रसार—

राज्य का एक प्रमुख कर्तव्य— राजा को राष्ट्र में शिक्षा का प्रचार—प्रसार करके, अविद्या अन्धकार को राष्ट्र में से नष्ट करके सत्यज्ञान का प्रकाश करना चाहिए। इस प्रकार के संकेत वेद के अनेक मंत्रों में पढ़ने को मिलते हैं। प्रमाण स्वरूप यहाँ पर कुछ मंत्र व मंत्रखण्ड उद्धृत हैं

१. शिक्षानरः। 'हे इन्द्र! तू शिक्षा से मनुष्य को सम्राट'³²
२. शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्। हे इन्द्र! शिक्षा से मनुष्यों के सम्राट का नेतृत्व करने वाला है और इस प्रकार युद्धों में शत्रुओं को मारने वाला है।³³
३. ददन्मेधामृतायते।³⁴ अर्थात्— हे अग्नि! (सम्राट) तू मुझे सत्य ज्ञान मांगने वाले को मेधा दे। सत्य ज्ञान मांगने वाले प्रजाजन को मेधा अर्थात् बुद्धि शक्ति देना शिक्षा—प्रचार द्वारा ही राजा के लिये सम्भव है।

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।

शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवाज्योतिरशीमहि।³⁵

अर्थात्— हे इन्द्र! (सम्राट) पिता जैसे अपने पुत्रों को ज्ञान और कर्म का उपदेश देता है। वैसे ही तू हम प्रजाजनों को इनका उपदेश दे, हे बहुतों द्वारा चुने हुए तू हमें जीवन मार्ग में शिक्षित कर जिससे हम जीव लोग प्रकाश को प्राप्त कर सकें। यहां तो राष्ट्र में शिक्षा प्रचार द्वारा प्रकाश फैलाने का स्पष्ट ही विद्यमान है।

³² ऋग्वेद १२.४३

³³ ऋग्वेद ७.२०.४

³⁴ ऋग्वेद ४.५.२७

³⁵ ऋग्वेद २३.३२.७

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनानि धाम।³⁶

अर्थात्—राजा कहता है कि मैं इन सभी प्रकार के विद्वानों का तेज नष्ट नहीं होने दूंगा। इस प्रकार के विद्वानों को राष्ट्र से नष्ट नहीं होने दूंगा। शिक्षा प्रचार द्वारा सदा ऐसे विद्वानों को तैयार करता रहूंगा।

राष्ट्र में शिक्षा प्रसार के लाभ—

वेद में राष्ट्र में शिक्षा के प्रचार—प्रसार के अनेक लाभ बतलाये गये हैं। विद्या प्रचार से ही लोगों को समझ के साथ बोलना आ जाता है— किस समय कैसे वचनों का प्रयोग करना चाहिए इसे समझकर वे अपने शब्दों का उच्चारण करते हैं। सब प्रकार के ज्ञान और कर्म राष्ट्र में सम्पन्न होने लगते हैं।

वचोविदं वाचमुदीरयन्ती विश्वाभिर्धीभिरूपतिष्ठमानाम्।

देवी देवेभ्यः पर्येयुषी गामा मावृक्त मयो द भ्रचेताः।।³⁷

इसीलिये वेद के मंत्र में उपदेश है कि राष्ट्र में विद्या के प्रचार—प्रसार को मत रोको।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादिव्यानाममृतस्यनाभिः।

प्रनु बोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्टः।।³⁸

शिक्षा केन्द्रों का परिवेश—

वेद में शिक्षा केन्द्रों के लिये सुन्दर और रमणीक प्रकृति की गोद में स्थापना के निर्देश हैं। प्रदूषण से रहित भौतिक पर्यावरण में रहकर शिष्य का प्रकृति के साथ सीधा सम्पर्क हो जाता है। इस संबंध में यजुर्वेद में उल्लेख आता है कि—

उपहरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।

धिया विप्रो अजायत।।³⁹

अर्थात्— पर्वतों के निकट और नदियों के सङ्गम स्थल पर गुरुओं की प्रज्ञा और क्रियाकुशलता द्वारा प्रज्ञा और क्रियाकुशलता से युक्त मेधावी विद्वान् तैयार हो

³⁶ ऋग्वेद १०.११.४८

³⁷ ऋग्वेद १६.१०.१८

³⁸ ऋग्वेद १५.१०१.८

³⁹ यजुर्वेद १५.२३

तथा विद्यार्थियों के निवास स्थान व पाठशाला नगर से न दूर न ही समीप हो साथ ही स्वच्छ एवं एकान्त स्थान में शुद्ध तथा मनोहर परिस्थिति में बनावें, क्योंकि नगर व ग्राम में विद्यालय होंगे तो ध्वनि तथा वायु प्रदूषण होने के कारण विद्यार्थियों को बाधा होनी सम्भव है। इसी हेतु से मनु. में लिखा है कि

नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च।

धर्म नैपुण्य कामानां प्रतिगन्धं च सर्वदा।⁴⁰

अर्थात्— ग्राम नगर व दुर्गन्धयुक्त स्थान में कभी विद्यार्थी न पढा करें एवं शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य में लिखा है कि षुचोष् अर्थात् विद्यार्थियों को स्वच्छ पवित्र स्थान में पढना चाहिए। परमवेदज्ञ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स.प्र.:३ समु. में लिखा है कि— ‘विद्या पढने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए...पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम व नगर रहें। सबको तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिए जायें, चाहे वह राजकुमार हो चाहे दरिद्र की सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।’

अथर्ववेद३.६.२३ में लिखा है ‘समानी प्रपा सह....३ अर्थात् सबको परस्पर प्रेम से मिलकर रहना चाहिए। वेद की दृष्टि में सब छात्रों के साथ समानता का व्यवहार होना चाहिए।

आज अमेरिका की धरती पर एक मूर्धन्य वैज्ञानिक Dr. Fritjof Capra ने The Tao of Physic पुस्तक लिखकर वेद के उपर्युक्त सिद्धान्त की पुष्टि कर दी है। Dr. Fritjof Capra का कथन है कि सन् १९७० में जब वह एक दिवस समुद्र के तट पर एकान्त में बैठे होते हैं तो उन्हें पुस्तक लिखने की प्रेरणा मिली। कहने का तात्पर्य शिक्षा संस्थाओं को स्वच्छ जलवायु और रमणीक प्राकृतिक वातावरण में खोलने से छात्र-छात्राओं का शारीरिक स्वास्थ्य तो उत्तम रहेगा ही उनका मानसिक स्वास्थ्य भी उच्चकोटि का रहेगा। वेद में शिक्षणालयों से संबंधित निर्देश एक आदर्श के रूप में हैं।

वेदों के अनुसार ही प्राचीन ऋषि सान्दीपनि का शिक्षा केन्द्र था। अपने समय में ऋषि सान्दीपनि एक प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय शिक्षाविद थे। इनका शिक्षा केंद्र

⁴⁰ मनुस्मृति १०७.४

अवन्ती देश में उज्जैन नगर के कहीं आसपास था। इस शिक्षा केन्द्र के द्वार गरीब-अमीर सभी प्रकार के योग्य छात्रों के लिये समभाव से खुले रहते थे। जहाँ कृष्ण जैसे- राजपरिवार के छात्र वहाँ प्रवेश पाते थे, वहाँ सुदामा जैसे अति निर्धन छात्रों का प्रवेश भी बिना किसी बाधा के अति सुलभ था। शिक्षा केन्द्र में धनी-निर्धन का कोई प्रश्न नहीं था। शिक्षाकाल में समस्त छात्रों का रहन-सहन, आहार, व्यवहार तथा अन्य सब कार्यक्रम समान रूप से चलता था। आचार्य सान्दीपनि के शिक्षा केन्द्र की प्रतिष्ठा बहुत बढी-चढी थी। महाभारत आदि ग्रन्थों में उपलब्ध सूची से पता चलता है कि आचार्य सान्दीपनि के शिक्षा केन्द्र में षडङ्गवेद, चित्रकला, गणित, गन्धर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, से दस अङ्ग (व्रत, प्राप्ति, धृति, पुष्टि, स्मृति, क्षेय, शत्रु भेदन, चिकित्सा, उद्दीपन, कृष्टि), विधिशास्त्र, उपनिषद् (अध्यात्म विद्या) आदि सब विद्याओं के अध्यापन का प्रबन्ध था।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द को गुरुकुल को नगरों से दूर हिमालय पर्वत की उपत्यका में, गंगा के किनारे, रमणीक वन प्रदेश में स्थापित करने की प्रेरणा ऊपर उद्धृत यजुः २६/१५ मंत्र के ऋषि दयानन्द कृत भाष्य को पढ़कर ही हुई थी। आज राष्ट्र में अनेकों गुरुकुल खुले हुए हैं। कुछ गुरुकुलों को छोड़कर शेष की दशा अत्यन्त दयनीय एवं चिन्ताजनक स्थिति में पहुँच चुकी है। आचार्य सान्दीपनि, स्वामी श्रद्धानन्द, आचार्य रामदेव, डा. प्रज्ञादेवी एवं आचार्य डा. वेदपाल सुनीथ जैसे- विद्यावान, चरित्रवान, सदाचारी, त्यागी, तपस्वी आचार्यों का आज गुरुकुलों में अभाव है।

आज राष्ट्र को सदाचारी, देशभक्त, ईमानदार, परिश्रमशील विद्वान् नवयुवकों की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव है जब अध्यापक ओटो की भांति ऋषि संस्था का पुनरुद्धार करने के लिये हम सभी तन मन धन से सहयोग करें। हमारे शिक्षा केन्द्रों का स्तर जब पुनरु उच्च होगा तो भारत राष्ट्र के ही विद्यार्थी उनमें अध्ययन नहीं करेंगे बल्कि महर्षि मनु की उद्घोषणा के अनुसार समस्त भूमण्डल के लोग आकर उनमें विद्या एवं चरित्र की शिक्षा प्राप्त करेंगे।

शिक्षा का उद्देश्य—

अथर्ववेद१/१/१-४ मंत्रों का छोटा सा सूक्त शिक्षा विषयक है। इसमें यह बताया गया है कि विद्यार्थी को शिक्षा प्राप्ति के समय अपने आचार्य के प्रति किस प्रकार की मनोभावना रखनी चाहिए। साथ ही शिक्षा का उद्देश्य और शिष्य के प्रति आचार्य के कर्तव्यों का भी वर्णन किया गया है, यहां पर प्रथम मंत्र प्रस्तुत है

ये त्रिषप्तारूपरियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥⁴¹

मंत्र में शिक्षा का प्रयोजन बतलाया गया है कि संसार का निर्माण करने वाले सब पदार्थों का सम्पूर्ण ज्ञान हो जावे जिससे उनकी शक्ति से हम लाभ उठा सकें। मंत्र में प्रयुक्त वाचस्पति शब्द द्वारा परमात्मा से शिक्षा ग्रहण करने में कृपा की, और आचार्य से सब ज्ञान सिखाने की प्रार्थना की गई है।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को सत्यवादी नागरिक बनाना है। इसीलिए मातापिता बालक को गुरुओं के समीप लाकर कहते हैं— हे गुरुजनों! आप कमल फूलों की माला पहने हुए इस कुमार को अपने गर्भ में धारण कीजिए, जिससे यह आदमी बन जाए।

एतर्दश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन्

पृथिव्यां सर्वमानवः॥⁴²

ब्रह्मचारी समित्याणि⁴³ होकर आचार्य के समीप विद्या अध्ययन के लिये पहुंचता है। वह आचार्य कुल की अग्नि में समिधा डालता हुआ जिस मंत्र का उच्चारण करता है, उसका भाव यह है— 'इस बृहत् जातवेदस अग्नि के लिये मैं समिधा लाया हूँ। हे अग्ने ! जैसे तू समिधा से समिद्ध होता है, वैसे ही आयु, मेधा, तेज, प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस से समिद्ध होऊँ। मेरा आचार्य जागरुक पुत्रों शिष्यों वाला हो। मैं मेधावी यशस्वी, तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी और आनंद को प्राप्त होऊँ। इससे ज्ञात होता है कि शिक्षा का वैदिक उद्देश्य यह है कि शिष्य (छात्र) आचार्य के सान्निध्य में

⁴¹ अथर्ववेद१.१.१

⁴² मनुस्मृति १०७.४

⁴³ यजुर्वेद ३३.२

रहकर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास करे तथा अविद्या आदि बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करे।

5.4 वेदों में स्वराज्य की परिकल्पना—

वेद यदि ईश्वरीय ज्ञान, और सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, तो इसमें स्वराज्य की परिकल्पना अनिवार्य रूप से होनी चाहिये। किन्तु इस आधार पर यह सिद्ध करना कि हमारा देश अकल्पनीय काल से एक राष्ट्र के रूप में स्वराज्य का आनन्द लेता रहा है, उचित नहीं। क्योंकि ऐसा मानने पर वेद में इतिहास, और वेद को पौरुषेय मानना होगा।

वेद का स्वराज्य वेद में स्वराज्य शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ८०वें सूक्त के १६ मंत्रों की टेक हैं 'अर्चन्ननु स्वराज्यम्।' इन मन्त्रों में कहा गया है कि—

(१) आत्म शासन के अनुरूप देश की सेवा करो। पहले अपनी इन्द्रिय वृत्तियों पर अनुशासन करो, तदनन्तर देश की सेवा करो, अन्यथा भटक जाने पर देश का नुकसान हो जायेगा।

(२) अपने राज्य के शासन की स्वच्छता के अनुरूप, दुष्टों, दस्युओं, वृत्रों को दण्ड दो।

(३) अपने शासन के सामर्थ्य के अनुरूप अपने शत्रुओं को दण्ड दो। ऋग्वेद के १म मण्डल के ८४ सूक्त के १० से १२ मन्त्रों की टेक है। श्वस्वीरनु स्वराज्यमश् इनमें कहा गया है।

(क) राज्य में निवास करने वाली प्रजाएं शासन की उत्तमता के अनुपात में प्रसन्न व सुखी रहती हैं।

(ख) इसी तरह ये प्रजाएं, सुशासन के सुख को भोगती हुई, अपने शत्रुओं पर अस्त्रों शस्त्रों का प्रयोग करके उन्हें परास्त कर देती हैं।

(ग) ये प्रजाएं शासकों के आत्वशी व संयमी होने के अनुपात में शासन के नियमों व कानूनों का पालन करती हैं। शासकों के दुष्ट या अनाचारी हुवे बिना प्रजाएं, अनाचारी या आतंककारिणी नहीं होती हैं।

वयं च सूरयः । व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ।⁴⁴

चक्रवर्ती (अत्यन्त विस्तृत) स्वराज्य की रक्षा, राजा और प्रजा के सम्मिलित प्रयत्न से ही संभव है। अतः दोनों को मिल कर प्रयत्न करना चाहिये। बहुजन शासित, और रक्षित होने के कारण इस प्रजातन्त्रात्मक शासन को ही बहुपाय स्वराज्य कहा गया। इसकी रक्षा और उन्नति के लिये प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है कि वह अपने सामर्थ्य के अनुसार ऐसी स्थिति लाने के लिए प्रयत्न करे, और सहयोग दे।

वेद में अराजक विराट अवस्था से लेकर राष्ट्र संघ तक की कल्पना अथर्ववेद काण्ड के विराट देवता वाले १० वे सूक्त में प्रदर्शित व्यवस्था—

विराट अवस्था—

सृष्टि के प्रारम्भ में कोई राज्य व्यवस्था नहीं थी। प्रत्येक गृह स्वामी अपने को राजा मानता था। इसलिये आपस में झगड़े फसाद होते रहते थे। लोग परस्पर हमले से भयभीत रहते थे। सबने इकट्ठे होकर सुरक्षा की व्यवस्था का विचार किया, और समीपस्थघरों को इकाई मानने लगे।

गार्हपत्य अवस्था—

इस प्रकार मोहल्ले को इकाई मानकर, उसे घर की तरह से चलाने, व्यवस्था करने और उन्नति तथा सुरक्षा के प्रबन्ध करने के कारण इस व्यवस्था का नाम गार्हपत्य रख दिया गया। कुछ काल बाद इन गार्हपत्य मौहल्लों में झगड़े होने लगे। तब सब मौहल्ले वालों ने एकत्रित होकर इतने प्रदेश जनपद को इकाई मानकर व्यवस्था करने का निश्चय किया, जितने प्रदेश के लोग आवाज देकर इकट्ठे हो सकते हों।

आहवनीय अवस्था—

इसका नाम आहवनीय रक्खा गया, इसे ग्राम या जनपद कह सकते हैं। कुछ समय बाद इन ग्रामों में झगड़े होने लगे। तब आहवनीय ग्रामों वालों ने एकत्रित

⁴⁴ ऋग्वेद १.६६.६

होकर, अपनी व्यवस्था और सुरक्षा के लिये जनपदों या ग्रामों के समूह को इकाई मान विचार प्रारम्भ किया।

दक्षिणाग्नि अवस्था—

इन ग्राम समूहों अथवा जिले की व्यवस्था का नाम दक्षिणाग्नि रखा गया। इससे पूर्व की तीनों व्यवस्थाओं में, व्यवस्थापक को कोई दक्षिणा वेतन नहीं दिया जाता था। वह घर के मुखिया की तरह प्रबन्ध करता था। जिले की इकाई इतनी बड़ी हो गई कि व्यवस्थापक प्रमुख को अपना सारा समय लगाना, पड़ता था। अतः उसकी दक्षिणा वेतन निर्धारित हुई, और व्यवस्था का नाम दक्षिणाग्नि—सवेतन—प्रमुख, पड़ गया।

जनपद प्रान्त सभा व्यवस्था—

जब जिलों में परस्पर समस्याएं और झगडों, की स्थिति उत्पन्न हुई, तब प्रत्येक जिले से प्रतिनिधियों को लेकर एक प्रान्तीय सभा बनी, जो सब जिलों का शासन, परस्पर सहमति से चलाने लगी। इस व्यवस्था का नाम सभा=जनपद सभा—विधान सभा रखा गया। यह विधान सभा पूरे प्रान्त के शासन और व्यवस्था के लिये उत्तरदायी बनी।

सभा समिति देश या राष्ट्र व्यवस्था—

प्रान्त बहुत बड़े बड़े हो गये। इनकी शक्ति भी व्यापक थी। इनके झगडे निपटाने के लिये केवल आरक्षित दल सभा द्वारा नियुक्त पुलिस पर्याप्त नहीं थी। सेना या फौज की आवश्यकता अनुभव की गई। और फिर सभा के साथ समिति युद्ध के लिये सन्नद्ध सैनिकों की समिति भी नियुक्त की गई। इसे ऊपर हाऊस या राज्य सभा का नाम दे सकते हैं। वेद के अनुसार प्रान्त तक तो केवल एक ही सभा विधान सभा होनी चाहिये। हाँ, देश के लिये सभा और समिति दो सभाएं बनाई जा सकती हैं।

‘सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।’⁴⁵

⁴⁵ अथर्ववेद ७.१३.१

देश का शासन चलाने के लिये सभा और समिति दो संगठन आवश्यक हैं। क्योंकि देशों के झगड़े केवल बातचीत से नहीं निपटते हैं। उनमें सेनाएं भी भाग लेती हैं।

सामन्त्रण व्यवस्था—

देशों के झगड़े तो सेनाओं से ही सुलझते हैं। और जो देश शक्तिशाली होता है, वह विजयी हो जाता है। इस प्रकार फिर एक तरह से मात्स्यन्याय चल पड़ता है। इस परिस्थिति से परेशान होकर पृथक-पृथक देश एकत्रित होकर नया संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ बनाते हैं। वेद ने इस संगठन का नाम सामन्त्रण रखा है। क्योंकि इसमें सब देशों को निमन्त्रित किया जाता है। उन्हें इसमें सम्मिलित होने के लिये बाध्य नहीं किया जाता।

वेद में राष्ट्र और भूमि मातृभूमि समानार्थक हैं वेद में राष्ट्र और भूमि (मातृभूमि) शब्द पर्यायवाची हैं। वेद के अनुसार जितने लोग मिलकर भूमि के जितने भाग को अपनी मातृभूमि समझते और मानते हैं, उतना भाग उनका राष्ट्र होता है। यह राष्ट्र हमारे प्रान्त से भी छोटा हो सकता है, और विकसित होते-होते सारा भूमण्डल या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी हो सकता है।

इस वैदिक स्थापना के अनुसार हमारा देश, राष्ट्र की स्थिति तक पहुँचा है, और हमने महाद्वीप को ही आमन्त्रण मान लिया है। जबकि यूरोप के देश और अमेरिका, हमारे प्रान्तों से भी छोटे देशों को संगठित करके आमन्त्रण या राष्ट्र संघ की स्थिति की कल्पना द्वारा, हमारे से आगे दिखाई दे रहे हैं। लेकिन वास्तव में अभी यूरोप के देश भी अपने महाद्वीप का राष्ट्र संघ या आमन्त्रण बनाने में असफल रहे हैं।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

सानो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे।⁴⁶

राजा—सम्राट और एक राष्ट्र—

वेद में राजा शब्द बहु प्रयुक्त है। यह देश या राष्ट्र के प्रमुख को दिया हुआ नाम है। इसे वरुण भी कह सकते हैं, वरुणोऽवापामधिपतिः वरुण को जल सदृश

⁴⁶ अथर्ववेद १२.१.८

प्रजाओं का अधिपति कहा है। क्योंकि प्रजाएं, अपने को राजा के अनुकूल बना लेती हैं, जैसे जल जिस बर्तन में डाला जाए, उसके आकार को अपना लेता है।

इन्द्र या सम्राट शब्द राष्ट्र संघ के प्रमुख के लिये प्रयुक्त हुआ है। 'इन्द्रश्च सम्राट वरुणश्च राजा।'

इसी प्रकार 'इन्द्रेन्द' ३-४-६ या 'एकराष्ट्र' ३-४-९ शब्द संपूर्ण भू मण्डल या सारे ब्रह्माण्ड के प्रमुख के लिये प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि वह परमेश्वर सदृश सा हो जाता है 'भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्'⁴⁷ प्राणीमात्र का एकाकी स्वामी था, है, और रहेगा।

वेद का राजा वंशपरम्परागत नहीं निर्वाचित है—

सर्वास्त्वा राजन्प्रदिशो ह्यन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह।⁴⁸

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।।⁴⁹

हे राजन्! तुझे सब दिशाओं में रहने वाले, इस पद के लिये आमन्त्रित करें। तुझे पांच प्रकार की दिव्य प्रजाएं अर्थात्— बुद्धिजीवी (ब्राह्मण) बलजीवी क्षत्रिय धन जीवी (वैश्य) आशु आज्ञाकारी शासन के वेतनभोगी (शूद्र) और शेष बचे हुए (वर्ग) मिलकर राजपद के लिये निर्वाचित करें और तू राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर आसीन होकर, उदार भाव से प्रजाओं में निवास और जीवन सामग्री का वितरण कर, जिससे तू प्रजा मात्र की पहुंच में रहे, और सब तेरा नमन करें।

राजा या प्रमुख को पदच्युत भी किया जा सकता है—

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्।⁵⁰

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत्।

इन्द्रेहैव ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय।।⁵¹

⁴⁷ यजुर्वेद १३.४

⁴⁸ अथर्ववेद ३.४.१

⁴⁹ अथर्ववेद ३.४.२

⁵⁰ अथर्ववेद ६.८७.१

⁵¹ अथर्ववेद ६.८७.२

हे राजन! तुझे सब प्रजाएं मन से चाहें। राष्ट्र तेरे शासन में भ्रष्ट न हो। तू इस राजपद पर पर्वत के समान बिना हिले, स्थिर होकर बैठ, और राष्ट्र का धारण कर राजपद से च्युत होने के कार्य मत कर।

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत, विशांच वैप्रियं धाम भवति य एवं वेद।⁵²

राजा प्रजा का रंजन करने के कारण राजा बनता है, जो इस तथ्य को हृदयंगम कर लेता है, वह प्रजाओं का प्रिय बना रहता है।

स विशोनु व्यचलत्।

सभायाश्च वै समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।⁵³

जो राजा प्रजा की इच्छाओं का अनुगमन करता है, क्योंकि कानून बहुमत से बनाता है, वह लोक सभा, युद्ध समिति, सेना और ऐश्वर्य (राज्य कोष) तथा जल विभाग का प्रिय बना रहता है। उसके विरुद्ध कभी विद्रोह या असन्तोष नहीं होता।

राजा की घोषणा —

प्रमुख पद की प्रतिज्ञा लेने के बाद राजा घोषित करता है कि—

१. न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये।⁵⁴

मेरे कानून सब के लिये समान होंगे। उनका पालन आवश्यक होगा कोई उच्च पदस्थ, या पदहीन सामान्यजन उनका उल्लंघन करने पर समान रूप से दण्डनीय होगा। भूतकाल की किसी महिमा के कारण किसी को क्षमा नहीं किया जायेगा।

२. अधोवचसः पणयो भवन्तु नीचौर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम्।⁵⁵

पणयः व्यवहारिकता का नाम लेकर अनैतिकता को अपनाने वालों की तथा चापलूस जनों की वाणी तिरस्कृत कर दी जायेगी, दूसरों को पीडा देने वाले अपने कारनामों को छोड़कर भूमिगत हो जावें। अपना काम छोड़ दें, अन्यथा उनकी दुर्गति करके उन्हें जेल में डाल दिया जायेगा।

⁵² अथर्ववेद १५.८.१.३

⁵³ अथर्ववेद १५.९.१.३

⁵⁴ अथर्ववेद ५.११.३

⁵⁵ अथर्ववेद ५.११.६

३. मा मा बोचन्नराधसं जनासः।⁵⁶

प्रजाजन मुझे निर्धन या असफल न कहें, न समझें। मेरे शासन में जो भी योजनाएं बनाई जाएंगी, उनमें से कोई भी धन की कमी के कारण अधूरी नहीं रहेगी। सब योजनाएं सफल और पूरी होंगी।

४. प्रियो देवानां भूयासम्। प्रियः प्रजानां भूयासम्। प्रियः समानानां भूयासम्।⁵⁷

मैं अपनी ओर से भरसक प्रयत्न करूंगा कि देवकोटि के महात्माओं, और विद्वानों का प्रिय बना रहूँ, सामान्य प्रजा का प्रिय बना रहूँ और अपने शासन के अधिकारियों और कर्मचारियों का भी प्रिय बना रहूँ।

राष्ट्र निर्माण के लिये आवश्यक तत्व—

१. राष्ट्र के निर्माता राजा में, दूरदर्शिता और संपूर्ण प्रजा के कल्याण की कामना का होना आवश्यक है। तदर्थ उसे राष्ट्र निर्माण के कार्य में दीक्षित होकर, तपस्वी की तरह संयम का जीवन व्यतीत करना चाहिये। ऐसा करने से राष्ट्र में बल और ओज बढ़ता है। उसके सहयोगी मन्त्री भी दिव्य भावों से युक्त होकर उसके साथ ऐकमत्य रखते हैं।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।⁵⁸

२. राष्ट्र निर्माता शासकों को क्रान्तदर्शी होना चाहिये, इनकी शारीरिक आंख और मानसिक दृष्टि सत्य को परखने वाली हो इन ऋषियों के लिये घोर अर्थात् उदार और उग्र होना परम आवश्यक है। इन्हें कानून की उपेक्षा करके व्यक्तियों की स्थिति और परिस्थिति के अनुसार उन्हें क्षमा करने या चेतावनी देने की उदारता भी दिखानी चाहिये। इसके विपरीत अपने परिचितों के साथ रियायत न करके या महत्वपूर्ण व्यक्तियों के प्रति विनम्रतावश लिहाज न करके, कानून के अनुसार दण्डित करने में उग्रता वर्तनी चाहिये। ऐसे न्यायकारी व्यक्ति सबके लिये वन्दनीय हैं।

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यशः, चक्षुर्यदेवां मनसश्च सत्यम्।⁵⁹

⁵⁶ अथर्ववेद ५.११.८

⁵⁷ अथर्ववेद १७.१२.३५

⁵⁸ अथर्ववेद १९.४१.१

३. (क) मातृभूमि या राष्ट्र के शासकों का कर्तव्य है कि वे भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले, और पृथक् पृथक् धर्म का अवलम्बन करने वाले सभी लोगों का भरण पोषण समान रूप से, वैसे ही करें जैसे एक घर में रहने वालों का किया जाता है। भाषा या धर्म के कारण किसी के साथ भेदभाव न किया जावे।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।⁶⁰

(ख) प्रजापालक राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा के भिन्न भिन्न वर्गों के साथ अपने शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की तरह बर्ताव करे। उनकी आवश्यकताओं को पूरा करे और उनकी योग्यता के अनुसार उनसे काम ले।

विशो मेऽङ्गानि सर्वतः। यजुः २०-८ ऋषिः प्रजापतिः। देवता-राजा।

(ग) अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

राष्ट्र की समृद्धि के लिये ध्यान देने योग्य बातें—

१. असंबाधं मध्यतो मानवानाम्।⁶¹

मानवों के मध्य में जमघट (भीड़) का अभाव हो। यह स्पष्ट संकेत है कि जनसंख्या पर नियन्त्रण हो। इसके लिये प्रजा को शिक्षित किया जाये। ऋग्वेद १. १६४.३२ 'बहुप्रजा निरृतिमा विवेश' में स्पष्ट कहा है कि बहुत सन्तान उत्पन्न करने वाला गृहस्थ तथा राष्ट्र कृच्छापति। अत्यन्त कष्ट अथवा दुर्गति को प्राप्त होता है।

२. सा नो भूमिर्गोषु-अपि अन्ने दधातु।⁶²

मातृभूमि या राष्ट्र का कर्तव्य है कि वह गोधन और अन्न की पैदावार को खूब बढ़ाए, ताकि अन्न की देश में कभी कमी न हो, बच्चों और बूढ़ों को पर्याप्त दूध मिलता रहे। अथर्ववेद . ५-२८-३ में कहा है—

अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम्।।⁶³

⁵⁹ अथर्ववेद २.३५.४

⁶⁰ अथर्ववेद १२.१.४५

⁶¹ अथर्ववेद १२.१.२

⁶² अथर्ववेद १२.१.४

⁶³ अथर्ववेद ५.२८.३

हमारे राष्ट्र में अन्न की मनुष्यों की और पशुओं की बहुतायात हो। हमें विदेश से अन्न कभी न मंगाना पड़े। जनसंख्या की आवञ्छित भीड़ तो न हो, लेकिन राष्ट्र के कार्यों और सेना के लिये मनुष्यों की कमी भी कभी अनुभव न हो।

(३) शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु।⁶⁴

हमें सदा शुद्ध जल मिले। हमारा पेयजल कभी प्रदूषित न हो। सा नो भूमिभूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।⁶⁵ पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।⁶⁶

मेघ हमारा पिता के समान पालन करता है। उसकी कृपा से हमारी नदियों की धारा कभी क्षीण न हो। राष्ट्र में वर्चस् (तेज) की कमी न हो।

(४) ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्तसूर्यो रश्मिभिरातनोति।⁶⁷

वेद की दृष्टि में प्रातःकाल उठकर सूर्य सेवन आवश्यक है। क्योंकि तब वह अमृत की वर्षा करता है। सब रोगों को दूर करता है। अतः कहा है

उद्यन्तसूर्योनदतां मृत्युपाशान्।

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।⁶⁸

उदय होता हुआ सूर्यः से बांधने वाले रोगों को दूर करे। मेरे हृद्रोग और रक्त की कमी से होने वाले पीलिया को भी नष्ट करें। इसका संकेत यह है कि विदेशी अनुकरण में रात्रि क्लबों को उत्साहित न करके, उन्हें प्रतिबन्धित करना चाहिये।

(५) यस्य ते नु चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम्। न देवो नाधिगुर्जनः।⁶⁹

ऋषिः सुकक्षः। देवता—इन्द्रः। छन्दः

गायत्री।

हे परमेश्वर्यवान्! जो तेरे आदेश का उल्लंघन नहीं करते, वे ही स्वराज्य को भी बिगड़ने नहीं देते। नैतिक और मर्यादित जन ही स्वराज्य की रक्षा करते हैं। इसके विपरीत दिव्यगुणों का आगार, और अपारशक्ति सम्पन्न भी यदि नैतिक और

⁶⁴ अथर्ववेद १२.१.३

⁶⁵ अथर्ववेद १२.१.९

⁶⁶ अथर्ववेद १२.१.१२

⁶⁷ अथर्ववेद १२.१.१५

⁶⁸ ऋग्वेद १.५०.११

⁶⁹ ऋग्वेद ८.९३.११

मर्यादित नहीं हैं तो स्वराज्य की रक्षा करने के बजाय स्वराज्य कलंकित और बदनाम करता है। इसलिये राष्ट्र को समृद्ध करने के लिये प्रजा को नैतिक और कानून पालक बनाना आवश्यक है।

(६) इसके निमित्त राष्ट्र को सुचारु रूप से चलाने के लिये वेद निम्न उपाय बताता है। राजा का कर्तव्य है कि पहले वह स्वयं इनको धारण करे तत्पश्चात् अपने सहयोगी मन्त्रियों, और शासक अधिकारियों को इनका पालन करने की प्रेरणा दे, तभी राष्ट्र समृद्ध होगा। ये उपाय राष्ट्र को धारण करने के लिए प्रारम्भिक एवं मौलिक हैं—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।⁷⁰

सत्यं बृहद् — परमात्मा को स्वीकार करके, सत्य पर पूर्ण निष्ठा,

ऋतं उग्रम् — अटल नियमों का उदार और उग्र होकर पालन करना,

दीक्षा तपः — किसी व्रत में दीक्षित होकर तपस्या की तरह निभाना,

ब्रह्म यज्ञः — शान पूर्वक यज्ञ भावना से राष्ट्र कार्यो में निरत रहना,

जिस राष्ट्र में इनका पालन, शासन (राजा) और प्रजा, दोनों मिलकर जितना अधिक करेंगे, राष्ट्र उतना ही समृद्ध और शसक्त होगा।

७. राजा का कर्तव्य है कि राष्ट्र में, सब बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करें। शिक्षा आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की होनी चाहिये। शिक्षक ऐसे नियुक्त किये जाने चाहियें, जो अपने विद्यार्थियों को माता का प्यार और पिता का रक्षण तथा नियन्त्रण दे सकें। अपने विद्यार्थियों को ऐसे देवमन से शिक्षा दें कि जब वे स्नातक बनें तो राष्ट्र के प्रतिष्ठित लोग उन्हें देखने, और अपने विभाग में, विशिष्ट पदों के लिये उनको चुन सकें। योग्य विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा के लिये शासन को छात्रवत्तियों द्वारा धन का समुचित प्रबन्ध करना चाहिये। वैदिक आधार के लिये अथर्ववेद १-१, ११-५ तथा २०-८२ सूक्त देखने चाहियें।

प्रजा की राजा से अपेक्षाएं—

१. यो स्मांचक्षुषा मनसा षचित्या७ कूत्या च यो अधायुरभिदासात्।

त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन्कृणु स्वाहा।⁷¹

⁷⁰ अथर्ववेद १२.१.१

ऋषिरु अथर्वा । देवता—अग्निः । छन्दः प्रस्तार पङ्क्तिः ।

हे अग्रनायक राजन! जो दुष्टात्मा दुश्मन, हम पर कुदृष्टि रखता है, मन में दुर्भाव रखता है, या चौतन्य होकर दृढ संकल्प करके हमें, क्षीण करना चाहता है, हे मार्गदर्शक! अपने वज्र अस्त्र—शस्त्र द्वारा, उन सबको निरस्त्र—शक्तिविहीन कर दे । स्वाहा—इसके लिये हम राष्ट्र के लिये अधिक से अधिक त्याग करने को उद्यत है

२. यो नो द्वेषत्पृथिवि यरु पृतन्याद्योभिदासान्मनसा यो वधेन ।

त ना भूर्म रन्धय पूर्वकृत्वरि ।।⁷²

मातृभूमि या राष्ट्र को सम्बोधित करके, वास्तव में राजा से ही यह अपेक्षा की है । हे मातृभूमि! हम से जो द्वेष करता है, हम पर मन से सर्वत्र हमारा विरोध करता है, या शस्त्रास्त्रों से आक्रमण करके हमें दास बनाना चाहता है, उसे तू अपने वश में करले । यह कोई नई बात नहीं है, पूर्वकाल में अपने द्वेषी शत्रुओं के साथ ऐसा करती रही है ।

३. ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्तवयाध्यक्षेण पृतना जयेम ।⁷³

हे अग्ने राष्ट्रध्यक्ष! तू ऐसा कर कि संग्रामों में इस राष्ट्र का वर्चस्व सदा बना रहे । हम तुझे प्रदीप्त करने के लिये अपने शरीर को हृष्ट पुष्ट बनाए रहें । तुझे अपना अध्यक्ष और नेता बना कर शत्रुओं की सेनाओं को परास्त कर दें । हमारे राष्ट्र को चारों दिशाओं की प्रजाएं नमन करती रहें ।

राष्ट्र के खर्च के लिये कर आवश्यक धन राष्ट्र को प्रशासन, व्यवस्था, समृद्धि, दुष्ट दमन और शत्रु विनाश के लिये धन की परम आवश्यकता होती है । अतः प्रजाएं राजा को आवश्यकतानुसार धन से भरपूर रखने का वायदा करती हैं, ताकि राष्ट्र में शान्ति रहे, दोपाये चौपाये तथा प्राणी मात्र नीरोग रहे ।

९. इमा रूद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरा महे मतीः ।

यथा शमसद्विवपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेस्मिन्ननातुरम् ।।⁷⁴

⁷¹ अथर्ववेद ५.६.१०

⁷² अथर्ववेद १२.१.१४

⁷³ ऋग्वेद १०.१२८.१

ऋषिः कुत्सु आंगिरसेः । रुद्रः । जगती ।

यजुर्वेद में ऋषि हे परमेष्ठी! प्रजापतिर्वा देवाः वा । हम प्रजाजन (तब से) बल शाली (कपर्दि ने) ब्रह्मचारी स्वादया अर्थात् काम से अनासक्त (क्षय द्वीराय) वीरों को बसाने वाले (कद्राय) धर्मोपदेश द्वारा सामान्य जन को संतुष्ट रखने, तथा दुष्टों को दण्ड देने वाले, अथवा (अधृष्य और अभिगम्य) राज प्रमुख के लिये इमामती: अपनी इन सम्पत्तियों को (प्रभरामहे) प्रदान करके उसके कोष को भरा रखते हैं। ताकि हमारे दोपाये और चौपाये पशु पक्षियों को सुख शान्ति मिले। इस (ग्रामे) ग्राम अथवा राष्ट्र में विश्वं पुष्टं अनातुरं असद्। सबके सब नीरोग और पुष्ट हों। मतिः धने (नामानुक्रमणी १४० तथा यास्कनिरुक्त में भी मेधा धननामसु १२-१० पठित है।) इस धन प्राप्ति के लिये राजा कानून बना कर तरह-तरह के कर लगायेगा। किन्तु ये कर अनाप-शनाप न हो जावें, इसलिये वेद इसकी उच्चतम सीमा १६ अथवा १६ प्रतिशत निर्धारित करता है।

२. यद्राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः ।

अविस्तस्मात्प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात्स्वधा ।।⁷⁵

(यत्) जब (यमस्य) राष्ट्र नियन्ता राज प्रमुख के (अभी सभासदः राजानः) थे प्रजा के शासनकर्त्ता सभासद (इष्टापूर्तस्य) राज्य की इष्ट योजनाओं को पूरा करने के लिये षोडशं विभजन्त प्रजा की आय के १६ प्रतिशत को कर रूप में अपना हिस्सा बना लेते हैं। (शितिपाद) शुद्ध आचरण वाला अविस्त प्रजा रक्षक प्रमुख (तस्मात्) कर रूप में प्राप्त उस धन से अपनी योजनाओं को पूरा करके प्रजा को प्रमुञ्चति खान, पान, रोग और शत्रुभय से मुक्त रखता है। इस प्रकार (स्वधा) अपने राष्ट्र का उत्तम प्रकार से धारण करता है।

३. मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदर्मित्वा हवामहे ।।⁷⁶

हे राजन्! आप हमारे पुत्र, पौत्र, नौकर-चाकर, गाय, अश्व आदि में किसी की भी हिंसा न होने दीजिये, इसके साथ ही क्रुद्ध होकर हमारे वीर सैनिकों को भी

⁷⁴ ऋग्वेद १.११४.१

⁷⁵ अथर्ववेद ३.२९.१

⁷⁶ ऋग्वेद १.११४.८

कठोर दण्ड मत दें, क्योंकि हम सदा (हविष्मणाः) पूरा कर आप को प्रदान करने वाले हैं सहायता हेतु पुकार रहे हैं।

समाज को व्यवस्थित रखने के लिये दण्डव्यवस्था मनुष्य स्वभावतः विषयों की ओर आकृष्ट होता है। अपने से उच्च स्थित वाले मनुष्यों को देखकर उनके जैसी सुविधाएं प्राप्त करने, और अपने इष्ट इन्द्रिय सुखों को प्राप्त करने के लिये, अनुचित उपायों का सहारा लेता है, और कानून को तोड़ता है। इसलिये समाज में शान्ति रखने और मात्स्यन्याय समाप्त करने के लिये दण्डव्यवस्था आवश्यक है।

वैदिक दण्डव्यवस्था के सामान्य नियम—

१. सामान्य अपराध, या छोटे मोटे यातायात कानून के उल्लंघन को, जिस से किसी का वास्तविक नुकसान हुवा हो, दण्डाधिकारी चाहे तो तीन बार तक चेतावनी देकर क्षमा कर सकता है। किन्तु चौथी बार वैसा अपराध करने पर बड़ा दण्ड आवश्यक है।

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु। वधीर्मा शूर भूरिषु।।⁷⁷

२. दोनों पक्षों ने असत्य का आश्रय लिया हो, दोनों ही पक्ष कुटिल हों तो जो सत्य या सत्य के निकट हो या अधिक सरल हो उसकी रक्षा करनी चाहिये।

तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्।⁷⁸

३. अधिकार सम्पन्न पुरुषों का कर्तव्य है कि अपराधी व्यक्ति को हताश न करें, उसे प्रोत्साहन देकर पुनः सन्नागरिक बनाने का प्रयत्न करें।

४. बिना लिहाज किये, बड़े और छोटे तथा पाषाण हृदय देशद्रोही और भाई भतीजे तक को समान दण्ड देने वाले, राज्याधिकारी को न्यायकर्ता बनाना चाहिये। न्यायकर्ता यदि सच्चरित्र, किसी की सिफारिश न सुनकर न्याय करने वाले हों, तो समाज में आसानी से शान्ति हो सकती है।

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुहांदो द्विषतः शिरः। अपि वृश्चाम्योजसा।।⁷⁹

⁷⁷ ऋग्वेद ८.४५.३४

⁷⁸ ऋग्वेद ७.१०४.१२

⁷⁹ अथर्ववेद १०.६.१

वेद में दण्ड की उग्रता आजकल मानवता के नाम पर, दुष्टों दस्युओं, और हत्यारों और देशद्रोहियों के साथ भी, उग्र दण्ड और कठोर व्यवहार का विरोध करने का फैशन हो गया है। वास्तव में यह विरोध नेकनीयती से न होकर, अपने स्वार्थ को साधने तथा दूसरों को बदनाम करके, अपना वर्चस्व या चौधराहट को कायम करने की दृष्टि से किया जाता है। ये मानवतावादी राष्ट्र अपने विरोधियों का नरसंहार करने में भी नहीं हिचकते और सारे विश्व द्वारा अपील किये जाने पर भी अपने संहार को न रोकते हैं, न उसमें कमी करते हैं। वेद की दण्डव्यवस्था यद्यपि क्षमादान और चेतावनी से प्रारम्भ होती है, व्यावहारिक दृष्टि से वह सामान्य जनता में भय उत्पन्न करके उन्हें अपराधों से बचाने के कठोर दण्ड देने की पक्षपाती है। नीचे कुछ दण्डों के उदाहरण दिये जा रहे हैं

१. हतं दुहो रक्षसो भङ्गुरावतः।⁸⁰

स्वदेश अथवा मानव मात्र से द्रोह करने वालों, अथवा आतंकवाद के द्वारा समाज को छिन्न-भिन्न करने वालों के लिए, वेद मृत्युदण्ड देने का प्रावधान करता

२. अपि नह्याम्यस्य मेढूं य इतः स्त्रीं पुमान् जभार।⁸¹

जो स्त्री का अपहरण करता है, उनके लिंग का बन्धन या छेदन करता है।

अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनअर्थात्त्वाण्ड्यौ।⁸²

जो स्त्री के साथ बलात्कार करता है, उसके दोनों अण्डों को पत्थर से कुचलवा देता है। वेद की परिभाषा में ये दोनों दुष्कृत् कहलाते हैं।

३. यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।⁸³

जो मुझे पवित्र होते हुवे यातुधान, और स्वयं राक्षस या यातुधान होते हुवे पवित्र कहता है, वह वेद की दृष्टि में यातुधान कहाता है, यातुधानों के लिये वेद में निम्न दण्डों का विधान है

(क) जलती हुई लोहे की सलाखों से उसे स्पर्श किया जावे।⁸⁴

⁸⁰ ऋग्वेद ७.१०४.७

⁸¹ अथर्ववेद ६०.५

⁸² अथर्ववेद ६.१३८.२

⁸³ ऋग्वेद ७.१०४.१६

(ख) यातुधान के जोड़ों को तोड़ दिया जावे।⁸⁵

(ग) यातुधान की सन्तान की हत्या कर दी जावे, आंखें फोड़ दी जावें।⁸⁶

(घ) भोज्य सामग्री में मिलावट करने वाले, और गौ दुग्ध से प्राप्त वस्तुओं की चोरी करने वालों का अंग भंग कर दिया जावे, या मृत्यु दण्ड दिया जावे।⁸⁷

४. त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च । त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एतु।⁸⁸

यातुधान का मूल (जड़) ही काट देनी चाहिये, यह जड़ तीन प्रकार से बांधी या काटी जावेगी। अर्थात् यातुधान साक्षी देने वाले गवाह, और उसकी सिफारिश करने वाले या वकालत करने वाले को भी दण्ड देकर बन्धन में डालना चाहिये। इनको दण्डित न किये जाने के कारण समाज में, धन के आधार पर बहुत अनाचार बढ़ रहे हैं।

५. इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूत्।⁸⁹

हे इन्द्र! और सोम लालू जैसे राष्ट्र पर लांछन लगाने वाले को किसी प्रकार की सुविधा नहीं देनी चाहिये।

⁸⁴ अथर्ववेद ८.३.२

⁸⁵ अथर्ववेद ८.३.४

⁸⁶ अथर्ववेद १.८.३

⁸⁷ अथर्ववेद ८.४.१०

⁸⁸ अथर्ववेद ८-३.१०.११

⁸⁹ अथर्ववेद ८.४.७

शब्दसंक्षेपिका

ऋक्.	ऋग्वेद
यजु.	यजुर्वेद
शुक्ल. यजु.	शुक्लयजुर्वेद
अथर्व	अथर्ववेद
तै. सं.	तैत्तिरीय संहिता
काठ.सं.	काठक संहिता
मैत्रा.सं.	मैत्रायणि संहिता
कपिष्ठल	कपिष्ठल संहिता
कौषी. ब्रा.	कौषीतकि ब्राह्मण
शत. ब्रा.	शतपथ ब्राह्मण
गो . ब्रा.	गोपथ ब्राह्मण
ऐ. ब्रा.	एतरेय ब्राह्मण
ताण्ड्य ब्रा.	ताण्ड्य ब्राह्मण
जै.ब्रा.	जैमिनी ब्राह्मण
तै. आ.	तैत्तिरीयआरण्यक
कौषी.गृ.	कौषीतक गृह्यसूत्र
पा. गृ.	पारस्कर गृह्यसूत्र
आ. गृ.	आपस्तम्ब गृह्यसूत्र

शां. गृ.	शांख्यायन गृह्यसूत्र
खा. गृ.	खादिर गृह्यसूत्र
हिरण्य. गृ.	हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र
गो. गृ.	गोभिल गृह्यसूत्र
आश्व. गृ.	आश्वलायन गृह्यसूत्र
मा. गृ.	मानव गृह्यसूत्र
बौ. गृ.	बौधायन गृह्यसूत्र
कौ. गृ.	कौशिक गृह्यसूत्र
गौ. धर्म.	गौतमधर्मसूत्र
बौ. धर्म.	बौधायनधर्मसूत्रम्
वाच.	वाचस्पत्यम्
शब्द .	शब्दकल्पद्रुम
मनु.	मनुस्मृति
जैमि.सू.	जैमिनिपूर्वमीमांसासूत्र
अष्टा.	पाणिनि अष्टाध्यायी
देवीभा. महा	देवी भागवत्तमहा पुराण
मुण्ड.उप	मुण्डकोपनिषद्
याज्ञ.स्मृ.	याज्ञवल्क्य स्मृतिः
शंख. स्मृ.	शंखस्मृति

विश्व के प्राचीनतम साहित्यों में राष्ट्र या देश के प्रति सुंदर उद्गारों की अभिव्यक्ति की झलक यत्र-तत्र स्पष्ट दिखाई पड़ती है। राष्ट्र शब्द एक सुनिर्दिष्ट अर्थ और भावना का प्रतीक है। जिस प्रकार यजुर्वेद ने राष्ट्र के कल्याण की कामना कितने सुंदर शब्दों में की है।

आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।

अर्थात् हमारे राष्ट्र में क्षत्रिय, वीर, धनुषधारी, लक्ष्यवेधी और महारथी हों। अथर्ववेद में भी राष्ट्र के धन-धान्य दुग्ध आदि से संवर्धन प्राप्ति की कामना की गई है—

भाषा -

प्रत्येक राष्ट्र के संगठन हेतु भाषा का होना अति आवश्यक है क्योंकि भाषा रहित राष्ट्र गूंगे व्यक्ति के समान होता है जिसकी अपनी कोई भाषा, शैली, भाव तथा विचार नहीं होते। अतः राष्ट्र को सुसंगठित करने हेतु राष्ट्र की एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए जो संपूर्ण राष्ट्र में बोली जाए तथा जिसके माध्यम से ही राष्ट्रीय स्तर पर समस्त कार्य की जाएं तथा राष्ट्र अपनी शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित कर सके। भाषा ही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने भावों, विचारों तथा अनुभवों को व्यक्त कर सकते हैं तथा दूसरों के भाव विचारों तथा अनुभवों को समझ सकते हैं। भाषा के माध्यम से ही मानव जाति ने न केवल समाज के रूप में अपितु राष्ट्र रूप में गुम्फित कर लिया है। इस प्रकार राष्ट्र, संगठन तथा राष्ट्रीयता को दृढ़ता प्रदान करने में भाषा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

धर्म -

मनुष्य स्वेच्छा से जो कुछ धारण करता है वही धर्म है और धर्म का राष्ट्र के संगठन में अपना महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि धर्म ही मनुष्य को मानवता से जोड़ता है और मानवता मनुष्यता से। जब मनुष्य के मन में ही सुखी जीवों को अधिक सुखी और दुखी जीवों को सुखी बनाने का भाव जागृत होता है, तब उसके द्वारा किये

गए प्रत्येक कल्याणकारी कार्य उसका धर्म होते हैं। यही धर्म उसे राष्ट्र की भावनात्मक शक्ति राष्ट्रीयता से जोड़ता है जो राष्ट्र को सुसंगठित करता है।

सभ्यता और संस्कृति -

सभ्यता और संस्कृति राष्ट्र संगठन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी सभ्यता तथा संस्कृति ही होती है जिसके द्वारा ही वह अन्य राष्ट्रों के समक्ष अपनी पहचान बनाए रखता है। सभ्यता और संस्कृति ही मनुष्य को आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों से सम्बद्ध करती है और राष्ट्रीयता की भावना को साकार करती है। इस प्रकार संस्कृति ही धार्मिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक तथा विश्व बंधुत्व की भावना को प्रवाहित करने वाली नदी है जिस का उद्गम स्थान राष्ट्र है।

राष्ट्र से संबंधित शब्दों का प्रयोग वैदिक साहित्य में अत्यधिक किया गया है। जैसे साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य, महाराज्य आदि। इन सब में राष्ट्र शब्द ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्र शब्द से आशय उस भूखंड विशेष से हैं जहां के निवासी एक संस्कृति विशेष में आबद्ध होते हैं। एक सुसमृद्ध राष्ट्र के लिए उस का स्वरूप निश्चित होना आवश्यक है। कोई भी देश एक राष्ट्र तभी हो सकता है जब उसमें देशेतरवासियों को भी आत्मसात करने की शक्ति हो। उनकी अपनी जनसंख्या, भू-भाग, प्रभुसत्ता, सभ्यता, संस्कृति, भाषा, साहित्य, स्वाधीनता और स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय एकता आदि समस्त तत्त्व हों, जिसकी समस्त प्रजा अपने राष्ट्र के प्रति आस्थावान हो। वह चाहे किसी भी धर्म, जाति तथा प्रांत का हो। प्रांतीयता और धर्म संकुचित होते हुए भी राष्ट्र की उन्नति में बाधक नहीं होते हैं क्योंकि राष्ट्रीय एकता राष्ट्र का महत्वपूर्ण आधारतत्त्व है, जो नागरिकों में प्रेम, सहयोग, धर्म, निष्ठा कर्तव्यपरायणता, सहिष्णुता तथा बंधुत्व आदि गुणों का विकास करता है। तथा धर्म तथा प्रांतीयता गौण हो जाती है। तब राष्ट्र ही सर्वोपरि होता है। इन गुणों के विकास से ही राष्ट्र स्वस्थ तथा शक्तिशाली होता है।

वैदिक ग्रंथों में भारतीय राष्ट्र की अवधारणा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और वेदों में भारत राष्ट्र की महिमागान के साथ ही राष्ट्र के कल्याण की कामना की गई है। वैदिक ग्रंथों के अध्ययन से इस सत्य का सत्यापन होता है कि राष्ट्र की

अवधारणा भी वेदों, विशेषकर ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में व्यक्त है। सहस्राब्दियों से ऋग्वेद के अनेक मंत्र हमारी मातृभूमि तथा संस्कृति के गुणों और महत्त्व की प्रेरणा देते आए हैं और आज भी ये मंत्र अत्यंत प्रासंगिक तथा उपयोगी हैं।

वेदों में अग्नि परमेश्वर के रूप में वंदनीय है। यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म माना गया है। समस्त भुवन का नाभि केंद्र यज्ञ ही है। यज्ञ की किरणों के माध्यम से संपूर्ण वातावरण पवित्र व देवगम बनता है। यज्ञ आर्य संस्कृति का केन्द्र बिन्दु है। वैदिक काल में सभी प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक गतिविधियों के नियन्त्रण में यज्ञ की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह बात भली भांति ज्ञात होती है कि वैदिक समाज का हर कार्य यज्ञ के ही इर्द-गिर्द घूमता था। चाहे व्यक्ति का अपना जीवन हो, समाज की गतिविधि हो, सम्पूर्ण राष्ट्र की गतिविधि हो सभी यज्ञ से सम्पृक्त था। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का जीवन, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यज्ञ के साथ जुड़ा हुआ था। किसी भी व्यक्ति की अच्छाई-बुराई का मापक यज्ञ ही था। जो यज्ञ करता था वह आर्य, यज्यु, यजमान, सूरि आदि नामों से अभिहित होता था। किन्तु जो व्यक्ति यज्ञ का सम्पादन नहीं करता था, अथवा विरोध करता था वह अनार्य, अयज्यु, अरि, अराति आदि अभिधानों से जाना जाता था और उसको समाज का शत्रु समझा जाता था। कोई भी मान्यता अथवा युक्ति जो यज्ञ के विपरीत होती थी, त्याज्य थी। उसी का जीवन समादृत था जो यज्ञ का सम्पादन करता था। इस प्रकार यज्ञ वैदिक संस्कृति का शरीर था।

वैदिक राष्ट्र के स्वरूप का विवेचन है। यहाँ राष्ट्र की आध्यात्मिकता की भावना को दृढ़ता प्रदान करने में भौगोलिकता का अपना विशेष महत्व है क्योंकि भौगोलिकता ही मनुष्य को एकत्व की शिक्षा प्रदान करती है। एक भूभाग पर बसा हुआ जनसमूह स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय एकता की दृढ़-बंधन में बंध जाता है क्योंकि उसकी समान जाती, भाषा, धर्म, परंपरा, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आचार-विचार तथा भाव आदि सामान होने के कारण उन से प्रेरित होकर ही वह दूसरों के दुख में अपना दुख तथा दूसरों के सुख में अपना सुख समझता है।

राष्ट्र का जो स्वरूप है वह भूमि जन्म और उसकी अनेक संस्कृति से मिलकर बनता है जिसमें देव गण की भूमि के निर्माण कर्ता होते हैं देव गण ही भूमि

की देख रेख करते हैं यही पृथ्वी पर वर्षा करते हैं उससे ही हरियाली व अन्य नए पौधे पुष्प का जन्म होता है पृथ्वी के अंदर बहुत ही अमूल्य वस्तुएं भरी पड़ी हैं जो कि उनके नाम इस प्रकार हैं, सागर नदियां रत्न पर्वत आदि पृथ्वी के अंदर ही समाहित हैं। पृथ्वी पर समुत्पन्न जनसमुदाय वास करता है।

पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं और हम पृथ्वी को माता मानकर इस राष्ट्र पर विचरण करते हैं। और राष्ट्र का जो मुख्य तत्व है वह है संस्कृति यही संस्कृति हमारे जन कल्याण का स्वरूप है यही संस्कृति हमारे जन कल्याण का भविष्य है जिस प्रकार नदियां एकत्र होकर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार राष्ट्र भी संस्कृति में जाकर मिल जाता है, एकत्र हो जाता है फिर चाहे वह साहित्य हो कला हो नृत्य हो या आमोद—प्रमोद हो इन सब विविध संस्कृति में राष्ट्रीय जन अपने मानसिक भावों को प्रकट करके आत्मा के आनंद के भाव को प्रकट करते हैं।

वेदों में राष्ट्र की न केवल परिकल्पना ही वर्णित है, बल्कि उसके आधारभूत तत्व, उपयोगिता, महत्ता तथा उसके प्रति लोगों के दायित्वों एवं कर्तव्यों का भी भली-भाँति उपदेश दिया गया है, जो निश्चय ही उनकी हार्दिक राष्ट्रीय भावना का द्योतक है। उन्होंने अपनी मातृभूमि को तेज और बल से परिपूर्ण उत्तम राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है, और वे उसे सदैव सर्वश्रेष्ठ बनाए रखना चाहते रहे हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपने राष्ट्र का विशेषण 'उत्तम' दिया है। राष्ट्र को उत्तमतापूर्वक सुरक्षित बनाए रखने के लिये हमारे वैदिककालीन ऋषि ने यह भी उद्घोष किया था कि—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युहं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥

अर्थात्— सत्य, बृहत् (विकास), ऋत (निश्चित नियम), उग्रता (दुर्धर्ष शक्ति), दीक्षा (दक्षता तथा अनुशासन), तप (कर्तव्य के प्रति कठोर परिश्रम एवं लगन), ब्रह्म (ज्ञान) तथा यज्ञ (पवित्र क्रियाएं) ही अपनी मातृभूमि को किंवा अपनी राष्ट्र की रक्षा हेतु तथा उसके गुणात्मक विकास हेतु इन गुणों को अपनाएं। यह मानने योग्य तथ्य है कि जिस देश के नागरिक सत्य के प्रति निष्ठावान् होंगे, देश के सर्वतोमुखी विकास में लगे होंगे, नियमानुकूल आचरण करेंगे, अदम्य शक्ति से सम्पन्न होंगे, अनुशासनप्रिय होंगे, कार्यकुशल होंगे, कठोर परिश्रम करते हुए अपने कर्तव्य का

लगन से पालन करेंगे, सुशिक्षित होंगे और क्रियाशील होंगे, तो वह देश अवश्य ही समृद्धिशाली होगा और विश्व में प्रशंसनीय प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा।

आज कोई भी व्यक्ति जब किसी देश में बस जाता है तब कुछ निर्धारित अवधि के बाद वहाँ का नागरिक बन जाता है। नागरिकता प्राप्त हो जाने के बाद उसे मतदान का भी अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस नागरिकता को ही राष्ट्रीयता में माना जाता है। किन्तु नागरिकता और राष्ट्रीयता में बहुत अन्तर है। नागरिकता किसी देश में रहने का एक राजनीतिक अधिकार है, जो उस देश की सरकार के द्वारा व्यक्ति को प्रदान किया जाता है, किन्तु राष्ट्रीयता इससे भिन्न है। राष्ट्र केवल भूखण्ड नहीं, बल्कि उस भूखण्ड पर विकसित संस्कृति तथा भाषा को भी आत्मसात् किया होता है। इसलिये जिस राष्ट्र में हम रहते हैं, उस राष्ट्र की हर वस्तु से, चाहे वह वहाँ की मिट्टी हो, पर्वत हो, नदियाँ हों, जंगल हों, पशु हों अथवा वहाँ की संस्कृति हो, परम्परा हो, रीतिरिवाज हों जन मानस हो अथवा वहाँ की भाषा से प्रेम हो, उसको अपना समझना तथा उसके विकास और वृद्धि के लिए अपने अपने कर्म के अनुसार सतत प्रयत्नशील रहना 'राष्ट्रीयता' है।

वैदिक साहित्य में राष्ट्रियता की यह भावना भरपूर मात्रा में मिलती है। राष्ट्रियता की यह अनिवार्य शर्त है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण अंग माने अथर्ववेद के एक मंत्र में यह धारणा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति हुई है। ऋषि कहता है कि राष्ट्र की जनता में मैं उत्तम निज अर्थात् अपना हो। **अहं राष्ट्रस्याभिवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।** राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह सरकार में हो अथवा जनता में हो अपने को राष्ट्र का उत्तम निज समझे। उसे कभी भी अपने को राष्ट्र से अलग नहीं समझना चाहिये। यदि कोई अपने को उस राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग मानता है तो उसकी राष्ट्रियता में सन्देह है। वह राष्ट्र के लिये खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्रोत

- ऋग्वेद संहिता (सायण) ,वैदिक संशोधन मण्डल ,पुणे : 1972
- ऋग्वेद संहिता— श्रीमत्सायणाचार्यविरचित— माधवीयवेदार्थप्रकाशसंहिता, सम्पादकदृश्रीमन्मोक्षमूलरभट्टः कृष्णदास अकादमी,वाराणसी : 1983
- ऋग्वेद संहिता, (सायणभाष्य सहित) हिन्दी अनुवादक राम गोविन्द त्रिवेदी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी : 1997
- ऋग्वेद संहिता, (सायणभाष्य सहित) सं० मैक्समूलर, चौखम्भा संस्कृत सीरीज , वाराणसी : 1966
- ऋग्वेद संहिता का सुबोधभाष्य , श्रीपाद दामोदरसातवलेकर ,स्वाध्याय मण्डली पारडी
- ऋग्वेद संहिता, अनुवादक— डॉ जियालाल कम्बोज , विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली : 2003
- ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका (कात्यायन),उमेशचन्द्र , विवेक प्रकाशन, अलीगढ़
- The RigVeda Samhita, Translation- Dr. Prasanna Chandra Gautam Bharatpu Volume 4, Bharatiya Vidya Bhavan , Bombay : 2014-15
- यजुर्वेद संहिता, सम्पादक — महर्षि देवराज, काशीहिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी : 1970
- सामवेद संहिता, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी : 1939
- ऐतरेय ब्राह्मण सायण भाष्य ,सम्पादक गणेश शास्त्री,पुणे : 1931
- ऐतरेय ब्राह्मण, गंगाधर बापूराव काले, आनन्द आश्रम,पुणे : 1931
- जैमिनिय ब्राह्मण, संपादक —डॉ रघुवीर सरस्वती ,विहार नागपुर : 1954
- तैत्तिरीय ब्राह्मण ,भट्ट भास्कर,ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन, मैसूर : 1921
- तैत्तिरीय ब्राह्मण, सम्पादक— सातवलेकर,स्वाध्याय मण्डल, आन्ध्रा : 1945

- गोपथब्राह्मण,टीकाकार— क्षेमकरणदास त्रिवेदी,लूकरगंज प्रयाग,प्रथम संस्करण : 1924
- निरुक्त वेदार्थ, दीपक इन्द्र मणि विद्यालङ्कार, कन्या गुरुकुल ,नरेला,संवत् : 2033
- ईशादि नौ उपनिषद् ,शाङ्कर भाष्यार्थ, गीताप्रेस गोरखपुर ,चौदहवाँ पुनर्मुद्रण संवत् : 2074
- मनुस्मृति, मनीराम इच्छाराम ,सस्सुना बिल्डिंग, बम्बई : 1913
- शांखायन आरण्यक, सायण भाष्य,आनंद आश्रम, पुणे : 1997
- महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, चौवालिसवाँ संस्करण ,गोरखपुर ,संवत् : 2072
- श्री मद्भगवद्गीता, टीकाकार— सातवलेकर.स्वाध्याय मंडल ,पारडी : 1961
- भागवत पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर ,द्वितीय संस्करण ,सम्बत : 1999
- नाट्यशास्त्र,भारत ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा : 1934

द्वितीयक स्रोत

- ऋग्वेदभाष्यभूमिका(सायणाचार्यकृत),श्रीजगन्नाथ पाठक,चौखम्बाविद्याभवन,वाराणसी, सं. : 1982
- ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, स्वामी दयानन्दगोविंद राम महासानन्द ,कलकत्ता ,प्रथम संस्करण : 1992
- ऋग्वेदभाष्यम्,महर्षिदयानन्द,सम्पादक—दयानन्दअर्पण,भगवतीलेजरप्रिंट्स, प्रथमसंस्करण, दिल्ली, संवत् : 2060
- तैत्तिरीय ब्राह्मण, व्याख्याकार .भट्ट भास्कर, ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन, मैसूर : 1921
- गोपथ ब्राह्मण, टीकाकार— क्षेम करणदास त्रिवेदी, लूकरगंज प्रयाग ,प्रथम संस्करण : 1924
- जैमिनिय ब्राह्मण, संपा. डॉ रघुवीर सरस्वती, विहार नागपुर : 1954

- कपिष्ठल कठसंहिता, सम्पादक. रघुवीर मेहर चंद्र लक्ष्मण दास, दरियागंज ,दिल्ली : 1968
- काठक संहिता, सम्पा. सातवलेकर , पारणी : 1915
- तैत्तिरीय ब्राह्मण,सम्पादक— सातवलेकर,स्वाध्याय मण्डल, आन्ध्रा : 1945
- श्री मदभगवद्गीता, टीकाकार— सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल ,पारडी : 1961
- रानाडे,रामचन्द्र, उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, प्रथम संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर : 1971
- काणे,पी.वी.,धर्मशास्त्र का इतिहास, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट,पूना : 1941
- उपाध्याय,बलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, शारदा मंदिर, वाराणसी : 1967
- गैरोला,वाचस्पति,वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्भा संस्कृतप्रतिष्ठान, दिल्ली : 2008
- विद्यालङ्कार .दीपक इन्द्र मणि, निरुक्त वेदार्थ, कन्या गुरुकुल, नरेला ,संवत् : 2033
- कुमार,शशिप्रभा, वैदिक अनुशीलन, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली : 2005
- पातंजल न्याय दर्शन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी : 1970
- नन्द. ओमा, पातंजल योग प्रदीप, प्रदीप प्रेस, मुरदाबाद : 1942
- शास्त्री,पं जगदीश, उपनिषत् संग्रह, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण : 1971
- उपाध्याय,बलदेव, भारतीय दर्शन, शारदा मंदिर, वाराणसी : 1997
- काव्यप्रकाश, टीकाकार. विश्वेश्वर, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी : 1960
- तर्क संग्रह , व्याख्याकार शिव नारायण, भारतीय पब्लिसिंग हाउस ,दिल्ली : 1974
- चन्द्र. दीवान, दर्शन संग्रह, प्रकाशन शाखा सूचना विभाग ,उ० प्र० लखनऊ : 1958

- अरविन्द ,दि लार्ड्स आफ डिवाइन, आश्रम पांडिचेरी : 1942
- पंचदशी विद्यारण्य, संस्कृत संस्थान वेद नगर, बरेली : 1972
- अग्रवाल. पद्मा, प्रतीक वाद, मनोविज्ञान प्रकाशन ,वाराणसी : 1963
- प्रसाद.लोकनारायण, प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की एक झलक, देवप्रयाग ,गढ़वाल : 1958
- मिश्र. उमेश, भारतीय दर्शन, हिंदी समिति सूचना विभाग, लखनऊ : 1964
- त्रिपाठी. रामप्रताप, मत्स्यपुराण, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, सं० : 2003
- नारमन. एल. मन, मनोविज्ञान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : 1961
- मिश्र.श्रीनारायण, वैशेषिक दर्शन—एक अध्ययन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी : 1966
- विदेह .स्वामी विद्यानंद, शिव संकल्प, वेद संस्थान ,अजमेर : 1978
- शौनिकिय बृहद देवता, सम्पादक— रामकुमार राय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, संवत् : 2020
- चौबे. सरयुप्रसाद, मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रुपरेखा, विनोद पुस्तकमन्दिर आगरा , सन् : 1988
- शुक्ल. राजाराम, मनोविज्ञान और जीवन, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स ,वाराणसी : 1947
- चिलविल. डॉ शोभा अग्रवाल, वेदों में सम्पूर्ण स्वास्थ्य तथा एकेश्वरवाद,जानवानि प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली : 2013
- सिंह. प्रो० हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रुपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास ,चतुर्थ संस्करण दिल्ली : 1983
- विण्टरनिट्ज. एम., प्राचीन भारतीय सहित्य का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास ,पटना : 1969
- द्विवेदी. डॉ वी०के०, पदार्थ विज्ञान, सम्पादक लक्ष्मीधर द्विवेदी ,चौखम्भा कृष्णदास अकादमी , चतुर्थ संस्करण, वाराणसी : 2016

- वैदिक विज्ञान, सम्पादक डॉ दयानन्दभार्गव,राजस्थानी ग्रन्थागार, प्रथम संस्करण : राजस्थान : 1996
- द्विवेदी. डॉ कपिलदेव, वैदिक मनोविज्ञान, विश्वभारतीपरिषद् ,चतुर्थ संस्करण , ज्ञानपुर भदोही : 2015
- कृष्णदास.ईश्वर,वेदान्तसार,व्याख्याकारदृआद्याप्रसादमिश्र,दुबेप्रिन्टर्स एण्डग्राफिक्स,चतुर्थ संस्करण ,इलाहाबाद : 2007
- आत्रेय. शान्ति प्रकाश, योग —मनोविज्ञान ,दी इन्टरनेशनलस्टैण्डर्डपब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, वाराणसी : 1965
- माथुर. एस एस ,सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर , द्वितीय संस्करण , आगरा :1966
- त्रिवेदी, मानसी शुक्ला ,वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञान अनुशीलन , नाग पब्लिशर्स ,प्रथम संस्करण, दिल्ली : 2004
- रूपम . डॉ ,योग मनोविज्ञान.मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स , दिल्ली : 2017
- सिंह. अरुण कुमार, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान ,मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स ,चतुर्थ संस्करण .दिल्ली : 2006
- शर्मा. राम नाथ.एवं रचना शर्मा, भारतीय मनोविज्ञान ,एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूट, दिल्ली : 2005
- शुक्ल. लालजी राम, आधुनिक मनोविज्ञान ,साहित्य सेवक कार्यालय ललिया देवी.वाराणसी : 1957

कोश—ग्रन्थ

- वाचस्पत्यम् (छः भाग), चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, पं.सं.14 , वाराणसी : 1969
- शब्दकल्पद्रुम (पाँच भाग), देव. स्यार राजा राधाकांत देव, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी : 1967
- वैदिक पदानुक्रम कोश (सं.) विश्वबन्धु. विश्वरानन्द वैदिकशोध संस्थान, होशियारपुर : 2012

- प्रैक्टिकल वैदिक डिक्शनरी ,सूर्यकांत ,आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ,दिल्ली : 1981
- संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली : 1989
- एन्सैक्लोपिडीया ऑफ अमेरिकन ,अमेरिकन कारपोरेशन ,न्यूयार्क : 1961
- रकोश, अमरसिंह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई : 1969
- Vedic Bibliography, Vol. 1, R.N.Dandekar, Karnatak , Publ. House : 1946
- दार्शनिक संप्रत्यय - कोश, (Dictionary of Concepts in India Philosophy_) सम्पादक, शशिप्रभा कुमार, संतोष कुमार शुक्ल, रामनाथ झा, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, न्यू दिल्ली : प्रथम संस्करण, 2014
- संस्कृतशब्दार्थ-कौस्तुभ, द्वारिका प्रसाद, तारणीश झा, राम नारायण लाल, बेनी प्रसाद, इलाहबाद : 1873
- संस्कृत-अंगेजी शब्दकोश, मोनियर विलियम्स, मोतीलाल बनारसी, दिल्ली :1873
- भारतीय दर्शन परिभाषा कोश, डॉ.दीनानाथ शुक्ल, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली : 1873

शोध पत्र/पत्रिकाएं

- Shodh Sanhita, Kavikulguru Kalidas Sanskrit University Ramtek, Dist. Nagpur, Maharashtra , Vol. No. IX, Issue -4 (II) January - June 2022 (Page no. 15-22)
- Puranam All India Kashiraj Trust Fort Ramnagar, Varanasi Vol. LXV, Issue, NO. 7,2022 (Page no. 98-107)

आन्तर्जालीय स्रोत

<https://ijsrst.com/paper/7033.pdf>

<https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/82788/1/Unit-5.pdf>

<https://ncert.nic.in/textbook/pdf/khps107.pdf>

<http://www.udayindiahindi.in/archives/14613>

<https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/66075/1/Unit-3.pdf>